View metadata, citation and similar papers at core.ac.uk

brought to you by CORE

provided by Etheses - A Saurashtra University Library Service

Saurashtra University

Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Ghetiya, Binal G., 2009, "*कवयित्री महादेवी वर्मा के काव्यों में संवेदना और शिल्प*", thesis PhD, Saurashtra University

http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/712

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
http://etheses.saurashtrauniversity.edu
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

"कवयित्री महादेवी वर्मा के काव्यों में संवेदना और शिल्प"

(सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी.की उपाधि के
लिए प्रस्तुत शोध–प्रबंध)

◆ प्रस्तुतकर्त्री ◆

घेटीया बीनल जी.

शोध–छात्रा

हिन्दी विभाग,

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय,

राजकोट

◆ निदेशक ◆

डॉ. एच. टी. ठक्कर

अध्यक्ष एवं मार्गदर्शक, हिन्दी विभाग

मातुश्री विरबाईमाँ महिला

विनयन महाविद्यालय

राजकोट.

वर्ष–2009

प्रमाणपत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि **घेटीया बीनल गीजुभाई** ने सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट की पीएच.डी. हिन्दी पदवी के लिए मेरे निदेशन एवं निरीक्षण में **'कवयित्री महादेवी वर्मा के काव्यों में संवेदना और शिल्प'** शीर्षक से शोध-प्रबंध तैयार किया है ।

इस शोध-प्रबंध में इन्होंने उक्त विषय का यथाशक्ति अध्ययन अनुशीलन एवं शोध-परक विश्लेषण - विवेचन करते हुए वैज्ञानिक ढंग से मौलिक निरूपण किया है । आवश्यकतानुसार विविध संदर्भग्रन्थों का समुचित उपयोग कर अपनी मौलिक उद्भावनाओं की संपुष्टि भी की है ।

साथ ही, यह शोध-प्रबंध अथवा इसका कोई अंश अब तक न तो प्रकाशित हुआ है और न ही इसका कहीं कोई उपयोग हुआ है ।

निदेशक

डॉ. एच. टी. ठक्कर

अध्यक्ष एवं मार्गदर्शक, हिन्दी विभाग

मातुश्री विरबाईमाँ महिला

विनयन महाविद्यालय

राजकोट.

दिनांक :

स्थल : राजकोट

युग-प्रवर्तिका
श्रीमति महादेवी वर्मा के प्रति

दिये व्यंग्य के उत्तर रचनाओं से रचकर,
विदुषी रहीं विदूषक के समक्ष तुम तत्पर,
हिंदी के विशाल मंदिर की वीणा-पाणी,
स्फूर्ति-चेतना-रचना की प्रतिमा कल्याणी,
निकला जब 'नीहार' पड़ी चंचलता फीकी
खुली 'रश्मि' से मुख की श्री युग की युवती की,
प्रति उर सुरभित हुआ, 'नीरजा' से, निरभ्रनभ
शत-शत स्तुतियों से गूंजा 'यह सौरभ, सौरभ' ।
'सांध्य गीत' गाए समर्थ कवियों ने सुस्वर,
वीणा पर, वेणु पर, तंत्र पर और यंत्र पर ।
'यामा' - 'दीपशिखा' के विशिखों के ज्यों मारे
अपल-चित्र हो गए लोग, 'चलचित्र' तुम्हारे
चला रहे हैं सहज श्रृंखला की कड़ियों से,
सजो, रंगो लेखनी-तूलिका की छड़ियों से ।

- सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

---

* महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' द्वारा रचित यह कविता 'देशदूत', साप्ताहिक, प्रयाग, 7 फरवरी, 1943, मे प्रकाशित हुई थीं ।

('आजकल', मार्च - 2007 से उद्धृत)

श्रद्धेय महीयसी महादेवी को...

कहाँ खोजु तुमको हे देव
मन की गहराई में या
हृदय के हिमालय पर,
ओ प्रियतम तुम बसे हो
मेरे ही अंतर मन में ।

लहरें बनकर पथ निर्धारा
वायु बनकर हाथ थामा
प्रेमदीप से किया आलोकित,
हे हृदय-ईश तुम बने हो
मेरे जीवन सींचित ।

इसी श्रद्धाने बनायी तुम्हारी
अज्ञात प्रिय की प्रतिमा
पाया तुमको अपने निर्वाण में,
हुई आज द्वैत से अद्वैत
प्रिय के स्वाँगा में ।

- घेटीया बीनल जी.

अनुक्रमणिका

	पृ. सं.
भूमिका	4-12
प्रथम अध्याय :	13-36
आधुनिक हिन्दी कविता एक दृष्टि	
द्वितीय अध्याय :	37-164
महादेवी वर्मा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व	
तृतीय अध्याय :	165-184
छायावाद और महादेवी वर्मा	
चतुर्थ अध्याय :	185-219
महादेवी के काव्यों में संवेदना और युग–चेतना	
पँचम अध्याय :	220-380
महादेवी के काव्यों में आध्यात्मिक–चेतना	
षष्ठम अध्याय :	381-440
महादेवी के काव्यों में शिल्प–विधान	
उपसंहार :	441-453
परिशिष्ट	454-458

भूमिका

(1) विषय–चयन

(2) प्रबंध की रूपरेखा

(3) उपसंहार

(4) कृत्तज्ञता ज्ञापन

भूमिका

'कवयित्री महादेवी वर्मा के काव्यों में संवेदना और शिल्प'

भूमिका :

साहित्य मनुष्य के भावों और विचारों की समष्टि है । साहित्य और समाज का बड़ा गहरा संबंध है । साहित्य जहाँ समाज से प्रभावित होता है, वहाँ समाज को प्रतिबिंबित, संवर्धित एवं परिवर्तित भी करता है । बदलते परिवेश के साथ-साथ इसके आकार-प्रकार में परिवर्तन होता ही रहा है । हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के जनक के रूप में श्री भारतेन्दुजी ने सुषुप्त, पराधीन भारतीय जनजीवन में जिस राष्ट्रीय और मानवीय चेतना को जगाया वह महावीर प्रसाद द्विवेदी से संवर्धित होती हुई छायावाद में परिपुष्ट हुई ।

'छायावाद' को आधुनिक हिन्दी साहित्य का स्वर्ण-युग कहा जाता है । आधुनिक हिन्दी काव्य की चरम उपलब्धि और आधुनिक हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक समृद्ध काव्य-प्रवृति 'छायावाद' हैं । इसका मूल्यांकन करते समय आलोचकों ने अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनों प्रकार की धारणाएँ व्यक्त की है । छायावाद के मूलतः चार आधार स्तंभ रहे हैं - प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी । इनके साहित्य पर पृथक-पृथक रूप में तथा समग्रतः छायावाद पर पर्याप्त शोध कार्य हो चुका है ।

ऋग्वेद से लेकर आजतक के काव्यों में प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति प्रचुर मात्रा में होती रही हैं । प्रेम के मर्म की वैविध्यपूर्ण अवस्थाओंने काव्य-रसिक के हृदय को समय-समय पर उद्वेलित कर उन्हें मानव-प्रेम के अधिक सन्निकट रख दिया हैं ।

हिन्दी साहित्य जगत में 'आधुनिक मीरां' के रूप में जो गौरव महादेवीजी को प्राप्त हुआ है, उसके मूलमें विपुल एवं उदात्त काव्य साहित्य कारणभूत है । इनके काव्यों के मूल में प्रेममूलक मानवीय संवेदना का बड़ा ही महत्व है जो सारगर्भित, रसभरी, भाव-प्रेरक एवं नाविन्यपूर्ण तो है ही साथ ही विशाल मानवतावादी राष्ट्र-प्रेम की विचारधारा की पोषक भी हैं । ऐसी राष्ट्र-प्रेमी, व्यापक मानवतावादी, निष्ठावान, हिन्दी प्रेमी कवयित्री की कविताओं का अध्ययन करके 'कवयित्री महादेवी वर्मा के काव्यों में संवेदना और शिल्प' विषय को लेकर इनके काव्यों में निरूपित सांवेगिक भाव यथा-लौकिक प्रेम, अलौकिक प्रेम, रहस्यभावना, विरह, मिलनाकांक्षा, प्रकृति-प्रेम, अज्ञात प्रियतम आदि भावों को उजागर किया गया है । भावों की अभिव्यक्ति भाषा से होती है । शिल्प पक्षमें शब्द, मुहावरें, लोकोक्ति, शब्द-शक्ति, गीतात्मकता, प्रतीक योजना, बिम्बविधान, आलंकारिकता, छंद विधान, वक्रोक्ति आदि से महादेवी का अभिव्यक्ति पक्ष परिपुष्ट हुआ है । अत: कवयित्री के काव्यों में संवेदना और शिल्प में नूतन प्रयोगों पर ध्यानाकर्षण मेरा विनम्र प्रयास रहा है ।

विषय-चयन :

प्रस्तुत विषय के मूल में आठवीं कक्षा से ही महादेवीजी के कृतित्व से परिचय रहा है । महादेवीजी का परिचय करानेवाले शिक्षक मेरे पिता श्री गीजुभाई घेटीया साहब ही थे । इसी दौरान उन्होंने केवल एक कविता ही नहीं बल्कि कवयित्री के जीवन एवं उनकी 'मेरा परिवार' कृति का परिचय भी दिया । जब भी पिताजी के साथ प्रकृति की गोद में जाती थी, तब अहसास होता था कि 'मेरा परिवार' के महादेवी के जो साथी रहे हैं, वे इनमें से कुछेक मेरे भी होते गये हैं । महादेवी के संदर्भ में जैसे-जैसे मेरी जिज्ञासा बढ़ती गई वैसे-वैसे ग्रंथालय से उपलब्ध सामग्री, गुरूजनों से जानकारी और

कॉलेज कक्षा के पाठ्यक्रम में 'नीहार' के अध्ययन दौरान और भी बढ़ी । 'नीहार' पढ़ने के बाद उनकी अन्य रचनाओं में संवेदनात्मक भावों को विभिन्न दृष्टि से प्रस्तुत करने का नया अंदाज दिल को छू गया । इतना ही नहीं उनका साहित्य व्यष्टिगत ही नहीं बल्कि व्यापक रूप से हमारे जीवन में सामंजस्य की भावना को बलवत्तर बनाता है । स्नातकोत्तर कक्षा में लघु-शोध प्रबंध प्रस्तुत करने के पश्चात मेरी हृदयपिपासा तीव्रतम बनी । महादेवी के काव्य के विभिन्न पहलुओं पर मेरी जिज्ञासा और बढ़ी । फलतः पीएच.डी. के शोध-प्रबंध के विषय के रूप में मैने 'कवयित्री महादेवी वर्मा के काव्यों में संवेदना और शिल्प' विषय का चयन कर उनके काव्यों में निर्दिष्ट भावों एवं भाषा का अनुसंधान करना मेरा प्रयास रहा है ।

प्रबंध की रूपरेखा :

प्रस्तुत शोध-प्रबंध 'कवयित्री महादेवी वर्मा के काव्यों में संवेदना और शिल्प' छः अध्यायों में विभक्त किया गया है । प्रत्येक अध्याय का सारांश निम्नलिखित है -

(1) **प्रथम अध्याय :**

आधुनिक हिन्दी कविता एक दृष्टि

प्रस्तुत अध्याय के अंतर्गत आधुनिक हिन्दी कविता को लेकर भारतेन्दु-युग से छायावाद तक की काव्य प्रवृति के आधार पर विकासयात्रा पर सरसरी निगाह से दृष्टिपात किया है ।

(2) **द्वितीय अध्याय :**

महादेवी वर्मा : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रस्तुत अध्याय में महादेवीजी के आम व्यक्तित्व एवं सर्जनात्मक व्यक्तित्व के आंतर्सबंधों को खोजने का प्रयास किया है, क्योंकि व्यक्तित्व

एवं कृतित्व एक दूसरे के पूरक हुआ करते हैं । व्यक्तित्व के आधार पर कृतित्व एवं कृतित्व के आधार पर व्यक्तितत्व को परखने का मेरा विनम्र प्रयास रहा है ।

☼ व्यक्तित्व :

महादेवी का जन्म, शिक्षा, परिवार, विवाह, अध्ययन - अध्यापन कार्य, राष्ट्रसेवा आदि के साथ विविध उपाधियाँ एवं इन्द्रधनुषी रंगोंसे रंजित उनके व्यक्तितत्व का परिचय दिया गया है ।

☼ कृतित्व :

☫ पद्य कृतियाँ :

महादेवी की पद्यकृतिर्यां 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत', 'दीपशिखा', 'हिमालय', 'सप्तपर्णा', 'प्रथम आयाम', 'अग्निरेखा' आदि का विस्तृत परिचय दिया गया है ।

☫ गद्य कृतियाँ :

महादेवी की गद्यकृतियाँ 'अतीत के चलचित्र', 'श्रृंखला की कडियाँ', 'स्मृति की रेखाएँ', 'पथ के साथी', 'क्षणदा', 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध', 'संकल्पिता', 'मेरा परिवार', 'चिंतन के क्षण' आदि का संक्षिप्त प्रस्तुतीकरण हुआ है ।

☫ संकलित :

महादेवी के पद्य एवं गद्य की कई कृतियाँ संकलित भी हैं, यथा - 'यामा', 'संधिनी', 'स्मृति चित्र', 'महादेवी साहित्य भाग-1, 2, 3', 'गीतपर्व', 'स्मारिका', 'परिक्रमा', 'संभाषण', 'मेरे प्रिय निबंध' आदि कृतियों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है ।

(3) **तृतीय अध्याय :**

छायावाद और महादेवी वर्मा

प्रस्तुत अध्याय में 'छायावाद' शब्द की परिभाषा शब्द प्रवर्तन, काव्य-प्रवृतियाँ, विशेषताएँ आदि का परिचय देते हुए महादेवी की काव्य रचनाओं पर छायावादी काव्य प्रवृतियों के प्रभावों का अन्वेषण किया हैं ।

(4) **चतुर्थ अध्याय :**

महादेवी के काव्यों में संवेदना और युग-चेतना :

महादेवी के काव्यों में प्रस्तुत संवेदना, युग-चेतना एवं व्यक्ति-चेतना, काव्य विषय-वस्तु, चिंतनात्मकता आदि दृष्टि से महादेवी के काव्य भावों के मूल स्रोत के अन्वेषण का प्रयास किया गया है ।

(5) **पँचम अध्याय :**

महादेवी के काव्यों में आध्यात्मिक-चेतना :

महादेवी के काव्य की मूल संवेदना अध्यात्मपरक रही है । इसके अंतर्गत लौकिक प्रेमाभिव्यंजना, अलौकिक प्रियतम, रहस्य-भावना (रहस्य-भावना की विभिन्न अवस्थाएँ-जिज्ञासा, आस्था, प्रणयानुभूति और मिलनाकांक्षा, विरह-वेदना, अभिन्नता बोध), करूणा एवं दुःख, दर्शन-अध्यात्म, रस-निरूपण , प्रकृति-प्रेम, राष्ट्र-प्रेम, मानवतावादी भावना आदि महादेवी के अंतर्मन की संवेदनाओं को नूतन भावों एवं दृष्टिकोण से उजागर करने का प्रयास किया गया है ।

(6) **षष्ठम अध्याय :**

महादेवी के काव्यों में शिल्प-विधान :

भाव अगर काव्य की आत्मा है तो भाषा है उसका शरीर । कवयित्री के काव्यों का शब्द शरीर ही कला की अभिव्यक्ति बनता है । काव्य कला

को दो विभागों में विभक्त किया गया है –

(1) भाषा (2) शैली ।

भाषा के अंतर्गत शब्द–चयन, तत्सम शब्द, तद्‌भव, शब्द, देशज शब्द, विदेशी शब्द, मुहावरे – लोकोक्तियाँ, शब्द–शक्ति(अभिधा, लक्षणा और व्यंजना) आदि को महादेवी के काव्य में स्पष्ट किया गया है ।

शैली में गीतात्मकता, प्रतीक योजना (के अंतर्गत – दीपक, यात्री, झंझा, दर्पण आदि प्रतीकों का काव्यात्मक भावों में परिचय) बिम्बविधान, आलंकारिकता (में (i) शब्दालंकार : अनुप्रास, यमक, पुनरूक्ति–प्रकाश, नवीन प्रयोग, (ii) अर्थालंकार : उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सांगरूपक अलंकार, समासोक्ति, विरोधाभास, व्यतिरेक, मानवीकरण, वीप्सा, विशेषण विपर्यय, दीपक, निदर्शना आदि) छंद विधान (में (i) मात्रिक छंद :– सखी, रूपमाला, पीयूषवर्ष, श्रृंगार, चौपाई, पद्धरि, राधिका (ii) वर्णिक छंद : महादेवी के काव्य में प्रयुक्ति के अनुरूप संक्षिप्त दिया गया है ।) और वक्रोक्ति आदि शैलीगत लाक्षणिकताओं का परिचय विस्तृत रूप में देने का प्रयास किया गया है ।

उपसंहार :

महादेवी के साहित्य पर विभिन्न दृष्टिकोण से कार्य हुआ है, किन्तु मेरा प्रयास उनके काव्यों में सांवेगिक भावों को उजागर करने का रहा है । इसमें मुख्यत: उनके प्रणय को रहस्य एवं अध्यात्म की दृष्टि से मूल्यांकित करने का प्रयास रहा है । इन सांवेगिक भावनाओं की अभिव्यक्ति भाषा एवं शिल्प के माध्यम से होती है । महादेवी के काव्यों में भाषा एवं शिल्प की दृष्टि से नाविन्य दिखाई देता है । काव्यों में गीतितत्त्व की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है ।

प्रथम अध्याय में आधुनिक हिन्दी कविता से आरंभ पर छायावाद युग की पृष्ठभूमि में महादेवी के योगदान और उनके काव्यों में व्यंजित संवेदना और शिल्प की दृष्टि से मूल्यांकन करने का मेरा विनम्र प्रयास रहा है ।

कृत्तज्ञता ज्ञापन :

प्रस्तुत शोध–प्रबंध परम आदरणीय डॉ. एच. टी. ठक्कर साहब (मातुश्री वीरबाइमाँ महिला आर्ट्स कॉलेज, राजकोट) के कुशल निदेशन में तैयार किया गया है । शोध–प्रबंध के प्रारंभ में मेरा पथ प्रदर्शित करनेवाली पूर्व मार्गदर्शिका डॉ. ताराबहन टी. पटेल (ए.वी.डी.एस. आर्ट्स एन्ड कॉमर्स कॉलेज, जामजोधपुर) रही, जिन्होंने प्रारंभिक रूकावटें एवं भाषा पर मूलरूप से निदेशन किया । किन्तु पूर्वनिदेशिका की प्रतिकूलता और मेरी यातायात सबंधित कठिनाइयों को ध्यानमें रखकर मुझे स्नेहपूर्वक स्वीकार करनेवाले निदेशक डॉ. एच. टी. ठक्कर साहब रहे । आपने शोध–प्रबंध की संपूर्णता तक सरलता, सहृदयता और आत्मीयता का परिचय दिया । उलझन में रही मुझे इस मोड़ पर राह निदेशना की, जिनकी मैं सदा ऋणी रहूँगी ।

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, हिन्दी भवन के विभागाध्यक्ष डॉ. बी. के. कलासवा साहब ने आवश्यक सामग्री हेतु पत्रिकाएँ एवं मार्गदर्शन के हेतु अपना समय अवश्य दिया है, आपका स्वभाव सदासर्वदा छात्रों को मदद करना रहा है । आपकी मैं आभारी रहूँगी ।

कुछ उलझे सवालों का संतोषपूर्ण समाधान करने वाले डॉ. शांतिभाई सिणोजिया साहब (आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज, जामजोधपुर) को मैं इस वक्त कैसे भूल सकती हूँ ? मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ । डॉ. किशोर काबराजी (गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद)ने मुझे बेटी बनाकर मेरी दुविधाएँ सुलझाई और प्रोत्साहित कर मार्गदर्शन दिया, उनके चरणों में

वंदन करती हूँ । महादेवी के व्यक्तित्व के निकट जाने का मौका मुझे डॉ. बिमलेश तेवतीया (आर्ट्स कॉलेज, चिखली) के साथ वार्तालाप से हुआ, आप महादेवी को उनके घर पर मिलीं और व्यक्तित्व का परिचय लिया, जो मुझे समय-समय पर देती रही, जिनकी मैं आभारी हूँ । विशेष रूप से मैं अपने परिवार एवं मित्रों की ऋणी रहूँगी, जिन्होंने मुझे आगे बढ़ने का हौसला एवं समय पर कार्य करने के लिए प्रेरित किया । 'सोनार कम्प्यूटर सेन्टर' राजकोट जिन्होंने इस शोध-प्रबंधको क्षति रहित मुद्रित किया मैं उनकी भी आभारी हूँ ।

शोध-प्रबंध हेतु कुछ जरूरी सामग्री मुझे सौराष्ट्र विश्वविद्यालय - राजकोट, आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज - जामजोधपुर, कणसागरा महिला कॉलेज - राजकोट, मातुश्री वीरबाईमाँ महिला आर्ट्स कॉलेज - राजकोट, बहाऊद्दीन आर्ट्स कॉलेज - जूनागढ, नलिनी आर्ट्स कॉलेज - वल्लभ विद्यानगर आदि की ग्रंथालयों से प्राप्त हुई । महादेवी वर्मा के बारे में कुछ जानकारी मैंने इन्टरनेट पर से भी प्राप्त की । अतः इन सभी का मेरे शोध-प्रबंध में मूल्यवान योगदान रहा ।

महादेवी के काव्यों में रूचि लेनेवाले भावकों का यदि इस शोध-प्रबंध से थोड़ा-सा भी पथ निदर्शन हुआ तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूँगी । इस शोध-प्रबंध को दोष-रहित बनाने का सारा श्रेय डॉ. एच. टी. ठक्कर साहब को है, यदि कोई न्यूनतम गलती है तो वह मेरी अज्ञानता समझें ।

विनीता

घेटीया बीनल जी.

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

आधुनिक हिन्दी कविता एक दृष्टि

❁ **प्रस्तावना**

1. भारतेन्दु-युग :

1.1 राष्ट्रीय चेतना

1.2 भक्ति-भावना

1.3 श्रृंगारिक-सौन्दर्य

1.4 सामाजिक जागरूकता

1.5 प्रकृति सौन्दर्य

1.6 प्रेमानुभूति

1.7 काव्यात्मक शैली

1.8 भाषा-सुधारात्मक रूप

2. द्विवेदी-युग :

2.1 राष्ट्रीय भावना

2.2 सामाजिक चेतना

2.3 धार्मिक चेतना

2.4 आदर्शवादिता

2.5 प्रकृति-चित्रण

2.6 भाषा-सुधार

3. छायावाद :

3.1 वैयक्तिकता

3.2 प्रकृति–चित्रण

3.3 नारी सौन्दर्य और प्रेमाभिव्यक्ति

3.4 श्रृंगारिकता,

3.5 रहस्यानुभूति

3.6 निराशा और करूण वेदनानुभूति

3.7 राष्ट्रीय जन–जागृति

3.8 मानवतावादी दृष्टि

3.9 अभिव्यंजनात्मक क्रान्ति

☸ निष्कर्ष :

प्रथम अध्याय

आधुनिक हिन्दी कविता एक दृष्टि

❁ प्रस्तावना :

काव्य में खड़ीबोली का प्रयोग आदिकाल में अमिर खुसरों ने अपनी पहेलियाँ में किया था ।

"एक थाल मोती से भरा । सबके सिर पर औंधा धरा ॥
चारों ओर वह फिरे । मोती उससे एक न गिरे ॥"[1]

इसके बाद भक्तिकाल में कवियों ने अवधि, ब्रज आदि प्रांतीय भाषाओं में अपनी काव्य रचनाओं का सृजन किया । धीरे-धीरे रीतिकाल की कुछेक रचनाओं में खड़ीबोली के शब्दों का प्रयोग होने लगा । आधुनिककाल में खड़ीबोली का विकास चरमोत्कर्ष तक पहुँचा ।

आधुनिक काव्य की विकास यात्रा प्रगति के उतुंग श्वेत शैल शिखरों को सर करती हुई परिवर्तनशीलता की ओर आगे बढ़ती गई । समय की करवट ने हिन्दी काव्य साहित्य में क्रान्ति का शंख फूँक दिया । सभी क्षेत्रों के परिवर्तनों, आंदोलनों, स्थितियों, प्रवृतियाँ आदि की अभिव्यक्ति में नयापन ला दिया । रीतिकाल की रीतियाँ से भारतेन्दु की स्वतंत्र और वैचारिक क्रान्ति की रणश्रृंगी बजते ही मानो मुक्ति मिल गई । द्विवेदीयुग ने आदर्श, उपदेश, स्वच्छंदता एवं राष्ट्र-प्रेम की नीव रखी । छायावादी कविताने नवीन काव्य प्रवृतियाँ को जन्म

दिया । छायावादी काव्यने नये दो शब्द आध्यात्मिक चेतना और रहस्यानुभूति को अपनाया । अध्यात्म एवं रहस्य को संवेदना, शिल्प, बिम्ब, प्रतीक, प्रयोग आदि द्वारा अपने काव्य में निरूपित किया । इस युगने नवीनता एवं सभी दृष्टिसे (संवेदना और शिल्प) काव्य जगत में क्रान्ति का उद्घोष किया । छायावाद के चार प्रमुख आधार स्तंभ रहे है – जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराली' और 'महादेवी वर्मा' । महादेवी की काव्य सर्जना संवेदना एवं शिल्प की दृष्टि से रहस्यात्मक व आध्यात्मिक रही । प्रकृति, मानव, अज्ञात–प्रिय आदि उपादानों को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया ।

अतः आधुनिक हिन्दी कविता भारतेन्दु युग में एक पौधे के समान थी, जो छायावाद तक आते – आते वटवृक्ष में परिणित हो गयी ।

1. **भारतेन्दु–युग :**

भारतेन्दु युग नवजागर का काल रहा । उसने समाज और देश–भक्ति का आदर्श प्रस्थापित किया । बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी काव्य के जनक रहे हैं । इस युग के प्रमुख कवियों में बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन', प्रतापनारायण मिश्र, जगन्नाथदास 'रत्नाकर' राधाकृष्णदास, श्रीधर पाठक, अम्बिकादत्त व्यास, ठाकुर जगमोहनसिंह आदि रहे हैं । यह युग काव्य शिल्पियों का युग था, जिसकी प्रतीति राष्ट्रीय चेतना, भक्ति–भावना, श्रृंगारिक–सौन्दर्य, हास्य – व्यंग्यात्मकता, सामाजिक–जागरूकता, प्रकृति सौन्दर्य, प्रेमानुभूति आदि काव्यात्मक प्रवृत्तियों में होती है ।

1.1 राष्ट्रीय चेतना :

भारतेन्दु-युगीन कवियों की रचनाओं में मुख्यत: देश-भक्ति और राजभक्ति के चित्र ही उभरे हैं । 'विजय वल्लरी', 'भारत-शिक्षा', 'भारत दुर्दशा', 'मन की लहर', 'क्रन्दन', 'भिष्म प्रतिज्ञा', 'देश-दशा', 'धन विनय', 'स्मरणीय भाव' आदि में देश-जागृति की ही अभ्यर्थना हुई है । राजनीतिक अध:पतन, अतीत का गौरव-गान, देश की रक्षा आदि की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है । जैसे -

''रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई ।
हा हा, भारत, दुर्दशा न देखी जाई ॥''[2]

''भयो भूमि भरत में महा भयंकर भारत ।
भए बीरबर सकल सुभर एकहि संग गारत ॥''[3]

1.2 भक्ति-भावना :

भारतेन्दु युगीन कवियों ने भक्ति के पद, लीला-गान और उपदेशात्मक काव्य रचनाएँ की । 'वैशाख-महात्म्य', 'भक्त-सर्वस्व', 'उत्तरार्ध-भक्तमाल', 'वृजचंद चंचल', 'सूर्य-स्त्रोत', 'कुबजा-पचीसी', 'नव भक्तमाल', 'राधामुख षोड़सी' जैसी अन्य भक्ति मूलक रचनाएँ भी उल्लेखनीय है । इस युग के कवियों की रचनाओं में श्रीकृष्ण भक्ति की अभिव्यक्ति हुई है -

''रसना हू बसना रहत, बरनि बठत कर जोर ।
नन्द नन्द मुख चन्द थै, चित हू होत चकोर ॥''[4]

''करत मिली दीप-दान ब्रज - बाला
जमुना सों कर जोरि मनावत मिलैं पिया नंदलाल ॥
स्नान दान जय जोग ध्यान तप संजम नियम बिसाला ॥
इनके फल में हरिचंद गल लगै कृष्ण गुनवाला ॥''[5]

''शिव-सिर-मालति-माल भगीरथ नृपति-पुण्य-फल ।
ऐरावत-गज-गिरिपति-हिम-नग-कण्ठहार कल ।
सगर-सुवन सठ सहस परस जलमात्र उधारन ।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारन ॥''[6]

1.3 श्रृंगारिक-सौन्दर्य :

भारतेन्दु-युगीन कविताओं में श्रृंगार-वर्णन में नखशिख वर्णन, संयोग-वियोग वर्णन, नायिकाभेद वर्णन आदि है । 'प्रेम-सरोवर', 'प्रेमाश्रु', 'प्रेम-तरंग', 'प्रेम-माधुरी', 'श्रृंगार लहर', 'उद्धव-शतक', 'अधमोद्धार शतक', 'नखशिख', 'नवोढ़ारत्न', 'बलवीर पचासा', 'प्यारे प्रसाद', 'प्रेम सतसई', 'प्रेम-संदेशा' आदि में श्रृंगारिक-सौन्दर्य का अंकन मिलता है । मुख्यतः श्रृंगारिकता की दृष्टि से कृष्ण-भक्ति परम्परानुसार काव्यों में सौन्दर्यात्मक दृश्य उभरे हैं ।

''मारग प्रेम को समुझै 'हरिचन्द' यथारथ होत यथा है ।
लाभ कछू न पुकारन में बदनाम ही होने की सारी कथा है ।''[7]

"क्यों इन कोमल गोल कपोलन देखि गुलाब को फूल लजाये?
त्यों हरिचंद जू पंकज के दल सो सुकुमार सबै अंग भायो ।
अमृत से जुग ओंठ लसे नवपल्लव सो कर क्यों है सुहायो ।
पाहन सो मन होते सबै अंग कोमल क्यों करतार बनायो ।"[8]

1.4 सामाजिक जागरूकता :

भारतेन्दु युग में विषय और वर्ण्य-वस्तु की दृष्टि विस्तृत नहीं हो सकी । फिर भी इन कवियोंने समाज में जागरूकता और परिवर्तन लाने का भरसक प्रयत्न किया है । भारतेन्दु युगीन कवियोंने अपनी रचनाओं में सामाजिक कुप्रथाओं, रूढियों, परंपराओं, सड़ीगली प्राचीन मान्यताओं, धार्मिक मिथ्याचार, छलकपट, स्वार्थपटुता अंग्रेजों द्वारा आर्थिक शोषण आदि काव्यगत विषयों से जन चेतना निर्मित की 'भारत-दुर्दशा', 'प्रबोधिनी', 'होली' आदि जैसे काव्यों में सामाजिक करूणा और वेदना उभरी है ।

"मन ही गयो विलाप कछ अब रह्यौ न बाकी ।
उदय हेतु हम बेच चुके माँ चूल्हे चाकी ॥"[9]

"भीतर-भीतर सब रस चूसै । हँसि-हँसि कै तन मन धन मूसै ।
जाहिर बातने में अति तेज । क्यों सखि साजन नहिं अंगरेज ॥"[10]

1.5 प्रकृति सौन्दर्य :

भारतेन्दु युग में इन कवियोंने परंपरागत प्रकृत्ति-वर्णन से हटकर एक नई राह तराशी है । 'गंगा-वर्णन', 'यमुना-वर्णन', 'प्रातसमीरण',

'भारत-बारहमासा', 'काश्मीर सुषमा', 'मेघागमन', 'गुणवंत हेमन्त' आदि में प्रकृति का मार्मिक भावात्मक और अलंकृत रूप प्रस्तुत हुआ है ।

''प्यारी झूलन पधारो झुकि आए बदरा ।
ओढ़ौ सुरूख चुनरि तपै श्याम चदरा ।
देखो बिजुरी चमक्कै बरसै आदरा ।
'हरिचंद' तुम बिन पिय अति कदरा ।''[11]

1.6 प्रेमानुभूति :

प्रणय-भावना में संयोग-वियोग का बड़ा ही हृदय द्रावक वर्णन हुआ है । 'उद्धव-शतक', 'प्रेम सतसई', 'प्रेम-संदेशा', 'प्रेम-माधुरी', 'प्रेम तरंग', 'प्रेमाश्रु', 'प्रेम सरोवर' आदि में प्रेमानुभूत्यात्मक दृश्य चित्र की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है ।

''प्रेम-नेम छांड़ि ज्ञान-छेम जो बतावत सो,
भीति ही नहीं तौ कहा-छातैं रहि जाइंगी ।
धातैं रहि जाइंगी न कान्हा की कृपा तैं इती,
ऊधो कहिबै कौं बस बातैं रहि जाइंगी ॥[12]

''रोकहिं जो तो अमंगल होय औ प्रेम नसै जो कहैं पिय जाइए ।
जो कहैं जाहु न तौ प्रभुता जौ कछू न कहैं तो सनेह नसाइए ।
जो हरिचन्द कहैं तुमरैं बिन जी है न तो यह क्यों पति आइए ।
तासों पयान समै तुमरे हम का कहैं आयै हमैं समझाइए ।''[13]

''बुझै दवानल परम बिरह के प्रेम-परब को भारी ।
मीन-बान के जे प्रेमी जन जल लहि भए सुखारी ॥''[14]

1.7 काव्यात्मक शैली :

इस काल में शैलीगत अभिव्यक्ति में विभिन्नता दिखाई दी । अमिर खुसरों की पहेलियौँ की तरह काव्यात्मक शैली में नाविन्य भी उभरा है । जिसमें 'महेश्वर विलास', 'रामचंद्र भूषण', 'रावणेश्वर', 'कल्पतरू', 'जसवन्त जसोभूषण', 'भाषा छंद प्रकाश', 'रस कुसुमाकर' आदि उल्लेखनीय है ।

''भीतर-भीतर सब रस चूसै । हँसि-हँसि कै तन-मन धन मुसै ।
जाहिर बातन में अति तेज । क्यों सखि साजन नहिं अंगरेज ॥''[15]

1.8 भाषा-सुधारात्मक रूप :

भारतेन्दु-युगीन काव्य-धारा हिन्दी भाषा की पर्याप्त यश अधिकारिणी है ।

''निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा ज्ञान कें मिटत न हिय को सूल ॥''[16]

इस युग में भाषाकीय दृष्टि से विकास और हिन्दी भाषा की उन्नति को ही महत्व दिया गया है । इसी संदर्भ में कवि अज्ञेय मानते हैं - ''यह भाषा-क्रान्ति का दूसरा चरण था, जिसका ध्येय था साधारण जन की भाषा का अंगीकार ।''[17]

अतः पुनर्जागरण के इस युग में काव्यात्मकता, राष्ट्रीय संवेदना और चेतना की प्रवाहमयता बही है । इन कवियों की राष्ट्रीय चेतना के साथ सामाजिक नव-चेतना, भाषाकीय सुधारात्मक और परिस्कृतकार्य तथा लोकमंगल और नवीन दिशाओं में विकासात्मक दृष्टि अधिक रही हैं ।

2. द्विवेदी-युग :

द्विवेदी-युग में सभी क्षेत्रों में क्रान्ति का वातावरण आंदोलन और जन-जागृति का रहा है । यह युग सांस्कृतिक पुनरूत्थान का काल रहा ।

इस युग के महत्वपूर्ण योगदान की दृष्टि से प्रमुख कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, अन्य आदि विशेष उल्लेखनीय है । रूढियों, सड़ीगली जड़ प्राचीन मान्यताओं, अंध-विश्वासों आदि से ऊपर उठकर, विकास की और आगे बढ़ा । इस पर आचार्य द्विवेदीजी कहते हैं - ''जिस काव्य से समाज को कोई शिक्षा नहीं मिलती वह व्यर्थ है ।''[18] मानव समाज के मनो-भावों की काव्य में अभिव्यक्ति प्रवृतियाँ, जिनमें आदर्शवादी, उपदेशात्मक, राष्ट्रीयता, प्रकृति का स्वतन्त्र रूप, इतिवृत्तात्मकता, धार्मिकता, सामाजिक साहित्य, अनुवाद, प्रेम और सौन्दर्य, स्वच्छंदतावादी आदि रही है ।

2.1 राष्ट्रीय भावना :

द्विवेदी युग के कवियों में भारतीय सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना की जागरूकता की अलख जगाने का युग रहा है । यही सांस्कृतिक पुनरूत्थान और राष्ट्रीयता की अलख जगानेवाले कवियों में श्री मैथिलीशरण गुप्त का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है । द्विवेदी युगीन कवियों की काव्य रचनाओं में देश-प्रेम और नवचेतना का सुनहरा समय था । 'जयद्रथ वध', 'भारत-भारती', 'झंकार', 'साकेत', 'द्वापर', 'जय-भारत', 'प्रियप्रवास', 'स्वदेशीकुण्डल', 'भारतोत्त्थान', 'भारत-प्रशंसा', 'भारत-गीत', 'मौर्य विजय', 'वीरक्षत्राणी', 'मातृवंदना', 'भारत-भक्ति', 'राष्ट्र-भारती' आदि रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना और देश का यशोगान तथा गौरव को स्थान मिला है ।

''जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है ।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है ॥''[19]

''सिंहो, सत्याग्रह प्रवाह में गोल बांध बहना होगा ।''[20]

''उठो, भारत का तिमिर भगा दो ।''[21]

2.2 सामाजिक चेतना :

सामाजिक विकास और उत्थान की दृष्टि से इस युग के कवियों ने समाज की सर्वरूपेण उन्नति की अधिक चिंता रही है । 'बाल विधवा', 'नरकवि दर्शन', 'पतित का उलाहन', 'गर्भरण्डा रहस्य', 'साकेत', 'यशोधरा' आदि में समाजोत्थान और नारी-भावना उजागर हुई है -

''दुखी बाल–विधवाओं की है जो गती ।
कौन सके बतला, किसकी इतनी मती ॥''[22]

''बाल–विधवा श्रापवश यह भूमि पात्तक भई ।''[23]

''हमें मत छूना है द्विजराज ।
हम है अछूत, आप हैं आर्य जाति सिरताज ।''[24]

2.3 धार्मिक चेतना :

इस युग में मानव प्रेम, ईश्वर प्रेम और विश्व–प्रेम, जनसेवा में बदल कर धार्मिक–भावना का मुख्य अंग बना है । धर्म की जूठी जंजीरों में जकड़े हुए पीड़ित, शोषित, दुर्बल और दलित वर्गों के प्रति सहानुभूति एवं धार्मिक यथार्थता व्यक्त हुई । जन कल्याण, लोक–भावना, त्याग, परदुःख वर्णन, राष्ट्रीय समस्याएँ आदि का वर्णन 'जाति–विषयक दिव्यदर्शन', 'सिद्धराज' आदि कृतियोँ में हुआ है –

''जन की सेवा करना ही बस है, सब सारों का सार ।
विश्व प्रेम के बन्धन ही में, मुझको मिला मुक्ति का द्वारा ॥''[25]

''मन्दिर का द्वार जो खुलेगा सब के लिए,
होगी तभी मेरी वहाँ विश्वम्भर भावना ।''[26]

2.4 आदर्शवादिता :

द्विवेदी युग में सामाजिक एवं राजनीतिक प्रगति, दरिद्र के साथ सहानुभूति, अश्लीलतापूर्ण श्रृंगार का विरोध, सात्विक वृत्ति आदि आदर्शात्मक प्रवृतियाँ रही है । इस युग की आदर्शात्मक कृतियाँ स्वयं आदर्श बन गयी, जैसे – 'करूणालय', 'मिलन', 'पथिक', 'महाराणा का महत्व', 'चोखे चोपदे:', 'बोलचाल', 'सतसई', 'वनस्थली' आदि । प्रस्तुत दृष्टांत में मानवीय आदर्श स्पष्ट है –

''हृदयहीन जो पड़ा हुआ तो वह है केवल भू का भार
सहृदय ही बस कर सकता है इस जग का सच्चा उपकार ।''[27]

2.5 प्रकृत्ति–चित्रण :

इस युग में प्रकृति कविता का वर्ण्य विषय बनी । अलंकृत, उद्दीपन आलंबन आदि रूपों में प्रकृति को उभारा गया । 'प्रिय–प्रवास', 'हेमन्त', 'निदाध वर्णन', 'वर्षा वर्णन', 'होली में हर्ष', 'बसन्त विलास', 'शरद','जूही की कली', 'झरना', 'पंचवटी', 'बनशोभा', 'गंगावतरण' आदि में प्रकृति के विभिन्न रूप निखरे है ।

''चारू चन्द्र की चंचल किरणें खेल रही है जल थल में,
शुभ्र चाँदनी बिछी हुई थी अवनि और अम्बरतल में ॥''[28]

''नाचत मंजुल–मोर भौर साजत सारंगी ।
करति कोकिला गान तान तानति बहुरंगी ॥

श्यामा सीटी देति चटक चुटकी चुटकावत ।
धूमि-झूमि झूकि कल कपोत तबला गुट कावत ॥''[29]

2.6 भाषा-सुधार :

द्विवेदी युगीन कवियों नें खड़ीबोली-भाषा परिष्कार का कार्य किया । 'सरस्वती', 'ज्योति पत्रिका', 'मर्यादा' आदि पत्रिकाओं की सहायता से वाक्योचित सरसता, माधुर्य और प्रौढ़ता लाने के पूर्ण प्रयास किये । 'रंग में भंग', 'वीर-पंचरत्न', 'प्रणवीर-प्रताप', 'भारत-भारती', 'अन्योक्ति दशक', 'मृत्युंजय', 'शान्ति मयी शय्या' आदि में मुहावरें, अलंकार, छन्द एवं संस्कृत वृतों का प्रयोग किया गया ।

''शुद्धा शुद्ध शब्द तक का है जिन को नहीं विचार ।
लिखवाता है उनके कर से नये-नये अखबार ॥''[30]

''गन्ध विहीन फूल है जैसे, चन्द्र चंन्द्रिका हीन
यों ही फिफा है मनुष्य का जीवन प्रेम-विहीन ।''[31]

अतः द्विवेदी युगीन कवियों नें आंतरिक भावों के साथ भाषाकीय बाह्य वर्णन को भी अपनी कृतियों में स्थान दिया है । फलतः द्विवेदी युग की प्रवृत्तियाँ समग्र रूप से विकासात्मक पथ पर चली ।

3. छायावाद :

छायावाद अस्मिता की खोज का युग रहा है । इस युग के चार आधार स्तंभ प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी हैं । इन कवियों ने निर्गुण निराकार को प्रणयानुभूति का आधार बनाया । आध्यात्मिकता एवं रहस्यानुभूति इस युग की प्रमुख प्रवृत्तियाँ रही है, जिस से जन-समाज को दिशा निर्देश मिला एवं मानवतावादी दृष्टि प्रस्थापित हुई । इसके साथ वेदना, दुःख, निराशा आदि को भी जन्म मिला, जिसकी अभिव्यक्ति का माध्यम प्रधान रूप से प्रकृति को बनाया गया । राष्ट्रीय - जागरण की प्रवृत्ति भी युगीन प्रवृत्तियाँ के साथ कदम मिलाती अग्रसर हुई ।

3.1 वैयक्तिकता :

छायावादी कवियों ने अपनी स्वानुभूति - हर्ष, शोक, सुख-दुःख की अभिव्यक्ति का माध्यम काव्य को बनाया है । इन कवियों के 'स्व' का आविर्भाव 'आँसु', 'अच्छ्वास', 'दीपशिखर', 'लहर', 'वीणा', 'ग्रन्थि', आदि में हुआ है ।

''मेरे सपनों में हँस-हँस पड़ते नव-प्रभात,
मेरे संघर्षो में धुंधली-सी निहित रात,
मेरे चरणों पर लहराते हैं सप्त सिंधु,
मेरे मस्तक पर मेंडरात आकाश सात !''[32]

''मैं अनन्त पथ में लिखती जो
सस्मित सपनों की बातें,
उनको कभी न धो पायेंगी
अपने आँसू से रोतें !''[33]

3.2 प्रकृति-चित्रण :

प्रकृति आदिकाल से ही मानवाभिव्यक्ति का मध्यम बनी है । छायावादी कवियों ने आलम्बन, उद्दीपन, प्रकृति का मानवीकरण, नारी के रूप सौन्दर्य में प्रकृति-वर्णन, आलंकारिकता, वातावरण, रहस्यानुभूति आदि विभिन्न दृष्टि से काव्य को प्रकृति की सजीवता अर्पण की हैं । 'परिमल', 'ग्राम्या', 'रश्मि', 'नीहार', 'सांध्यगीत' आदि में प्रकृति के सूक्ष्म रूप के दर्शन मिलते है । महादेवी के काव्य में प्रकृति और प्रेम का संयोग चित्र मिलता है ।

''दिवसावसान का समय
मेधमय आसमान से उत्तर रही है
वह सन्ध्या सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे —
तिमिरांचल में चंचलता का कहीं नहीं आभास
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर -
किन्तु ज़रा गम्भीर-नहीं है, उससे हास-विलास ।''[34]

''फूलों का गीला सौरभ पी
बेसुध सा है मन्द समीर,
भेद रहे हों नैश तिमिर को
मेधो के बूँदों के तीर;''[35]

3.3 नारी सौन्दर्य और प्रेमाभिव्यक्ति :

प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति छायावादी कवियों का मुख्य विषय रहा है । आशा, आकुलता, आवेग, तल्लीनता, निराशा, पीड़ा, अतृप्ति, स्मृति, विषाद आदि का अभिनव एवं मार्मिक चित्र खीचा है । 'कामायनी', 'लहर', 'प्रेम पथिक', 'यामा', 'प्रेयसी' आदि में नारी सौन्दर्य व प्रेमानुभूति का सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन प्रकृति के माध्यम से प्रस्तुत हुआ है ।

''वही चुम्बन की प्रथम हिलोर
स्वप्न-स्मृति, दूर, अतीत, अछोर ।''[36]

''इस अर्पण में कुछ और नहीं केवल उत्सर्ग छलकता है,
मैं दे दू और न फिर कुछ लूं इतना ही सरल झलकता है ।''[37]

''करूणामय को भाता है,
तम के परदों में आना ।
हो नभ की दीपावलियों
तुम पल भर को बूझ जाना ।''[38]

3.4 श्रृंगारिकता :

छायावादी श्रृंगार-भावना मानसिक, सूक्ष्म एवं अतिन्द्रीय है । श्रृंगारिकता के महत्वपूर्ण माध्यम दो रहे - एक नारी का अतिन्द्रीय सौन्दर्य वर्णन एवं दूसरा प्रकृति पर नारी-भावना का आरोहण । 'जूही की कली', 'कामायनी', 'चेतना का उज्वल वरदान', 'वसन्त रजनी', 'भावी पत्नी', 'तुलसीदास' आदि कृतियों में भरसक श्रृंगारिकता मिलती है ।

''कण - कण कर कङ्कण, प्रिय
किण-किण रव किङ्किणी,
रणन-रणन नूपुर, उर लाज,
लौट रङ्किणी;
और मुखर पायल स्वर करें बार-बार
प्रिय-पथ पर चलती, सब कहते श्रृंगार !''[39]

चाँदनी का श्रृंगार समेट
अधखुली आँखों की यह कोर,
लुटा अपना यौवन अनमोल,
ताकती किस अतीत की ओर !''[40]

3.5 रहस्यानुभूति :

छायावादी कवियों ने जीवन और जगत को आध्यात्मिक और रहस्यात्मक दृष्टि से देखा है । महादेवी आध्यात्मिक रंग में इतनी डूब

गई है कि उनके अज्ञात प्रियतम की गहन खोज में भीतरी अंत: स्तल में खो जाती हैं । उन्होंने लौकिक जगत के द्वारा अलौकिक सत्तामें ईश्वरीय अनुभूति का अहसास किया है । फलत: कई आलोचकोने 'छायावाद' को 'रहस्यवाद' नाम से भी अभिहित किया है । 'मौन निमंत्रण', 'तुम और मैं', 'जागरण', 'दिपशीखा', 'निरजा', 'रश्मि' आदि कृतियों में रहस्यात्मक दृष्टि रही है ।

''सिन्धु को क्या परिचय दें देव !
बिगड़ते बनते वीचि - विलास;
क्षुद्र है मेरे बुद्-बुद् प्राण
तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश !''[41]

''चित्रित तू मैं हूँ रेखा क्रम,
मधुर राग तू मैं स्वरसंगम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम,
का छाया में रहस्यमय,
प्रेयसी प्रियतम का अभिनय क्या ?''[42]

3.6 निराशा और करूण वेदनानुभूति :

दु:ख, पीड़ा, निराशा, करूणा और वेदना छायावाद के प्रमुख तत्व रहे है । वेदना महादेवी की सर्वाधिक प्रिय सखी रही । वह अनन्त की गोद में पहुँचकर भी अपनी चिर संगिनी वेदना को ढूंढती है ।

''पर शेष नहीं होगी यह, मेरे प्राणों की क्रीड़ा
तुम को पीड़ा में ढूँढा, तुममें ढूँढूँगी पीड़ा ।''[43]

''मैं नीर भरी दुःख की बदली,
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमडी कल थी मिट आज चली !''[44]

''..... दुःख सा मुक
स्वप्न सा, छाया - सा अनजान
वेदना - सा, तम सा गम्भीर
कहां से आया वह आहवान ?''[45]

3.7 राष्ट्रीय जन-जागृति :

राष्ट्रीय-जागृति का संबंध बाह्य जगत से है । छायावादी कवियों की अभिव्यक्ति का एक स्वर स्वतंत्रता प्राप्ति का भी था । 'मातृ-वंदना', 'वीणा', 'पुष्प की अभिलाषा', 'धारा', 'प्रपात के प्रति', 'कण', 'बादल राग', 'जागो फिर एक बार', 'राम की शक्ति पूजा', 'महाराज शिवाजी का पत्र' आदि में राष्ट्रीयता निरूपित हुई है ।

''हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा-समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती,

अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञा हो चलो,
प्रशसत्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो ।[46]

''चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूंथा जाऊं,
चाह नहीं प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,

x x x

''मुझे तोड़ लेना बनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक ।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक ॥''[47]

''भारत मेरे विशाल
मुझको कह लेने दो उदार
फिर एक बार, बस एक बार ।''[48]

3.8 मानवतावादी दृष्टि :

मानवतावाद छायावाद का उज्जवल पक्ष है । मानव समानता की भावना से अनुप्राणित होकर - मानव प्रेम, करूणा, असाम्प्रदायिक्ता, उदारता, विश्व बन्धुत्व आदि भावों को अभिव्यक्ति मिली । 'कामायनी', 'तुलसीदास', 'युगवाणी', 'युगांत' जैसे काव्यों में मानवतावादी दृष्टिकोण है ।

''हाय ! मृत्यु का ऐसा अमर, अपार्थिव पूजन
जब विषण निर्जीव पड़ा हो जन का जीवन !
संग-सौध में ही श्रृंगार मरण का शोभन,
नग्न क्षुधातुर, वास-विहीन रहें जीवन जन !''[49]

''मेरे हँसते अधर नही जग-
की आँसू - लडियाँ देखो !
मेरे गीले पलक छुओ मत
मुरझाई कलिया देखो !''[50]

3.9 अभिव्यंजनात्मक क्रान्ति :

छायावादी काव्यों में प्रतीकात्मकता, चित्रात्मक भाषा, मुक्त गीति-शैली, भारतीय एवं पाश्चात्य अलंकारों का प्रयोग, कोमल कान्त पदावली, परम्परागत छन्दों का निषेध तथा मुक्त छंद विधान इत्यादि अभिव्यंजनात्मकता के अंग रहे है । 'उस पार', 'यमुना के प्रति', 'सन्ध्या सुन्दरी' आदि कृतियों में अभिव्यंजनात्मक नाविन्य प्रस्तुत हुआ है ।

''मृदुल अंक घर, दर्पण सा सर
आँज रही निशि, दृग इन्दिवर ।''[50]

''तरंग उठी पर्वताकार
भयंकर करती हाहाकार,
अरे उनके फेनिल उच्छ्वास
तरी का करते है उपहास;
हाथ से गई छूट पतवार,
कौन पहुँचा देगा उस पार ?''[51]

वस्तुतः छायावादी काव्य प्रवृतियाँ व्यक्तिवादी रही । कवियों की भावाभिव्यक्ति प्रकृति एवं जन-साधारण के द्वारा हुई । छायावादी

कविता रहस्य, वेदना, दुःख, पीड़ा आदि से संबंधित होने पर भी समाजवादी एवं राष्ट्रवादी बनी । यही छायावाद की मुख्य विशेषता है ।

☸ निष्कर्ष :

अतः आधुनिक काल की दृष्टि से काव्य विकास का चरमोत्कर्ष स्वर्णिम युग है; जो उत्तरोत्तर नवीन दिशाएँ, प्रवाह, परिवर्तन, अनुभूति, संवेदना और भावनात्मक, वैचारिक, सामाजिक, राजनितिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक सभी क्षेत्रमें आगे बढ़ा है ।

शिल्प की दृष्टि से तो प्राचीनता को अपनाते हुए नवीनता ही प्रवेश कर गई है ।

🕮 संदर्भ ग्रंथ सूचि :

1. 'हिंदी साहित्य का इतिहास', आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पृ.31

2. 'भारतेन्दु समग्र' कवि-भारतेन्दु हरिश्चंद्र/संपादक : हेमन्त शर्मा, पृ.460

3. 'प्रेमधन सर्वस्व भाग-1' प्रेमधन, पृ.66

4. 'सुकवि सतसई', अम्बिकादत्त व्यास, पृ.62

5. 'भारतेन्दु समग्र', सं. हेमन्त शर्मा, पृ.81

6. 'हिन्दी काव्य संग्रह', सं. बालकृष्ण राव, पृ.226 (उद्धृत)

7. 'भारतेन्दु समग्र', सं. हेमन्त शर्मा, पृ.43

8. वही, पृ.154

9. 'देवी स्तुति', बालमुकुन्द गुप्त, पृ.22

10. 'भारतेन्दु समग्र', सं. हेमन्त शर्मा, पृ.811

11. वही, पृ.148

12. 'हिन्दी काव्य संग्रह' : सं. बालकृष्ण राव, पृ.244 (उद्धृत)

13. 'भारतेन्दु समग्र', सं. हेमन्त शर्मा, पृ.716

14. वही, पृ.116

15. वही, पृ.811

16. वही, पृ.228

17. 'हिन्दी साहित्य' एक आधुनिक परिदृश्य, अज्ञेय, पृ.50

18. 'कालीदास और उनकी कविता', महावीरप्रसाद द्विवेदी, पृ.118

19. 'स्वाभिमान और देशाभिमान', गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', पृ.248

20. 'शंकर सर्वस्व' : सं. श्री हरिशंकर शर्मा, पृ.248

21. 'मर्मस्पर्श', हरिऔध, पृ.130

22. 'मनो विनोद', श्रीधर पाठक, पृ.76
23. वही, पृ.170
24. द्विवेदीयुगीन काव्य : पूनमचन्द्र तिवारी, पृ.239 (उद्धृत)
25. वही, पृ.228 (उद्धृत)
26. 'सिद्धराज', मैथिलीशरण गुप्त, पृ.20
27. 'द्विवेदी युगीन काव्य', पूनमचन्द्र तिवारी, पृ.147
28. 'पंचवटी', मैथिलीशरण गुप्त, पृ.1
29. 'रत्नाकर-भाग-१', ('गंगावतरण'), रत्नाकर, पृ.62
30. द्विवेद्वी काव्य माला : द्विवेदी संग्रह, देवीदान शुक्ल, पृ.29
31. 'मिलन' रामनरेश त्रिपाठी पृ.06
32. 'मेरी कविताएँ', भगवतीचरण वर्मा, पृ.17
33. 'नीहार', महादेवी वर्मा, पृ.14
34. 'परिमल', निराली, पृ.135
35. 'रश्मि', महादेवी वर्मा, पृ.31
36. 'स्मृति', वही, पृ.31
37. 'कामायनी', जयशंकर प्रसाद, पृ.83
38. 'नीहार', महादेवी वर्मा, पृ.35
39. 'गीतिका', निराला, पृ.38
40. 'यामा', महादेवी वर्मा, पृ.47
41. 'रश्मि', वही, पृ.43
42. 'नीरजा', वही, पृ.28

43. 'नीहार', वही, पृ.38

44. 'संधिनी', वही, पृ.109

45. 'नीहार', वही, पृ.41

46. 'स्कंदगुप्त', जयशंकर प्रसाद, पृ.64

47. 'मरण ज्वार', माखनलाल चतुर्वेदी, पृ.15

48. 'यामा', महादेवी वर्मा, पृ.33

49. 'युगान्तर', सुमित्रानन्दन पंत, पृ.80

50. 'नीरजा', महादेवी वर्मा, पृ.33

51. वही, पृ.14

52. 'नीहार', वही, पृ.29

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

महादेवी : व्यक्तितत्व एवं कृतितत्व

❁ प्रस्तावना :

1. जीवनी :

1.1 जाति

1.2 पूर्व स्थान

1.3 जन्म–स्थान : विविध निवास स्थान

1.4 वंश–परिचय

1.5 जन्म

1.6 नामकरण

1.7 शैशव और किशोरावस्था

1.8 तारूण्यावस्था

1.9 प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था

1.10 शिक्षा

1.11 पारिवारिक – परिचय

1.12 पितामह का प्रभाव

1.13 नाना–नानी का प्रभाव

1.14 पिता का प्रभाव

1.15 माता का प्रभाव

1.16 विद्वानों का सम्पर्क

1.17 मित्र–मंडल

1.18 विवाह

1.19 साहित्य – रचना की प्रेरणा

1.20 जीविकोपार्जन

1.21 राजनीति एवं सामाजिक–जीवन

1.22 संस्थाओं से संबंध

1.23 सम्मान एवं पुरस्कार

2. व्यक्तितत्व–विश्लेषण :

2.1 बाह्य पक्ष :

2.1.1 आकृति एवं वेशभूषा

2.1.2 श्रृंगारिकता का अभाव

2.1.3 विनोद – परिहास

2.1.4 वार्तालाप

2.1.5 बाल–सुलभ व्यक्तितत्व

2.1.6 दिनचर्या और खान–पान

2.1.7 कला–ज्ञान

2.1.8 रचना–प्रक्रिया

2.1.9 जन–नेतृत्व

2.1.10 सौन्दर्य एवं कलात्मक व्यक्तितत्व

2.1.11 व्यवस्था – प्रियता

2.2 आंतरिक पक्ष :

2.2.1 मैत्री भाव की उत्कटता

2.2.2 मानवतावादी दृष्टिकोण

2.2.3 अन्याय का विरोध

2.2.4 नौकरों के प्रति आत्मीय – व्यवहार

2.2.5 बौद्धदर्शन – दृष्टिकोण

2.2.6 धार्मिक – दृष्टिकोण एवं भारतीय संस्कृति

2.2.7 सेवाभाव

3. कृतित्त्व :

3.1 पद्य कृतियाँ :

3.1.1 'नीहार'

3.1.2 'रश्मि'

3.1.3 'नीरजा'

3.1.4 'सांध्यगीत'

3.1.5 'दीपशिखा'

3.1.6 'हिमालय'

3.1.7 'सप्तपर्णा' (अनुदित)

3.1.8 'प्रथम आयाम'

3.1.9 'अग्निरेखा'

3.2 गद्य कृतियाँ :

3.2.1 'अतीत के चलचित्र' (रेखाचित्र)

3.2.2 'श्रृंखला की कड़ियाँ' (नारी-विषयक सामाजिक निबंध)

3.2.3 'स्मृति की रेखाएँ' (रेखाचित्र)

3.2.4 'पथ के साथी' (संस्मरण)

3.2.5 'क्षणदा' (ललित निबंध)

3.2.6 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध' (आलोचनात्मक)

3.2.7 'संकल्पिता' (आलोचनात्मक)

3.2.8 'मेरा परिवार' (पशु-पक्षियों के संस्मरण)

3.2.9 'चिंतन के क्षण'

3.3 संकलन :

3.3.1 पद्य कृतियाँ :

3.3.1.1 'यामा'

3.3.1.2 अन्य पद्य कृतियाँ ('संधिनी', 'गीतपर्व', 'परिक्रमा', 'संभाषण', 'आत्मिका', 'नीलाम्बरा', 'दीपगीत')

3.3.2 गद्य कृतियाँ :

3.3.2.1 'स्मृति चित्र' (गद्य-संग्रह)

3.3.2.2 'महादेवी साहित्य - भाग - 1, 2, 3' (समग्र साहित्य)

3.3.2.3 'मेरे प्रिय निबंध' (निबंध - संग्रह)

4. अंतर् संबंध :

4.1 मुक्तक गीत और प्रभाव

4.2 वेदनाभाव और प्रभाव

4.3 वैयक्तिकता और प्रभाव

4.4 दार्शनिकता और प्रभाव

4.5 प्रतीक योजना और प्रभाव

4.6 प्रेम निरूपण और प्रभाव

4.7 प्रकृति चित्रण और प्रभाव

❁ **निष्कर्ष :**

द्वितीय अध्याय

महादेवी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

❁ प्रस्तावना :

व्यक्तितत्व और कृतित्व दोनों परस्पर एक दूसरे पर निर्भर एवं पूरक हैं । प्रत्येक काव्य-सृजन या कृतित्व साहित्यकार के व्यक्तितत्त्व की ही प्रतिच्छाया और उसका प्रसार होता है । कवि का व्यक्तितत्त्व अपने ही अनुरूप विशिष्ट शैलियों का माध्यम और उपकरणों का चयन करता है । साहित्यकार का व्यक्तितत्त्व जितना महान होगा उतनी ही उसकी कृत्ति गौरवशाली होगी । उसकी निष्ठा जितनी सत्य होगी, रचना उतनी ही महत्त्वपूर्ण होगी । साहित्यकार का सूक्ष्म व्यक्तितत्त्व के प्रकाशन के लिए ही साहित्य की सर्जना करता है । जिस प्रकार हम अपने बोलने से, उठने से, खाने-पीने से और अपनी छोटी छोटी आदतों से अपने व्यक्तितत्त्व का प्रकाशन करते हैं उसी प्रकार साहित्यकार साहित्य के माध्यम से अपने व्यक्तितत्व को प्रकट करता है । साहित्यकार की सृजन चेतना पर उसके व्यक्तितत्त्व, संस्कार, परिवेश और परिस्थितियों, अध्ययन-मनन के विषयों, युगीन प्रवृत्तियों आदि का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता रहता है । वास्तव में व्यक्तितत्त्व, व्यक्ति की अदम्य प्रेरणा और बाह्य प्रभाव का सुफल है । साहित्य का प्रधान आग्रह मानव व्यक्ति पर ही है । फलतः किसी-न-किसी रूप में उसका जीवन साहित्य में व्यक्त हो जाता है । वस्तुतः व्यक्ति के विकास की सबसे बड़ी विशेषता यह होनी चाहिए कि उसके बौद्धिक

उत्कर्ष हृदय की भावात्मक स्फूर्ति और उसकी क्रिया में एक ऐसा सामंजस्यपूर्ण तादात्म्य संगठित होता रहे कि जीवन के मूल राग को विरोधी स्वरों से बचाने के साथ-साथ व्यक्ति स्वयं भी इस प्रकार ढ़लता चले कि जीवन की व्यापक कसौटी में सिद्ध होकर सारवान हो उठे । महादेवीजी का व्यक्तितत्व ऐसा ही सारगर्भित और सुगठित है । साहित्यकार का जीवन जितना ही गुरूत्वपूर्ण और दर्शन जितना ही उदात होता है उसका सर्जन भी उतना ही भव्य होता है ।

हिन्दी साहित्य संसार में महादेवी सर्वतोमुखी व्यक्तितत्त्व सम्पन्न छायावादी रहस्यवादी कवयित्री हैं । साथ ही महादेवी में संवेदनशीलता और बहुज्ञता की समानता तो स्पष्ट रूप से दिखायी देती है किन्तु जीवन में वे जितनी प्रसन्न और हास-परिहास प्रिय है, साहित्य में उतनी ही दु:खार्द ।

1. जीवनी :

किसी भी साहित्यकार के व्यक्तितत्व और कृतित्व की गहराई तक जाने से पहले उसकी जीवनी देखना अनिवार्य है । व्यक्ति का व्यक्तितत्व उसकी आनुवंशिक परम्पराओं, पारिवारिक एवं सामाजिक वातावरण, शिक्षा-दीक्षा, संस्कारों, वैयक्तिक परिस्थितियाँ एवं बाह्य आन्तरिक द्वन्द्वत्मक प्रभाव से निर्मित व विकसित होता है । अत: महादेवी के व्यक्तितत्व को समझने हेतु उनके जीवन-वृत्त का ज्ञान अपेक्षित एवं आवश्यक है ।

1.1 जाति :

प्रतिभा संपन्न महादेवी वर्मा का गोत्र वर्मा हैं । यह वर्मा परिवार कायस्थ जाति में आता है । इसका क्षेत्र मुख्य रूप से उत्तर भारत माना गया है । ये कायस्थ मुख्य रूप से एक शहर से संबंध रखनेवाले माने गए, धीरे-धीरे ये उत्तर भारत में फेल गए और अपना स्वतंत्र स्थापत्य जमाने लगे । 19 वीं सदी में मिश्र जाति के रूप में पहचानी गई, इसका मुख्य केन्द्र फर्रूखाबाद रहा । इस जाति का संबंध विशेष रूप से ब्राह्मणों के प्रभाव तथा दूसरी तरफ जमींदारी के ध्येय का मिश्रित रूप में परिवर्तित कर देता है ।

महादेवी की उप-जाति वर्मा के साथ-साथ सक्सेना भी मानी गई है । सक्सेना और वर्मा दोनों फर्रूखाबाद जिले तथा उत्तर-पश्चिम में अवध प्रान्त तक फैले हुए हैं । आज यह जाति दो दिशाओं में बढ़ रही है । कुछ मूल परंपरा के आधार को संभाले हुए है, कुछ नौकरी धंधे में अपने को समेटे हुए हैं । नौकरी की प्रथा मुख्य रूप से ब्रिटिशों का प्रभाव और प्रेरणा कही जा सकती है । विवाह के समय भी कायस्थ परिवार अन्य जाति की कन्या से विशेष विवाह करने को तैयार रहते थे । उनमें जाति प्रथा का कोई विशेष कड़ा नियम नहीं था । यही कारण हे कि महादेवीजी के पिता शुद्ध कायस्थ थे और उनकी माता शुद्ध वैष्णव परिवार से आई थी । धन-संपदा की दृष्टि से यह जाति आरंभ से ही समृद्ध मानी गई है । इतना ही नहीं इस जाति के लोग वीर यौद्धा तथा बहादुर भी हैं ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि जाति में पाये जानेवाले सर्वगुण महादेवी जी को प्राप्त हुए है । हर क्षेत्र में इसका विस्तृत अस्तित्व बना हुआ है । महादेवी वर्मा इसी समृद्ध – विशाल – योद्धा जाति की उच्च आदर्शोवाली संतान हैं । जिनकी बराबरी आज तक इस जाति की कोई महिला नहीं कर पाई है । हिंसा इस जाति का सामान्य भाव है पर महादेवी संपूर्ण रूप से अहिंसक हैं । जाति के कुछ प्रचलित नीति–नियमों से महादेवी जी आपने को मुक्त रखती हैं ।

1.2 पूर्व स्थान :

महादेवीजी के पूर्वज किसी एक शहर या गाँव में स्थायी रूप से नहीं ठहरे । सिताबराय लखनऊ [1] में मुसलमान शासको के साथ रहा करते थे । एकबार अंग्रेजों की लड़ाई में वे धायल हो गए और उन्होंने अपने एक व्यक्तिगत मित्र द्वारा कहलवाया कि उनकी पत्नी–पुत्र अपने गाँव जलालाबाद[2] चले जाएँ । सिताबराय की पत्नी अपना गाँव होते हुए भी अपने रक्षकों के साथ मायके फर्रूखाबाद[3] चली आयी और वहीं पर स्थायी रूप से रहने लगीं । बांकेबिहारी नौकरी धंधे के कारण कुछ समय तक अवध में रहे, परन्तु जब अवध पर अंग्रेजों का आधिपत्य हो गया तो वे सन् 1858 में पुनः फर्रूखाबाद चले गये और वहीं पर रह कर अपने पूर्वजों की जमींदारी संभालने लगे । बाँकेबिहारी के पुत्र गोविंदप्रसाद का जन्म फर्रूखाबाद में हुआ ।[4] गोविन्दप्रसाद अपने पिता की इकलौती संतान रहे ।

गोविन्दप्रसाद उत्साही व्यक्तित्व धारण करने वाले सिद्ध हुए । इसी कारण उन्होंने पूर्वजों के पारंपरिक व्यवसाय को ग्रहण नहीं किया, उन्होंने अपना जीवन स्वतः स्वतंत्र रूप से निर्मित किया । आरंभ में उन्होंने क्लर्क की नौकरी स्वीकार की और अपनी पढ़ाई जारी रखने के लिए कानपुर[5] चले गए । यहीं पर रहकर उन्होंने बी.ए. तक की शिक्षा प्राप्त की, जब इलाहाबाद युनिवर्सिटी से एम.ए. पास करनेका समय आया तो गोविन्दप्रसाद एक बार फिर फर्रूखाबाद लौट गये और वहीं रह कर एम.ए. की परीक्षा उतीर्ण की । उन्होंने एक स्थान पर रहकर या किसी एक व्यवसाय के सहारे जीवन नहीं गुजारा । उनके परिचय में आने पर यही स्पष्ट होता है कि वे हमेशा चलते-फिरते रहे । उनके स्वच्छंद स्वभाव के कारण हमें यह प्रवृत्ति दिखाई देती है । बिहार राज्य के दरभंगा जिले में[6] भभुआ तथा भागलपुर[7] में उन्होंने अंग्रेजी शिक्षक की नौकरी की । कुछ वर्षो के बाद वे भोपाल[8] गये और वहाँ नवाबों की एक सेविका संस्था में कार्य करने लगे ।

1.3 जन्म-स्थान : विविध निवास स्थान

महादेवी वर्मा का जन्म उत्तर प्रदेश के फरूखाबाद नामक शहर में हुआ था । जब तक वे शिक्षा लेने के योग्य न हुई तब तक अपने पिता के साथ यत्र-तत्र धूमती रहीं, यही कारण था कि वे फर्रूखाबाद बिहार, भोपाल के बाद इन्दौर में कुछ वर्षों के लिए स्थायी रूप में रहीं । गोविन्द प्रसाद इन्दौर के डेली कॉलेज में प्राध्यापक का कार्य संभालने लगे लगभग सन् 1907 से लेकर सन् 1913 तक वे इस कार्यक्षेत्र में रूके

रहे ।[9] जब महादेवी के विवाद का प्रसंग आया तो वे सन् 1914 में नरसिंहगढ़ की ओर मुड़े ।[10] नरसिंहगढ़ दक्षिण इन्दौर का और पश्चिम भोपाल का एक छोटा सा राज्य था ।[11] यह स्थान नौजवानों के काफी आकर्षण का केन्द्र रहा है ।

महादेवीजी ने भी इस क्षेत्र से प्रारंभिक साहित्य रचना की प्रेरणा ग्रहण की हो, यहीं से उन्हें प्रकृति का रोमांच तथा स्वप्नों की सुनहरी दुनिया देखने की कल्पना शक्ति प्राप्त हुई हो, ऐसा स्वीकार किया जा सकता है ।

शिक्षा प्राप्ति के लिए महादेवी जी इलाहाबाद आ गयी और वहीं छात्रावास में रहकर पढ़ाई का कार्य करती रहीं । काव्य-रचना की ख्याति के कारण वे इतनी प्रसिद्ध हो गई थीं कि इलाहाबाद और आस-पास के क्षेत्रों में होने वाली काव्य गोष्ठियाँ तथा कवि सम्मेलनों में उनका बोल बाला होने लगा । एम.ए. की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् तुरन्त ही महिला विद्यापीठ उनका निवास स्थान बन गया । विद्यापीठ में विभिन्न सुधार करने के पश्चात् उनका ध्यान साहित्यकारों की ओर गया । किसी भी आपत्ति से घिरे हुए साहित्यकार के लिए एक सहारा बन जाए ऐसी संस्था का निर्माण किया गया 'साहित्यकार संसद भवन' की स्थापना प्रयाग में सन् 1944 में की गई ।[12] साहित्यकारों के हितों की रक्षा करने वाली इस संस्था को चलाने के लिए वे रसूलाबाद[13] में ही रहने लगीं ।

रसूलाबाद के किसी भी निरक्षर ग्रामीण मल्लाह से कहा जाए कि हमें 'गुरूजी' के यहाँ जाना है तो वह बेधड़क महादेवी जी के निवास-स्थान 'साहित्यकार संसदभवन' पहुँचा देता हैं ।

अपने पिता के संस्कारों पर पली महादेवी वर्मा उन्हीं के समान किसी एक स्थान पर स्थायी रूप से नहीं रह सकीं । परिणाम स्वरूप अस्वस्थ स्वास्थ्य रहने के बावजूद भी वे कभी इलाहाबाद, कभी रामगढ़ या कभी नैनीताल धूमती रहती थीं । इनके मित्रों का कहना है कि विद्यापीठ के निवासस्थान के पश्चात् इन्हें रामगढ़ का निवास विशेष प्रिय है । वहाँ की हरियाली तथा फूलों और पत्तों से सुशोभित लता-वृक्ष इन्हें अत्यधिक प्रिय हैं इस तथ्य को स्वीकार करते हुए वे स्वयं कहती हैं ''रामगढ़ हमें काफी पसंद है, वहाँ की शांति हमारे प्राणों में उत्साह की उमंगें भरने लगती है । अवकाश का समय मैं विशेषकर रामगढ़ में ही बिताती हूँ । सेब और लीची के पेड़ इस निवास स्थान को अत्यधिक सुन्दर बना देते हैं ।''[14] स्पष्टतः महादेवी जी अपने प्रिय स्थान रामगढ़ में ही रहती थी । कभी-कभी विद्यापीठ की मुलाकात के लिए आती थी, परन्तु बादमें वे विद्यापीठ में न रहकर इलाहाबाद शहर के बाहर गंगा के किनारे पर मकान में रहती थीं । जिसकी भव्यता, सुन्दरता मन को आकर्षित किये बिना नहीं रहती ।

1.4 वंश-परिचय :

समाज के प्रत्येक व्यक्ति पर अपने वंशजों का प्रभाव पाया जाता है । जब किसी महान् आत्मा के संपर्क में जाने की तमन्ना होती है तो

स्वाभाविक रूप से जिज्ञासा की हूक मन को विचलित कर देती है । परिणाम स्वरूप हम उस महानात्मा के समीप न जाकर सर्वप्रथम उसके वंशजों के करीब पहुँच जाते हैं । इसका एक मुख्य कारण यह भी हो सकता है कि उनका प्रभावशाली व्यक्तितत्व हमें मोहित कर लेता है ।

साहित्यकारों की श्रृंखला में 'अनमोल हीरे' की उपाधि प्राप्त करनेवाली महादेवी के वंशजों की गाथा गौरव गरिमा से मंडित है । प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रतिभा में अद्वितीय है । सिताबराय बहादुर योद्धा थे, जो मुसलमान शासकों द्वारा काफी सम्मानित किये गये । उन्हें 'राय साहब' का खिताब भी प्राप्त हुआ था ।[15] धन-दौलत की दृष्टि से भी यह परिवार समृद्ध रहा है । छोटे बड़े कार्यों से खुश होकर किमती उपहार भेंट कर देना इनके वैभव विलासिता के परिचायक सिद्ध होते हैं । एक बार जब सिताबराय अँग्रेजों से लड़ते समय घायक हो गये थे, तो उन्होंने अपने मित्रों से कहा हममें से कोई साथी बच जाये तो वह मेरे बीवी-बच्चों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दे । उनके एक मुसलिम साथी ने कहा था - ''आप फिकर न करें सब आपकी मर्जी के मुताबिक ही होगा ।''[16] यह सुन उन्होंने अपने हाथ की हीरे की अँगूठी तथा गले में पड़ी सोने की जंजीर उतार कर दे दी थी और कहा था ''यह तुम्हारा इनाम है ।''

बाबू बाँकेबिहारी अंग्रेजी शासकों से काफी प्रभावित रहे । उन पर अंग्रेजों का प्रभाव विपुल मात्रा में पड़ा परन्तु अंतिम समय में उनका साथ छोड़कर वे अपने वंशजों की पारम्परिक जमींदारी सम्भालने लगे

और स्थायी रूप से फर्रूखाबाद में रहने लगे । इनके साहस, वीरता और उत्साह जैसे गुणों का उत्तराधिकार गोविन्दप्रसाद जी को प्राप्त हुआ ।

गोविन्द प्रसाद जी भी अपने वंशजो के समान अंग्रेजों से हिल मिल कर रहे । उनकी मित्रता कायम करने के लिए वे हमेशा तत्पर रहते थे । वे नरसिंहगढ़ के राजकुमार के शिष्य थे ।[17] नौकरी धंधा छोड़कर वर्षों तक वे राजाओं की सेवा में लीन रहते थे । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पाश्चात्य प्रवृत्ति को स्वीकार किया और आचरण में उसका प्रयोग करते रहे । सरलता, कोमलता, सौम्यता तथा उदारता और विद्वता इनके व्यक्तितत्व के विशिष्ट गुण रहे हैं । इन महान् प्रतिभाओं का समन्वित प्रभाव महादेवी जी के जीवन को दीप्ति मय बनाने में सफल हुआ हैं । उन्होंने अपने जीवन में वंशों के गुणों को हमेशा स्वीकार किया, परिणामतः हम देखते हैं कि आज वे हिन्दी साहित्य के आकाश में एक तारे के समान जगमगा रही हैं ।

1.5 जन्म :

साहित्य संसार का एक दुर्भाग्य है कि साहित्यकार अपनी कलम से अपना स्पष्ट परिचय नहीं देते । जब – जब हम उनके जीवन में प्रवेश करना चाहते हैं तो विवादों की कठोर दीवार को पार करना एक समस्या बन जाती है । यही परिस्थिति यहाँ पर महादेवी के जन्म से सम्बन्धित है । रंग, अबीर और गुलाल से अनुरंजित वातावरण की मादकता, चारों तरफ का धूमिल आकाश, रंग और गुलाल से धूसरित धरती,

रंग-बिरंगे मुख़डे, नन्हें-नन्हें हाथों में थमी पिचकारियाँ, फागुनी वातावरण को रागमय एवं सजीव बना रही थी । मनुष्य और प्रकृति होली के इस वातावरण में हर्ष और उल्लास से वैर-भाव भूलकर एक दूजे से परस्पर गले मिल-मिलकर अपना आत्मीय प्रेम लुटा रहे थे ।

इस आनंदित वातावरण का आनंद बाँटने के लिए एक नन्हें शिशु का आविर्भाव हुआ । पवित्र होली के दिन से नूतन वर्ष का प्रारम्भ माना जाता है । कुछ ऐसी मान्यता रही है कि - "इस दिन प्रह्लाद (प्रकृष्ट आहलाद) की रक्षा और पूतना (जो पवित्र नहीं है) का वध होता है ।"[18] परन्तु महादेवी जी के जन्म सम्बन्धी जो विवाद उत्पन्न हो रहे हैं, उनका अंत कब होगा ?

सामान्यतः ऐसी मान्यता रही है कि महादेवी जी का जन्म 24 मार्च, सन् 1907 को होली के दिन प्रातः आठ बने उत्तरप्रदेश के फर्रूखाबाद नामक शहर में हुआ था ।[19]

एक अँग्रेजी विद्वान का कहना है कि -

Mahadevi was born on March 24th in 1902 which happended to be the day of the Holi Festival that Year."[20]

- Karine Chomer

महादेवी जी का कहाना है कि वे सन् 1986 में 24 मार्च को 80 वर्ष पूरे कर चूकी थीं ।[21] तात्पर्य यह है कि उनके मतानुसार उनका जन्म 24 मार्च सन् 1906 में हुआ होगा ।

श्री बाबूराम सक्सेना जी महादेवी जी के बहनोई हैं उनका कहना है कि महादेवी जी का जन्म 24 मार्च सन् 1902 में हुआ था ।[22] सारांश रूप में देखा जाए तो यह स्पष्ट है कि उनका होली के दिन 24 मार्च को ही हुआ था परन्तु किस सन् में हुआ, इसका ठोस प्रमाण देना कठिन है ।

अंग्रेजी विद्वान् के मतानुसार होली का पर्व 24 मार्च को सन् 1902 में आता है न कि सन् 1907 में ।[23] वास्तविक रूप में देखा जाए तो भारतीय पंचांग के अनुसार 24 मार्च सन् 1902 के फाल्गुन शुक्ल 15 तिथि पड़ती है, जबकि 24 मार्च सन् 1907 को चै.शु.10वीं तिथि पड़ती है ।

बाबूराम सक्सेनाजी का कहना है कि आज से 50-60 वर्ष पूर्व प्राय: ऐसी प्रथा रही थी कि अनेक परिवारों में लड़कियों की उम्र कम प्रदर्शित की जाती थी शायद इसी प्रभाव के कारण महादेवी जी और उनके परिवार के सदस्य सन् 1902 को स्वीकार न करके सन् 1907 को स्वीकार करते हैं । एक प्रश्न यह भी उद्‌भवित होता है, अगर सन् 1907 बराबर है तो स्वयं महादेवीजी इस तथ्य के स्पष्टीकरण में यह क्यों कहती हैं कि, सन् 1986 में हमने 80 वर्ष पूरे किए ।

तर्क वितर्क के पश्चात् यह सिद्ध होता है कि महादेवीजी का जन्म मूलत: 24 मार्च सन् 1902 में प्रात: 8 बजे होली के दिन हुआ था । इनके जन्म के समय समाज की ऐसी परिस्थिति थी कि "बड़ी बूढियाँ संकेत से मूक गाने वालियों को जाने के लिए कह देती और बड़े

बूढ़े इशारे से नीरव, बाजे वालों को विदा देते । यदि ऐसे अतिथि का भार उठाना परिवार की शक्ति से बाहर होता, तो उसे बैरंग लौटा दे के उपाय भी सहज थे ।''[24] इस समाज में कन्या जन्म अभिशाप माना जाता था । इसी डर से हेमरानी देवी ने अपनी प्रसव पीड़ा भूल सर्वप्रथम महादेवी (अपनी बेटी) को टटोला, वह जीवित है या मार दी गई । कन्या महादेवी के जन्म से सात पीढ़ियों की अतृप्त लालसा तृप्ति प्राप्त कर सकी ।

1.6 नामकरण :

गोविन्दप्रसाद तथा हेमरानी देवी की प्रथम संतान लक्ष्मी है, इस समाचार ने सारे परिवार को आनंद-विभोर कर दिया । अशुभ माने जाने वाले तथ्य शुभ रूप में परिवर्तित होते जान पड़े । क्योंकि इस सौभाग्यशाली कन्याने काफी प्रतीक्षा और मनौतियों के बाद जन्म लिया था । ''बाबा ने इसे कुलदेवी दुर्गा का अनुग्रह माना और आदर प्रदर्शित करने के लिए इनका नाम रखा-महादेवी ।''[25]

महादेवी नाम अपनी सभी सिद्धियों का सार्थक करता प्रतीत होने लगा । साकेतकार की प्रचलित उक्ति - ''सौ - सौ पुत्रों से भी अधिक जिनकी पुत्रियाँ पूतशीला ।''[26] वास्तव में राजा जनक की बेटियों के लिए जितनी उपयुक्त है, तभी तो महाकवि मैथिलीशरण गुप्ताजीने महादेवी के लिए लिखा है -

''सहज भिन्न दो महादेवियाँ एक रूप में मिलीं मुझे,
बता बहन साहित्य - शारदा या काव्य-श्री कहूँ तुझे ।''[27]

1.7 शैशव और किशोरावस्था :

संसार की भीड़ में जब से महादेवी नाम अस्तित्व में आया, उसी क्षण से महिमा की माला में घटनाओं के मोती जुड़ते गए । सम्पन्न परिवार की लाड़ली संतानने हर किलकारी में उस गूंज का समावेश किया, जिससे नवीन संदेह निर्मित होते गए महादेवी जी का बचपन विशेष रूप से इन्दौर की छावनी में बीता था । राजकीय व्यक्तियों के सम्पर्क तथा उनके व्यवहारों ने इन्हें अत्यधिक आकर्षित किया था । खान-पान से लेकर रहन-सहन तक प्रत्येक क्षेत्र में ये पाश्चात्य प्रभाव से ढँकी हुई रही । परिस्थितियों के अनुसार देखा जाए तो इस समय अंग्रेजों तथा मुसलमानों की संस्कृति का प्रखर विरोध चल रहा था । गोविन्द प्रसाद जी इस परम्परा के स्पष्ट विरोधी रहे । परिणाम स्वरूप महादेवी जी का बचपन मुक्त और स्वच्छंद रूप से व्यतीत हुआ, इतना ही नहीं आजीवन यह प्रभाव उनके व्यक्तित्व में द्दष्टिगोचर होता है ।

चंचल स्वभाव की महादेवी जी में रोने की एक अदभूत कला पाई जाती है । जब-जब उनकी माता कार्य करने के लिए तैयार होती या भोजन व्यवस्था की तैयारी करती, तभी उनके कामों में रूकावट डालने के लिए महादेवी जी तटस्थ रूप से तैयार बैठी रहेती थी । इसका एक ही कारण बताया जाता है कि वे अपनी माता के सामीप्य को खोना नहीं चाहती थी । अंत में हेमरानी जी विवश होकर बालिका महादेवी को अफीम पिला देती और बालिका कल्पना लोक में विचरण करने लगती तथा माता अपने कार्य पूर्ण करती । अफीम का सेवन करने से महादेवीजी का विकास कुछ अंशों में काफी शीघ्र होने लगा ।

वे तीन वर्ष की अवस्था में आम की पाल से सार चुन लेने में निपुण हो गई । वर्ण माला ज्ञान के साथ ही भाई-बहनों को चिढ़ाने की कला प्रदर्शन करने लगीं ।

पाँच वर्ष की उम्र में भोपाल-इन्दौर की यात्रा करने का अवसर प्राप्त हुआ । इसी दरम्यान इनकी भेंट 'अतीत के चलचित्र' के 'रामा' से हो गई । छोटे भाई की स्पर्धा में साम-दाम-दण्ड के आधार पर रामा से 'राजा भइया' कहलवाती । ''वय की गति के साथ जीवन विस्तार की छाया में यह घर की शिशु-कुशलता, बगीचे के फूलों और पड़ोसियों के घर तक पहुँचने लगी । रसाल और फूलों का यह आकर्षण रसात्मक - कलात्मक संस्कार का प्रतीक माना जाए तो 'राजा भइया' कहलाने की हठ पुरूष के साथ समानाधिकार के आग्रह का बीजारोपण जान पड़ता है ।''[29]

सात वर्ष की अवस्था से ही उनके मन में दया, ममता, सहानुभूति जैसी भावनाओं का विकास होना शुरू हो गया था । मनुष्य की नहीं बल्कि जीव जन्तुओं के प्रति जो रागात्मक प्रेम है, उसकी एक घटना इस प्रकार पाई जाती है । जाड़े की रात थी, सन-सन करती हुई हवा चल रही थी ऐसे समय पड़ोस में एक आवारा कुत्ती ने बच्चों को जन्म दिया था । पिल्ले की कूँ - कूँ की ध्वनि महादेवी को असह्य लगने लगी, वे बेचैनी से कहने लगीं'' बड़ा जाड़ा है, पिल्ले जड़ा रहे हैं, मैं उनको उठा लाती हूँ, सवेरे यही रख दूँगी । चलो - चलो मेरी अच्छी जिज्जी ।''[30] अस्वीकृति पाते ही वे रोने चिल्लाने लगी । अंत में पिल्लों को घर में लाना ही पड़ा ।

रोती–चिल्लाती हठीली महादेवी को चुप करना एक समस्या के समाधान से भी कठिन कार्य होता । इस उपक्रम से बचने के लिए परिवार के सभी सदस्य उनकी चाह तथा व्यवस्था का बड़ी सतर्कता से ध्यान रखते जब ये अपनी नानीजी के पास जाती तो शाम होते ही सो जाती थीं और रात में उठकर कहती – 'भूख लगी है, खीचड़ी खाएँगे ।' तब नानी उठती, खिचड़ी पकाती और ये खाती । नानीजी इनकी आदत्त से परिचित हो गई थी । वे रात को सोने से पहले ही सारा इन्तजाम करके सोती ताकि पकाने में देर न लगे ।[31] अपनी नानी से 'बेला रानी'[32] की कहानी सुनने में इन्हें बड़ा आनन्द आता था ।

आठवें वर्ष एक घटना, जिससे महादेवी जी काफी प्रभावित हुई । उस घटना से उद्‌भावित होने वाली वेदना महादेवीजी को आजीवन मुक्ति नहीं दे सकी । नौकर ने अपनी पत्नी को इतना पीटा कि वह लहूलुहान होकर रोती हुई जिज्जी के पास दौड़ आई । अन्यथा वह उसे मार डालता । गर्भवती स्त्री के लिए कामकाज का भारी बोझ ऊपर से ऐसी मार ! जिज्जी ने सहानुभूति से उसकी गाथा सुनी और नौकर को डाँटा फटकारा । सब शांत हो जाने पर महादेवी जी ने कहा – '' हाय कितना पिटा है ! यह भी क्यों नहीं पीटती ? जिज्जी से सहज भाव से कह दिया 'आदमी मारे भी तो औरत कैसे हाथ उठा सकती है ?'' और अगर तुमको बाबू इसी तरह मारे तो ?' 'ना, ना बाबू ऐसा नहीं कर सकते ! आर्य समाजी होकर भी मेरे साथ सत्यनारायण की कथा सुनते हैं, बड़े अच्छे आदमी हैं । कोई – कोई आदमी दुष्ट होते हैं । 'तो फिर इतने दुष्ट के साथ शादी क्यों की ?'' पगली शादी तो बड़े बूढ़े करते हैं,

यह बेचारी क्या करे ? अब कोई उपाय नहीं । 'इसके बाद दोनों एक दूसरे को देखते रहे । जिज्जीने दीर्ध साँस ली और महादेवी जैसे अन्दर डूब गई ।[33]

महादेवी खिलौने – गुड़ियों और गृहकार्य के चक्करों में न पड़कर फूल, तितली, हरीदूब और फर्श या दीवार पर कुछ उकेरने के लिए कोयला और सिंदूर से सम्बन्ध रखती थी । इनके कोई दोस्त नहीं था – बया का धोंसला देखना जो खजूर के पेड़ पर लटका हो, कुत्ते नेवले की देखाभाली करना इनका मुख्य कार्य था । माँ ने इनसे कहा भी ''खेलना छोटों का काम है, बड़ों का काम है, पढ़ना – या काम करना ।''[34] घर पर कुछ शिक्षा देने के पश्चात् इन्हें स्कूल भेजना आरम्भ किया गया । जहाँ पर हमें इनकी वाक्पटूता का परिचय मिलता है । अध्ययन आरम्भ होने के प्रथम दिन ही इन्होंने अध्यापक से छुट्टी की माँग की, पूछे जाने पर तपाक से उत्तर मिला – ''फूल तोड़ लाऊँ नहीं तो माली तोड़कर बाबूजी के फूलदान में लगा देगा, जहाँ वे सूख जाते है । 'अध्यापक ने कहा तुम्हारे तोड़ने से नहीं सूखते ?' सूखते तो है पर भगवान् जी पर चढ़ाने के बाद, फिर जिज्जी उन्हें नदी भिजवा देती हैं, माली कूड़े में फेंक देता है, और बाबूजी उन्हें उठाने भी नही देते ।'' यह सुन पंडित जी ने छुट्टी दे दी ।''[35] अध्यापकजी ने निर्णय कर लिया कि महादेवी जी पढ़ाकू दोनों रूप में प्रवीण है । वैसे सामान्यतः लड़कियाँ पढ़ाकू होती हैं या लड़ाकू ।

महादेवी के बचपन की चंचलता का एक महत्वपूर्ण अविस्मरणीय प्रसंग इस प्रकार है । जिसमें निडरता, हठीलापन, दृढ़ता एवं स्वाभिमान का भाव स्पष्ट झलकता है । ''एक दिन दशहरे का मेला देखने की हठ करने पर रामा बहुत अनुनय-विनय के उपरान्त माँ से, हमें कुछ देर के लिए ले जाने की अनुमति पा सका । खिलौने खरीदने के लिए जब उसने एक को कंधे पर बैठाया और दूसरे को गोद लिया, तब मुझे उँगली पकड़ाते हुए बार-बार कहा उँगरिया जिन छोड़ियों राजा भइया ।' सिर हिलाकर स्वीकृति देते - देते ही मैंने उँगली छोड़कर मेला देखने का निश्चय कर लिया । भटकते - भटकते और दबने से बचते-बचते जब मुझे भूख लगी, तब रामा का स्मरण आना स्वाभाविक था । एक मिठाई की दुकान पर खड़े होकर मैंने यथा सम्भव उद्विग्नता छिपाते हुए प्रश्न किया - 'क्या तुमने रामा को देखा है ? वह खो गया है ।' बूढ़े हलवाईने धुंधली आँखों में वात्सल्य भरकर पूछा - 'कैसा है तुम्हारा रामा ? मैंने होठ दबाकर हँसते हुए कहा - 'बहुत अच्छा हैं ।' इस हुलिया से रामा को पहचान लेना कितना असम्भव था, यह जानकर ही कदाचित् वृद्ध कुछ देर वहीं विश्राम कर लेने के लिए आग्रह करने लगा (मैं हार तो मानना नहीं चाहती थी, परन्तु पाँव थक चुके थे और मिठाइयों से सजे थालों में कुछ कम निमंत्रण नहीं था, इसी से दुकान के एक कोने में बिछे टाट पर सामान्य अतिथि की मुद्रा में बैठकर मैं बूढ़े से मिले मिठाई रूपी अर्ध्य को स्वीकार करते हुए उसे अपनी महान् यात्रा की कथा सुनाने लगी ।

वहाँ मुझे ढूँढते–ढूँढते रामा के प्राण कण्ठगत हो रहे थे । सन्ध्या समय जब सबसे पूछते–पूछते बड़ी कठिनाई से रामा उस दुकान के सामने पहुँचा, तब मैंने विजय गर्व से फूलकर कहा – 'तुम इतने बड़े होकर भी खो जाते हो रामा ?' रामा के कुम्हलाए मुख पर ओस के बिन्दु जैसे आनंद के आँसू ढूलक पड़े । वह मुझे धुमा–धुमा कर सब ओर से इस प्रकार देखने लगा, मानों मेरा कोई अंग मेले में छूट गया हो । घर लौटने पर पता चला कि बड़ो के कोश में छोटों की ऐसी वीरता का नाम अपराध है, पर मेरे अपराध को अपने ऊपर लेकर डाँट–फटकार भी रामा ने ही सही और हम सबको सुलाते समय उसकी वात्सल्य भरी थपकियों का विशेष लक्ष्य भी मैं ही रही ।''[36]' शैशव की अनेक विशेषताएँ आजभी ज्यों की त्यों उनके व्यक्तितत्व में विद्यमान हैं ।

जब महादेवी इन्दौर की छावनी में रहती थीं तो वहाँ पर उस समय लैंप जलाए जाते थे । पिता की तरह उन्हें भी कलात्मक लैंप अच्छे लगते थे । इसीलिए कलात्मक लैंप का संग्रह घर में किया गया था । संध्या समय जब लैंप जलाए जाते, तो वे अपने स्वामिभक्त प्रिय सेवक रामा के साथ प्रत्येक कमरे में घूसती हुई यह सूचित करती रहती कि किस कमरे में किस रंग का ग्लोब रखा जाएगा । इनके जीवन में रंगों के प्रति मोह तथा कलात्मक सौन्दर्य का आकर्षण यहीं से प्राप्त होता है । महादेवी जी का कहना है – ''फूलों को खिला देना मेरे हाथ में नहीं था, न उन्हें मुरझाने से रोक सकती थी, किन्तु दीपकों का बुझाना – जलाना तो मेरे हाथ में था स्वभावतः दीपक की झिलमिलाहट का

आकर्षण मेरे लिए विशेष था ।''[37] पढ़ते समय भी अक्षरों से अधिक रंग बिरंगे ग्लोब के शीशे में झिलमिलाती लौ को पढ़ाना और हवा के झोंकें पर उसका उठना गिरना देखना अच्छा लगता था । दीपकों का यही आकर्षण आज भी इनके जीवन को मोहित किए हुए है । तभी तो दीपावली जैसे पर्वों पर ये बिजली के बन्दनवार की अपेक्षा कलात्मक झिलमिलाते दीपक सजाना ही विशेष पसंद करती हैं ।

बचपन के काव्य-संस्कारों को उन्होंने कौमार्य में ही कुंठित व्यक्तित्व की अंतर्मुखता और तत्पश्चात् अध्ययन की महानता से विकसित कर लिया है, यही उनकी काव्य चेतना का मूल तंतु प्रतीत होता हैं ।[38]

जीवन की धारा में बहनेवाले हर क्षण को इन्होंने अपने व्यक्तितत्व के जटिल बन्धन में बाँध लिया । शैशव - अवस्था से ही प्रत्येक घटना अपने संस्कारों की छाप छोड़ती गई । प्रत्येक प्रसंग अविस्मरणीय रूप धारण कर स्थिर हो गया । टटोलने पर यह प्रतीत होता है कि आज भी वह सजीव रूप में ज्यों का त्यों स्थित है ।

1.8 तारूण्यावस्था :

ऋतुओं के राजा बसंत की तरह मदमस्त इनकी तरूणाईने ऐसी आभा फैलायी जैसे सावन की हरियाली अनचाहे भी हर नजर को अपनी ओर खींच लेती हैं । राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक प्रत्येक कार्य में महादेवी जी ने भाग लिया । साहित्य सृजन से लेकर गली-गली नारे लगाने का कार्य तथा अछूतों को छूने तक का कार्य इनकी कार्य - प्रणालिका में समाविष्ट होते हैं । उन्होंने सामान्य झोंपड़ी में रहने वाले

गरीबों, अछूतों से ही मित्रता या आत्मीयता स्थापित नहीं की बल्कि राज भवनों में रहनेवाली रानी भी इनकी ओर आकर्षित रहीं । राज घरानों का सम्पर्क होने के कारण इन पर उनका पूरा प्रभाव पाया जाता है । रेशमी वस्त्र पहनना, विभिन्न प्रकार के अलंकारों से अपने आप को सजाना, टहलने जाते समय चुस्त रीति से हर चीज की पसंदगी करना, धूमने फिरने की तैयारी में घंटों बिता देना, अंग्रेजी बोलना, घुड़ सवारी करना, नौका विहार के लिए जाना इत्यादि । मध्यम वर्गीय वातावरण में रहने के बाद भी उनका जीवन किसी राजकुमारी के वैभव से कम वैभवशाली नहीं रहा ।

प्रत्येक कार्य इनके लिए सहज सामान्य होता । एक सिक्के की दो तरफी आकृति के समान इनका जीवन रहा है । महादेवी जी ने प्रयाग से सिरकी के बने एक दर्जन सूप लाने का आदेश दिया तो वे बिना किसी झिझक, बिना किसी संकोच के सूप ले जाने को तैयार हो गई । ''प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बारह सूपों के टांगने पर जो दृश्य उपस्थित हुआ, उससे भी अधिक विचित्र दृश्य तब प्रत्यक्ष हुआ, जब राष्ट्रपति भवन के हर द्वारा पर सलाम ठोकने वाले सिपाहियों की आँखें विस्मय से खुली रह गई ऐसी भेंट लेकर कोई अतिथि न कभी पहुँचा था, न पहुँचेगा पर भवन की तत्कालीन स्वामिनी ने मुझे अंकमें भर लिया ।''[39]

महादेवी पढ़ाई में तेजस्वी थी, परीक्षा में अच्छा स्थान प्राप्त कर छात्रवृत्ति लेती थीं, परन्तु पाठ्य पुस्तकों के प्रति उनका हमेशा घोर विराग रहा । इण्टर तक पहुँच जाने पर भी परीक्षा के समय आचार्य

सुधा लता उन्हें तीन घंटे बैठकर पढ़ने के लिए विविध प्रलोभन देती थी । महादेवी जी कहती हैं – ''ग्रीष्म की उस दोपहर के सुनसान में मेरी दृष्टि पुस्तक के पृष्ठ और घड़ी की सुई के बीच में दौड़ लगाती रहती थी और चार के अंक पर सुई के पहुँचते ही वह मुझे पुस्तकों के बंडल के साथ अपने दरवाजे पर पातीं और तब आइसक्रीम पाने के उपरांत में प्रायः उस बंडल को दूसरे दिन के लिए वहीं सुरक्षित रख आती थी ।''[40]

कवि सम्मेलनों तथा काव्य गोष्ठियों में वे जितनी रूचि रखती, उतनी परीक्षा के समय लापरवाह रहती थी, तभी तो ''जब प्रथम प्रश्नपत्र की तैयारी करके जाती तब द्वितीय सामने आजाता और जब द्वितीय के लिए प्रस्तुत होती तब पता–चलता तृतीय आनेवाला है ।''[41] महादेवी वर्मा अपने यौवनकाल में आए अनेकों आरोह–अवरोहों को बड़ी सरलता एवं साहजिकता से पार करती हुई आगे बढ़ती गई हैं ।

1.9 प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था :

ताल–तरंगों सा प्रवाहित महादेवी जी का जीवन काफी रहस्यमय है । समय के प्रवाह को उन्होंने अच्छी तरह पहचाना है इतना ही नहीं उपयोगी तथ्यों को बड़ी सावधानी से ग्रहण भी किया । अपनी रूचि, इच्छा को हमेशा ध्यान में रखकर कदमों को आगे बढ़ाया । सामान्यतः संसार का आदान मात्र मनुष्य को पूर्ण संतोष नहीं देता, उसे प्रदान का भी अधिकार चाहिए और इस अधिकार की विकसित चेतना ही आदर्श का पर्याप्त है । छोटा सा बालक भी दूसरों की दी हुई वस्तुओं को ग्रहण

करने के लिए जितना उत्सुक होगा, उन्हें अपनी इच्छा और पसंद के अनुसार रखने, जोड़ने, तोड़ने आदि के लिए भी उतना ही आकुल होगा । सभ्यता, समाज धर्म एवं काव्य आदि मनुष्य और संसार के इसी चिरन्तन आदान-प्रदान के इतिहास हैं ।

समाज में एक विशिष्ट सत्ता ऐसी शक्ति है, जिसके पीछे तमाम लोग घूमते नज़र आते हैं, ऐसा ही समाज में साहित्यकार का भी अपना एक शक्तिशाली अस्तित्व होता है । तभी तो एकबार नेहरूजीने महादेवीजी से कहा था - ''महादेवी दरबार मेरा क्या है ? वह तो तुम्हारे दद्‌दा मैथिलीशरण गुप्त का है, जहाँ आधी दिल्ली बैठी रहती हैं ।''[42] पर आज यही दरबार इलाहाबाद में महादेवी जी के प्रांगण में लगता हैं । इनके दरबार का ढंग कुछ निराला है । शाम होते ही लोगों का ताँता लग जाता है । गप-शप में साहित्यक, सामाजिक, राजनैतिक सभी विषय होते हैं । दद्‌दा के यहाँ वहाँ चिरगाँव के बने लड्‌डू और मठरी होते थे, महादेवी जी के यहाँ पिंटू की दुकान के बने गुलाब - जामुन और गरमा-गरम समोसे होते हैं । शायद ही कोई व्यक्ति ऐसा होगा जो इस प्रसाद से वंचित रहा हो ।

महादेवी के जीवन पर भौतिक जगत् का प्रभाव उनमें अस्थिरता स्थापित न कर सका । लक्ष्य की सिद्धि के लिए उन्होंने अंतर्जगत के नियमों की पुकार को सुना है । अपनी गहराई में दूसरों को खोजा तथा दूसरों की अनेकता में अपना अस्तित्व स्थापित करने का प्रयास किया है । उन्होंने हर डबडबाये नेत्रों को समझने का प्रयत्न ही नहीं किया,

बल्कि उनमें डूब जाने की तत्परता व्यक्त की हैं । उनके जीवन की समर्थ अभिव्यक्ति इन शब्दों में साकार होती है - ''जब एक व्यक्ति दूसरों के दुःख में अपने दुःख को मिलाकर बोलता है, तब उसके कंठ में दो का बल होगा और इसी क्रम से जो असंख्य व्यक्तियों के दुःख में अपना दुःख खोकर बोलता है उसके कंठ में असीम बल रहना अनिवार्य है ।''[43] उनके द्वारा कहे गए ये शब्द उनके जीवन पर योग्य प्रकाश डालने का कार्य करते हैं ।

महादेवी में आज भी बचपन और युवावस्था के लक्षण पाए जाते हैं । वे कहती हैं बचपन में हमने गुड़िया का खेल नहींवत् मात्रा में खेला, पर आज की उम्र में भी गुड़ियों के प्रति, अन्य खिलौनों के प्रति विचित्र आकर्षण है । इनके हाथी दाँत, लकड़ी की छोटी-छोटी सुन्दर - सुन्दर ढ़ेरों चिड़ियाँ, हाथी, ऊँट आदि बड़े बक्से में बन्द हैं, जो जन्माष्टमी के अवसर पर झांकी को सजाने के काम आती हैं, फिर बक्से में बंद कर दी जाती हैं ।

अच्छा खाना, अच्छा पहनना उन्हें बेहद पसंद है । कहीं जाते समय तैयार होने में घंटों लगा देती हैं । इससे उन्हें सुरूचि सम्पन्न नारी कहा जा सकता है । इनके जीवन में एक विशषे सौन्दर्य बोध है, जिसे उच्च आभिजात्य का परिणाम कहा जा सकता है । मान-सन्मान करना और करवाना इनकी मर्यादा में रहे हैं । इनके कमरें में लटकी तस्वीर से यह स्पष्ट जाहिर होता हैं । बताया जाता है कि एक बार श्रीमती इंदिरा गाँधी और महादेवी वर्माने साथ-साथ एक फोटो खिंचवाने का निर्णय किया । उस समय प्रश्न यह

उपस्थित हुआ कि 'पोज' कैसा लिया जाए, क्योंकि कुर्सी एक थी और व्यक्ति दो । इंदिराजी कुर्सी पर बैठे यह महादेवी जी को स्वीकार्य नहीं था, वे स्वयं कुर्सी पर बैठे यह उचित नहीं लग रहा था । परिणाम यह आया कि दोनों ही देवियाँ कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी रहीं । वे आज तक यही कहती रही हैं कि बचपन के तुतले उपक्रम से जीवन के विकास में, जो उन्हें उचित लगा है, वही उन्होंने ग्रहण किया है । उसके लिए चाहे हठ या विद्रोह ही क्यों न करना पड़ा हो । संसार का कोई भी प्रलोभन या भय उन्हें कार्य से विमुख न कर सका ।

समाज के लिए वे संदेश देते हुए कहती है – ''विकासशील गति के सम्बन्ध में यह स्मरण रखना आवश्यक है कि वह स्वास्थ्य का लक्षण है, व्याधि का नहीं । साधारणतः सन्निपात ग्रस्त समाज में स्वस्थ से अधिक अस्थिरता होती है । डाल में लगे सजीव पत्ते से अधिक खरखराहट भरी गति उस सूखे पत्ते में रहती है, जो आँधी पर दिशाहीन सरसर उड़ता धूमता है । टूटा तारा स्थायी तारे से अधिक सीधी रेखा पर दौड़ता है । शरीर से सबल – बुद्धि से निश्चित और हृदय से विश्वासी पथिक वही है, जो कहीं पर्वत के समान अड़िग रहकर बवंडर को आगे जाने देता है और कहीं प्रवाह के समान चंचल ठोकर शिलाओं को पीछे छोड़ आता है । ''[44]

हर धातु, हर वस्तु तथा प्रकृति के हर तत्त्व को, विभिन्न कसौटियों से पार होकर ही एक सुदृढ़ आकार मिलता है । मानव तो कसौटियों के लिए ही निर्मित हुआ है, यह तथ्य अस्वीकार्य नहीं । महादेवी जी ने

बताया कि – ''आप हजारों मील दूर वाले लोग हमें पहचानते हों, पर इलाहाबाद वाले हमें नहीं जानते ! एक कवि सम्मेलन में अमरिका के अतिथि हाजिर हो जाते हैं, और हमारे पत्र अहमदाबाद की पोस्ट ओफिस में होते हैं । जब वापसी डाक में ये पत्र हमारे पास आते हैं तब तक सम्मेलन की समाप्ति हो चुकी होती है; अतः समाज की इस सुन्दर व्यवस्था को क्या नाम दूँ ।''[45] खिन्नता व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा – ''जब इन्सान इन्सान को नहीं पहचानता तो और किसे पहचानेगा ? दर- दर की ठोकर खाता हुआ एक निराश्रित, भूखा-प्यासा मानव, चोरी या लूटमार नहीं करेगा तो क्या भगवान् के समक्ष बैठ नैवेद्य चढ़ाकर आरती उतारेगा ?''[46]

महादेवी जी का जीवन उल्लासमय वेग से भरा हुआ है । अनायास ही वह अपनी स्थिति का स्पष्ट परिचय देता रहता है । उनके जीवन पर समसामयिक समाज, परिवार, वैयक्तिक जीवन की विषमता और दार्शनिक तथा चिंतन का प्रभाव पड़ा है । महादेवी जी ने एकनिष्ठ हो, अबाध गति से अपने भावमय सृजन तथा कर्ममय जीवन की साधना के साथ-साथ संलग्न रहकर इस घोषणा को प्रत्यक्ष रूप से सार्थक बनाने में अनन्य सफलता पाई है । ''कला के पारस का स्पर्श पा लेने वाले का कलाकार के अतिरिक्त कोई नाम नहीं, साधक के अतिरिक्त कोई वर्ग नहीं, सत्य के अतिरिक्त कोई पूँजी नहीं, भाव-सौन्दर्य के अतिरिक्त कोई व्यापार नहीं और कल्याण के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं ।''[47] महादेवी जी ने असमान तत्वों के बीच सामंजस्य जरूर स्थापित किया परन्तु कभी भी उन्होंने अन्याय के प्रति समाधान स्वीकार नहीं किया ।

हक, अधिकार और न्याय के लिए उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र में विद्रोह किया और आज भी कर रही हैं (साहित्य के माध्यम से) ।

डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' के साक्षात् इन्टरव्यू वार्ता में आप कहती हैं – ''संघर्ष हमारा प्राण है और वह हमें करना है, आगे भी करेंगे, बिना संघर्ष जिंदा भी कौन रहा है, जीवित रहने के लिए संघर्ष करना हमारे विद्रोही स्वभाव की विशषेता है ।''[48] महादेवी जी आज उस सतह पर पहुँच गई हैं जहाँ तिमिर की सीमा पार करके वे निस्सीम पथ की पंथिनी हैं । उस पथ की अशेषता को जानते हुए भी उनके धैर्य और विश्वास का अवसान नहीं हुआ है । उनके जीवन की दृढ़ता ही उन्हें अमरता की मंझिल तक पहुँचाने में सफल हो रही है ।

1.10 शिक्षा :

श्री गोविन्द प्रसाद जी प्रगतिवादी व्यक्ति थे । समाज की परवाह किये बिना उन्होंने महादेवी को एक पुत्र के समान शिक्षा दी । लगभग पाँच वर्ष की उम्र से उनका शिक्षण कार्य आरम्भ हुआ । कुछ दिनों तक उन्हें घर में ही शिक्षा दी गई संस्कृत और ब्रज पढ़ाने के लिए ब्राह्मण पंडित जी आते, उर्दू की शिक्षा मौलवी जी देते, संगीत सिखाने नारायण महाराज आते थे तथा चित्रकला सिखाने के लिए सदाशिव राव नामक महाराष्ट्रीयन विद्वान् आते थे । महादेवी जी चित्रों में रंग भरने की विशिष्ट कला श्री रवि वर्मा जी से सीखती थीं, जो अपनी कला के कारण भारत भर में प्रसिद्ध थे । इसी दरम्यान हेमरानी जी ने दोनों पुत्रियों को गृह कार्य की शिक्षा देने का भी प्रबन्ध कर दिया । ''उन्होंने

लड़कियों की शिक्षा का प्रारम्भ आँगन की पुताई से किया, गोबर-मिट्टी आँगन में डाली गई । दो चमारिने शिक्षक बनकर आई, एक बोरा गेहूँ आया, जिसे फटकना सीखा गया फिर खाना बनाने की स्वयं माँ ने शिक्षा दी । महादेवी कुशाग्र बुद्धिशाली होने के कारण नौ वर्ष की उम्र में सब सीख गई । इसके बाद उन्हें पढ़ने-लिखने, खेलने, कूदने की स्वतंत्रता मिली ।''[49]

आर्य समाजी संस्कारों के कारण उन्हें सन् 1912 में इन्दौर के मिशन स्कूल में प्रारंभिक शिक्षा के हेतु भेजा गया । सन् 1916 मे इनका विवाह हो गया । इसके परिणाम स्वरूप शिक्षण में व्याधात हुआ, क्योंकि इनके पितामह और श्वसुर दोनों लड़कियों की शिक्षा के विरोधी थे । संयोगानुसार अचानक इनके श्वसुर का देहान्त हो गया और इसी समय महादेवी जी को एक बार फिर पढ़ाई आरम्भ करने का सुअवसर मिला । सन् 1919 में इन्होंने पाँचवी कक्षा की छात्रा के रूप में डायमंड ज्यूबिली क्रास्थवेट महिला कॉलेज इलाहाबाद में प्रवेश किया । सन् 1921 में मिडिल तथा सन् 1925 में इन्ट्रेन्स की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की । मिडिल में तो प्रान्त भर में वे सर्वप्रथम आई । ग्यारहवाँ दर्जा पास करते - करते तो कवि सम्मेलनों, वाद-विवादों, प्रतियोगिताओं में प्राप्त तमगों और पुरस्कारों से छात्रावास भर गया । सन् 1929 में इन्होंने बी.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की । अपने मिलनसार तथा निखालस स्वभाव के कारण आप सभी के आकर्षण का केन्द्र रही । अन्य छात्रों की अपेक्षा सभी शिक्षक इन्हें विशेष प्रेम करते थे । इनकी तरफ का एक अन्य आकर्षण यह भी था कि इन्होंने अपनी लेखन

कला द्वारा सभी को मोहित कर लिया था । अंग्रेजी उच्चारण में ये गलती अवश्य करती थीं परन्तु लिखाई में कभी मात नही खाती थीं । इनके निबन्ध आदर्श नमूने के रूप में अन्य छात्रों को दिखाएँ जाते थे । गद्य ही नहीं पद्य भी उतनी ही श्रेष्ठ था तभी तो सन् 1922 से इनके काव्य 'महिला' मासिक पत्रिका में छपने लगे । इनका कमरा चर्चा–विचारणा के लिए हमेशा छात्राओं से भरा रहता था ।

सन् 1925 में बी.ए. का प्रथम महिला ग्रुप महादेवी जी से आरम्भ हुआ । उस समय उप–कुलपति गंगानाथ झा थे । उन्होंने स्पष्ट कहा कि– ''It is impossible for men and women to study together under any circumstasnces.'' क्रास्थवेट कॉलेज में एक अलग विभाग बनाने की विचारणा की गई परन्तु महिला प्राध्यापक न मिलने के कारण अंत में महादेवी जी को 'अंग्रेजी' प्रोफेसर दून ने पढ़ायी, जो इलाहाबाद में प्रसिद्ध प्रतिष्ठित व्यक्तित्व्यों में गिने जाते थे । अंग्रेजी के विद्वान् होने के नाते इन्हें काफी ख्याति प्राप्त थी । 'फिलासोफी' बंगाली विद्वान्, पी. के. आचार्य ने पढ़ाई तथा 'संस्कृत' की शिक्षा स्वयं गंगानाथ झा ने दी, जो संस्कृत के प्रकांड पंडित थे । [50] महादेवी जी एम.ए. में वेद पढ़ना चाहती थीं, इसी कारण वे मदन मोहन मालवीया जी के पास गई इन्होंने 'हिन्दू विश्व विद्यालय' की स्थापना की है । सोचा था, पंडित जी अच्छा पढ़ायेंगे पर वे मूर्छित होने लगे और कहने लगे – 'आप वेद नहीं पढ़ सकती ।'' महादेवी जी ने कहा 'वेदकाल में' इतनी ब्रह्म वादिनियाँ हुई, वे कैसे हुई पर उनकी एक न चली, उन्होंने पंडितजी के

सामने विद्रोह किया परन्तु वे वेद की शिक्षा हाँसिल न कर सकीं । पंडितजी ने उन्हें अपनी शिष्या के रूप में स्वीकार नहीं किया ।

इसी अवसर पर गाँधी बापू ने कहा 'तू कॉलेज नहीं छोड़ेगी ?' महादेवी जी ने उत्तर दिया – 'बापू हमें पहले अधिकार तो मिले, जो हमारे पास है ही नहीं, उसे कैसे छोड़े ।' बापू शिक्षित अशिक्षित में भेद नहीं मानते थे, उन्होंने कवयित्री सरोजिनी नायडू तथा अनपढ़ कस्तूबा के उदाहरण दिए और कहा ये व्यक्ति किसी शिक्षित से कम नहीं है । सन् 1932 में महादेवी ने प्रयाग महिला विद्यापीठ में संस्कृत विषय लेकर एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की । इसी बीच कुछ समय तक अस्वस्थ रहने के कारण इनका अध्ययन – कार्य स्थगित रहा । यह समय इन्होंने रामगढ़, तालुका और नैनीताल के भ्रमण में व्यतीत किया । पिता के प्रबुद्ध निरीक्षण – परीक्षण और उत्साह वर्धन के कारण पढ़ाई–लिखाई में तथा माताजी की शिक्षा–दीक्षा से गृहकार्य में वे दक्ष सिद्ध हुई दोनों ही क्षेत्रों में उन्हें पूर्ण रूपेण सफलता प्राप्त हुई । इससे प्रभावित हो स्वयं महादेवी जी कहती हैं – ''एक ओर साधनापूत आस्तिक और भावुक माता तथा दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ और दार्शनिक पिताने अपने–अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया, उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय किन्तु किसी वर्ग या सम्प्रदाय में न बँधनेवाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी ।''[51] महादेवी जी ने जीवन–उपयोगी सभी प्रकार की शिक्षा ग्रहण

की तथा विविध भाषाओं का, कलाओं का अध्ययन कर जीवन के आदर्श को चरितार्थ किया है ।

1.11 पारिवारिक-परिचय :

प्रत्येक शिशु के जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों में वंशजों का प्रभाव प्राप्त होता है । इसी कथन की सत्यता को स्वीकारते हुए प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वुडवर्थ का कथन है कि - "Behaviour at any moment depends on the individual's structure, condition and activity inprogress, and also upon the stimuli received from the environment. Moreover structure, condition and activity in progress are dependent in part upon past activity and so on past environment."[52] यहाँ पर हम देखते हैं कि महादेवी वर्मा के व्यक्तित्व निर्माण में भी उनके वंशजों तथा परिवारजनों और परिवार से सम्बन्ध रखने वालों का विशेष योगदान रहा है । उनके जीवन में परिवार के संस्कार इस रूप में सम्मिलित हो गए हैं, जैसे भीगे वस्त्र में जल की स्थिति होती है । वस्त्र के शीतल स्पर्श से ही उसकी उपस्थिति का ज्ञान होता है । श्री गोविन्दप्रसादजी की चार संतानें थीं । महादेवी, श्यामादेवी, जगमोहन तथा मनमोहन । श्यामादेवी महादेवी जी के साथ ही क्रास्थवेट कॉलेज में पढ़ती थीं, उन्होंने इण्टर तक की शिक्षा प्राप्त की । इसके बाद उनका विवाह श्री बाबूराम सक्सेनाजी के साथ सम्पन्न हुआ । ये प्रयाग विश्वविद्यालय में प्राध्यापक थे । जब महादेवीजी एम.ए. की छात्रा थी तब बाबूराम जी उनके गुरूजी थे । उन्होंने महादेवी को संस्कृत की शिक्षा प्रदान की थी । बाद इलाहाबाद में रहकर निवृत्त जीवन बिताया । इनकी संतानों में सात पुत्रियाँ और एक पुत्र हैं । श्यामाजी का देहान्त इलाहाबाद में 26

दिसम्बर सन् 1976 को हुआ, महादेवी जी के भाई जगमोहन की भी मृत्यु हो गई, जिनका परिवार आजभी भोपाल में स्थित हैं । इनके सबसे छोटे भाई मनमोहन अपने परिवार के साथ कलकत्ते में रहते थे । इन चारों संतानों में महादेवी जी ही सभी क्षेत्रों में अग्रिम रही हैं । वे पूरे परिवार की केन्द्र बनी हुई थी । उनके व्यक्तितत्व में सभी पूर्वजों के कुछ न कुछ अंश अवश्य पाए जाते हैं । उनमें भारतीय संस्कृति के सर्व लक्षण विद्यमान हैं तथा उनके पास ज्ञान का अक्षय भंडार है । पूर्वजों के विभिन्न प्रभावों ने ही उन्हें हिन्दी की विदुषी लेखिका बना दिया है । महादेवी जी के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले कुछ व्यक्तियों का परिचय संक्षेप में इस प्रकार देखा जा सकता है ।

1.12 पितामह का प्रभाव :

पितामह बाबू बाँकेबिहारी जी बहादुर तथा उत्साही पिता की इकलौती संतान थे । एक बार उनके पिता सिताबराय अंग्रेजों की लड़ाई में घायल हो गए, बचने की कोई उम्मीद न रही, तब इनकी माता उन्हें लेकर अपने मायके आ गई । अंग्रेजी सरकार बेटे की हत्या न कर दे इसी डर से उन्होंने महताबराय का नामबदलकर बाँकेबिहारी वर्मा रख दिया जो आज तक प्रचलित रहा । बाँकेबिहारी आर्य समाजी थे । उनका व्यक्तितत्व जमींदारी ठाठ से भरा हुआ था । यह परिवार परम्परा की प्रणालिकाओं से मुक्त नहीं था । कन्या वध जैसे रिवाजों को इस परिवार ने स्वीकार नहीं किया क्योंकि पीढ़ियों से इनके यहाँ लक्ष्मी का जन्म हुआ ही नहीं था । यही कारण था कि महादेवी जी को माँ देवी दुर्गा के तप का फल माना गया । बाल-विवाह, स्त्री शिक्षा का विरोध,

ऊँच-नीच के भेद-भाव इनके व्यक्तितत्वमें पाए जाते हैं । इन परम्पराओं का इन्होंने समर्थन किया है ।

बाँकेबिहारीजी उर्दू, फारसी जानते थे तथा फारसी, हाफिज, रूमी आदि सूफी कवियों को पढ़ाया करते थे ।[53] इनकी विद्वता के कारण जमींदारी वर्ग में इनका विशिष्ट स्थान था । फरूँखाबाद के प्रसिद्ध व्यक्तियों में उनकी गणना होती थी । साहित्यकार तथा संत-महात्मा और विदेशी विद्वान् अक्सर इनके यहाँ चर्चा-विचारणा के लिए एकत्रित होते थे । यही कारण है कि महादेवी जी के व्यक्तितत्व पर इनकी विद्वता का प्रभाव योग्य मात्रा में पड़ा है । दूसरी तरफ दादाजी के समान ही वे न तो सम्पूर्ण रूढ़िचुस्त परम्परा को मानती हैं, न ही रूढ़ि मुक्त विचारों को स्पष्ट स्वीकार करती हैं, वे जहाँ जैसा अवसर पाती हैं, वहाँ उसी के अनुरूप योग्य मार्ग को अपनाती है । यह इनकी व्यक्तिगत विशिष्टता है, जिसका विकास पितामह के संस्कारों के कारण विकसित हुआ है ।

1.13 नाना-नानी का प्रभाव :

नाना सुन्दरलाल जबलपुर में तहसीलदार थे । आजभी वहाँ पर उनका बाड़ा मौजूद है । नाना हिन्दी संस्कृत के विद्वान थे और साथ ही पद्य रचना भी करते थे । जबलपुर के सम्पन्न और प्रतिष्ठित व्यक्तियों में इनकी गणना हुआ करती थी । वे अपने निखालस, मितभाषी, मिलनसार स्वभाव के कारण आबाल-वृद्धों सभी के प्रिय थे । महादेवी जी ने अपने नानीजी को नहीं देखा, उन्हें नानीजी की याद है । नानीजी

के मुख से महादेवी जी राजा–रानी, राजकुमारी तथा परियों की कहानी सुनते – सुनते कल्पना लोक की उड़ान भरने लगती थीं । बताया जाता है कि हेमरानी जी को पिता के सभी संस्कार प्राप्त थे, तो यह स्वाभाविक था कि वे अपने साथ हिन्दी, संस्कृत के संस्कार लेकर आई हो ! यही संस्कार प्रक्रिया महादेवी जी पर स्पष्ट रूपसे लक्षित होती है । दूसरे शब्दों में कहा जाए तो महादेवी जी पर उनके नाना–नानी के संस्कारों का प्रभाव उनके व्यक्तितत्व पर विशेष मात्रामें दृष्टिगोचर होता है ।

1.14 पिता का प्रभाव :

पिताश्री गोविन्दप्रसाद बड़े सौम्य और हँस–मुख स्वभाव के व्यक्ति थे । इनका जीवन अंग्रेजों के सान्निध्य में इन्दौर तथा नरसिंहगढ़ की रियासतों में बीता था । आरम्भ में वे इन्दौर के डेली कॉलेज में अध्यापन कार्य करते थे । उस समय नरसिंहगढ़ के राजकुमार इनके शिष्य थे । कुछ समय के बाद इन्होंने नौकरी छोड़ दी और स्वतंत्र रूप से महाराज की सेवामें रहने लगे । उनके पौत्र–पौत्रियाँ उन्हें 'उज्जड़ अंग्रेज' तथा 'Great English man' के रूप में जानते हैं । सुबह उठकर चाय पीना, दौड़ना, कुत्ते पालना, शिकार करने जाना तथा पोलों जैसे खेल खेलना इत्यादि शौक थे ।[54] इनके व्यक्तितत्त्व के परिचय से यह स्पष्ट होता है कि इन्होंने अपनी जिंदगी बादशाही ठाट से गुजारी तथा परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के परिचय को स्वतंत्र सत्ता भी दी । इन्होंने अंग्रेजों के साथ रह कर मास–मछली जैसे खाद्य व्यंजनों को स्वयं भी खाया और पुत्रों को खाने की इजाजत भी दे रखी थी, परन्तु अपनी पुत्री महादेवी तथा श्यामा को माँसाहार व्यंजनों से दूर रखा ।

वे भाषण करने की कला में निपुण थे । नरसिंहगढ़ के सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक आयोजनों में उन्हें भाषण के लिए अवश्य निमंत्रित किया जाता था । गोविन्द प्रसादजी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी लेकर एम.ए. की परीक्षा पास की थी । अध्ययन करते समय वे मुख्य रूप से मिल्टन, चौसर, शेक्सपियर जैसे अंग्रेज विद्वानों की कृतियाँ पसंद करते थे । कभी-कभी कौतुहलवश वे उस समय के तिलस्मी, जासूसी उपन्यास 'चन्द्रकांता संतति' तथा 'भूतनाथ' आदि के कुछ अंश पढ़ लिया करते थे और इन्हें पढ़कर वे कहते थे ''ये तो शेखचिल्लियों की कहानी हैं । इन्हें कोई शेख चिल्ली ही पढ़ सकता है ।''[55] साहित्य प्रेमी पिता का प्रभाव महादेवीजी पर स्पष्ट रूप में लक्षित होता है । उस समय कथा साहित्य के क्षेत्र में महादेवी की जानकारी पंचतंत्र तक ही सीमित थी । यहाँ यह वही बीज है, जिसने इतने वर्षो में अंकुरित होकर इतनी सघनता पा ली कि उन्हें पशु-पक्षियों की कथा कहने में सुख मिलने लगा । यह स्वीकारा जा सकता है कि 'मेरा परिवार' शायद इसी का परिणाम हो ।

श्री गोविन्द प्रसादजी के व्यक्तितत्व में दया, सहानुभूति, आत्मीयता छलक पड़ती है । राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में उन्होंने बड़ी लगन और मैत्री भावना से कार्य किया । इन्हें अंग्रेजी और उर्दू साहित्य की ओर अग्रसर किया गया । इन्हें संगीत की विशेष रूचि थी, साथ ही गाने की कला में भी काफी निपुण थे, तभी तो पत्नी के साथ बैठकर घंटो भजन गाया करते थे । इनके व्यक्तितत्व को नास्तिक स्वभाव वाला बताया जाता है परन्तु

हकीकत में इस तथ्य को स्वीकारा नहीं जा सकता क्योंकि वे पत्नी के साथ बैठकर घंटों तक पूजा-पाठ करते, मंत्र जाप करते, कथा करते और सुनते तथा पुस्तक और पुस्तिकाओं का संग्रहकर उन पर चर्चा करते, अपने मतों की मुक्त अभिव्यक्ति करते थे । इस विषय में महादेवी जी का स्पष्ट कथन है ।'' पिता नास्तिक तो नहीं पर संदेहवादी थे । उनका कहना था कि ''मैं ईश्वरके अस्तित्व के बारे में कुछ नहीं कह सकता, वह मेरे पुकारने से नहीं आता । मैं उस मनुष्य को जानता हूँ, जो मेरे पुकारने पर मेरी सहाय को दौड़ा आता है । 'महादेवी जी जब उन्हें नहा-धो कर सत्यनारायण की कथा सुनते देखती या धार्मिक अनुष्ठान में बैठ विधिवत पूजा करते देखती तो पूछती - ''कर्म-कांड में विश्वास नहीं तो यह सब क्यों करते हो ।' तब वे उत्तर देते 'मैं भगवान् को नहीं मानता पर तुम्हारी माँ को मानता हूँ, उसे संतोष देने में मुझे सुख मिलता हैं ।''[56] इसे व्यापक धर्म की भावना ही कहा जा सकता है ।

आर्य समाज की प्रचलित परम्पराओं का सामना करते हुए उन्होंने आजीवन शिक्षा संस्थाओं से विशेष सम्बन्ध रखा । उन्होंने स्त्री शिक्षा को उचित माना, यही कारण है कि महादेवी जी उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकीं । बच्चों की असाधारण प्रतिभा और बुद्धि की प्रखरता देखकर प्रोत्साहन देने में उन्होंने कभी चुक नहीं की ।

महादेवी जी के व्यक्तितत्व पर उनके पिता के सभी प्रभाव स्पष्ट रूप से प्राप्त होते हैं । विद्वान् पिता की विदुषी पुत्रीने उनके आदर्शों

और आकांक्षाओं को पूर्ण कर दिखाया है । पिता से प्राप्त संस्कार महादेवी को उच्चता के शिखर पर ले जाते हैं ।

1.15 माता का प्रभाव :

माता हेमरानी देवी आस्थावान, कलाविद नारी थीं । इनका विवाह विरोधी तत्त्वों के बीच सम्पन्न हुआ था । गोविन्द प्रसादजी आर्य समाजी थे और ये वैष्णव समाजी थीं । काफी छोटी उम्र में विकसित परस्पर आत्मिक सुमधुर प्रेम के आगे परिवारवालों को वैवाहिक विरोधी सभी तत्वों का समाधान करना पड़ा । बताया जाता है कि महादेवी के जन्म समय इनकी उम्र सिर्फ 15 वर्ष थी । इन्हें स्कूली शिक्षा अल्प मात्रा में प्राप्त हुई परन्तु व्यावहारिक शिक्षा में ये निपुण थीं । इनका ध्यान हमेशा ईश्वर भक्ति में ही रहा करता । भगवान् श्री कृष्ण इनके उपास्य देव थे । ये भक्ति के भजन और गीत स्वयं बनाती और मधुर राग में गाती थीं । महादेवीजी का कहना है - "हिन्दी माँ के साथ जबलपुर से ही आई । अन्यथा सब फारसी, उर्दू बोलते थे - दुर्गा इनके कुल की देवी थी । माँ के आने के बाद से ही राम-सीता की पूजा शुरू हुई । जब वे पहली बार ससुराल आई, तभी उनके साथ पालकी में छोटे से सिंहासन में राम-सीता की मूर्ति लाई थीं ।[57] इनकी स्मरण शक्ति बहुत अच्छी थी, रामायण, महाभारत, गीता के अनेक अंश इन्हें याद थे । ये सूर और मीरा के हमेशा गाती रहती थीं । 'विनय-पत्रिका' तो इन्हें सम्पूर्ण कंठस्थ थी । तुलसीदास की भक्त होने के कारण राम इनके इष्ट देव थे । चैत्र में राम जन्म के अवसर पर नौ दिन तक रामायण का पाठ

इस भाँति करती कि रामनवमी के दिन पाठ पूर्ण हो जाता । अंत में धूम-धाम से रामायण और रामचन्द्रजी की आरती करती और फिर प्रसाद बाँटती । सवेरे चार बजे उठकर स्नानादि से निवृत होकर वे पूजा गृह में चली जाती थीं ।

भक्ति के साथ हेमरानीजी को संगीत में भी विशेष रूचि थी । श्यामादेवी सक्सेना का कहना हैं कि - "माँ और पिताजी दोनों को ही गाने का बड़ा शौक था ।... माँ परदे के अन्दर से गाना सुनाती एवं सीखतीं । मास्टर साहब के चले जाने के बाद घर के अन्दर ही वे सब स्वर निकालने लगीं, सभी राग-रागिनीयाँ हारमोनियम पर उतारने लगीं । वे ढेरों गाने सीख गई ।"[58] कर्मठ जीवन में विश्वास करने वाली विदुषी ने अपने परिवार की सम्पूर्ण रीति से देखभाल की क्योंकि उनमें भारतीय नारी के सभी आदर्श मौजूद थे । स्वयं शाकाहारी होने के बावजूद भी वे पति को माँसाहारी भोजन परोसती । माताने महादेवी को दुनियादारी के हर क्षेत्र में कौशल्य से जीना सिखाया । महादेवीजी माता के प्रभावों के कारण ही भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति को बड़ी सरलता से पी गई । उन्हें सामाजिक, धार्मिक आदि किसी भी क्षेत्र मे मुसीबतों का सामना नहीं करना पड़ा । तीव्र बुद्धिशाली महादेवी को हेमरानीजी अपने साथ गीत और भजन गवाती थीं । चित्र विस्तार को प्रतिफलित करने वाली संवेदनशीलता के संस्कार महादेवी जी के शैशव में ही प्रत्यक्ष प्रकट हो गए थे, जो साधना पूत आस्तिक माता के प्रभाव से शीध्र ही उद्दीप्त हो उठे । माता की साँवली सूरत, दया, ममता, कोमलता औदार्य और निश्धलता के गुणों से चमकती रहती थी ।

महादेवी स्वयं लिखती हैं कि – ''माँ के कारण हमारा घर खासा 'जू' बना रहता था । बाबूजी जब लौटते तब प्रायः कभी कोई लँगड़ा भिखारी बाहर के दालान में भोजन करता रहता, कभी कोई सूरदास पिछ्वाडे के द्वार पर खंजड़ी बजाकर भजन सुनाता होता, कभी पड़ोस का कोई दरिद्र बालक नया कुरता पहनकर आँगन में चौकड़ी भरता दिखाई देता, कभी कोई वृद्ध ब्राह्मणी भंडार घर की देहली पर सीधा गठियाते मिलती । बचपन से बड़े होने तक माँ न जाने कितनी व्याख्या उपव्याख्याओं के साथ इस व्यवहार सूत्र को समझाती रही है कि हमारी शिष्टता की परीक्षा तब नहीं होती जब कोई बड़ा अतिथि हमें अपनी कृपा का दान देने घर में आता है, वरन् उस समय होती है जब कोई भूला भटका भिखारी द्वार पर खड़ा होकर हमारी दया के कण के लिए हाथ फैला देता है ।[59] विरोधी व्यक्तितत्व के धनी माता–पिता एक ही छत के नीचे सांसारिक सुख और वैभव से जीवन चयन करते थे, उनके बीच कभी भी दरार नहीं पड़ी इसी प्रभाव के परिणाम स्वरूप महादेवी जी को माता से सांसारिक, व्यावहारिक और धार्मिक शिक्षा प्राप्त हुई तथा पिता के निरीक्षण – परीक्षण एवं प्रोत्साहन ने महादेवी को पढ़ाई लिखाई और इतर कार्यों में प्रवीण कर दिया ।

1.16 विद्वानों का सम्पर्क :

महादेवी जी एक ऐसे युग में पलीं, जब चारों ओर विद्वानों की भीड़ लगी हुई दिखाई देती थीं । उनके जीवन में एक नहीं अनेक क्षेत्र के व्यक्ति आये । राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक इत्यादि

सभी क्षेत्रों का उन्होंने काफी निकट से सम्पर्क किया । युग–युगान्तरों की परम्परानुसार ज्ञान तथा अनुभव के आधार पर यह मानना पड़ता है कि हर मनुष्य समूह को मानव कल्याण सम्बन्धी कुछ सर्वमान्य सिद्धान्त अवश्य स्वीकारने पड़ते हैं, जो उनको स्वीकार नहीं करते, वे असामाजिक की संज्ञा पाते हैं, परन्तु प्रत्येक युग, प्रत्येक समाज में कुछ महान् आत्माएँ भी होती हैं, जो अपने सम्पूर्ण जीवन को मानव कल्याण सम्बन्धी सिद्धान्तों की प्रयोगशाला से अधिक महत्त्व नहीं देती । उनके पास केवल, सिद्धान्त, उसमें निहित सत्य साध्य और जीवन साधन मात्र रह जाता है । इसी प्रकार के असाधारण कुशल शिल्पियों का प्रभाव महादेवी जी पर अबोधकाल से अंत तक पड़ता रहा है ।

इन विद्वानों की कतार में गाँधीजी अग्रीम रहे । प्राणों में स्थित हवा की भाँति तथा ह्रदय में स्थित सत्य की भाँति गाँधीजी के आदर्श महादेवी के व्यक्तितत्व में स्थित रहें । नहेरूजी का सम्पर्क महादेवी जी के जीवन में एक भाई तथा मार्गदर्शक के रूप में पाया जाता हैं । दिव्य साधना के वाहक पुरूषोत्तम दास टंडनजी का तीव्र प्रभाव महादेवी जी के व्यक्तितत्व पर प्राप्त होता है । इसी प्रभाव के कारण महादेवीजी अपना लक्ष्य, अपनी साधना को एक आस्था के रूपमें स्वीकार करती हैं । राजनीतिक क्षेत्र में भारत के प्रथम राष्ट्रपति के रूपमें आये हुए राजेन्द्र बाबू का प्रभाव महादेवीजी पर स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है । अपनी बालसखी श्रीमती इन्दीरागाँधी के साथ महादेवीजी भी आरम्भ से अंत तक कभी प्रत्यक्ष कभी परोक्ष रूप में उनके साथ कदम मिलाकर चलती रहीं ।

महादेवी जी ने राजनीतिके अनेक व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित किया पर वे उनके छल-कपट से कभी प्रभावित न हुईं । उन्होंने जन-सेवा, समाज-सेवा को ही आकर्षण का केन्द्र बनाया । इसी से सम्बन्धित विचारों तथा आदर्शों को उन्होंने सहज रूप में ग्रहण किया है ।

खड़ीबोली में पहली बार 'चाँद' पत्रिका में महादेवीजी की 'दीपक' शीर्षक से रचना छपने पर प्रेमचंदजी का प्रशंसा पत्र मिला । प्रेमचंदजी के साहित्य एवं व्यक्तितत्व से परिचित महादेवी को साक्षात्कार का मौका मिला । साथ ही धीरे-धीरे साहित्य प्रेम एवं प्रेरणा बढ़ती गयी । महादेवी कालजयी प्रेमचंद को अंत समय तक भूला नहीं पायी । साहित्य तथा व्यवहार आदि क्षेत्रों में महादेवी जी दद्दा (मैथिलीशरण गुप्त) के साथ काफी निकटस्थ सम्बन्ध रहा । वे हमेशा उनके अभिभावक रूप में सामने आते रहे । महादेवीजी की हर मुश्किल को हल हरने का अधिकार उन्हें प्राप्त था । युग के महान् संदेशवाहक कवीन्द्र रवीन्द्र को महादेवी जी ने तीन प्रकार के परिवेशों में देखा जिससे उत्पन्न अनुभुतियाँ कोमल प्रभात, प्रखर दोपहरी और कोलाहल में विश्राम का संकेत देती हुई संध्या के समान हैं । महादेवी जी को रवीन्द्रजी का प्रत्यक्षीकरण अल्प समय का रहा । वे उनके अत्यंत निकट न जा सकी फिर भी उनके आदर्शों का प्रभाव महादेवी जी पर अमिट रूप में प्राप्त होता है ।

अपने जीवन में तो महादेवी जी ने इन महात्माओं के आदर्शो को हवापानी की तरह कैद कर लिया पर हमेशा अन्य भारतीय भी इनका अनुकरण करें, यही अपेक्षा वे रखती है ।

1.17 मित्र-मंडल :

महादेवी जी बचपन से ही एकाकी जीवन जीती आई है । किसी व्यक्ति विशेष से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं रहा । विद्यार्थी जीवन में उनके कुछ मित्र पाये जाते हैं, जिनके प्रति उनके मन में मैत्री भावना रही ।

सुभद्रा कुमारी चौहान को हम उनकी सबसे निकटस्थ सहेली कह सकते हैं । महादेवी जी जब अपनी बहन के साथ क्रास्थवेट कॉलेज में भर्ती हुई तब उनकी प्रथम सहेली सुभद्राजी थीं जिन्होंने एक वर्ष पश्चात् ही वैवाहिक जीवन स्वीकार कर लिया था । इस छोटे से समय में उनकी आत्मीयता काफी दृढ़ हो गयी थी । विवाह के पश्चात् सुभद्रा कुमारी ने राजनीति क्षेत्र में प्रवेश कर अपने तन-मन और धन को राष्ट्र के लिए न्यौछावर कर दिया । दूसरी तरफ महादेवजी साहित्य रचना और अध्यापन कार्य में निमग्न रही । दोनों परस्पर एक दूसरे की अंतरंग मित्र अंत समय तक बनी रहीं । सन् 1948 में एक मोटर दुर्धटना में सुभद्राकुमारी का देहान्त हो गया । कभी-कभी जब उन्हें बचपन की याद आती तो वे सुभद्रा को नहीं भूल पातीं थीं । उनके अस्थि विसर्जन के समय वे अस्वस्थ स्वास्थ्य होने के बावजूद भी अन्य व्यक्तियों के साथ संगम पर गईं । वहाँ पर तपते सूरज और अपने स्वस्थ्य को कोसने लगीं । गहन वेदना ने न जाने कितने विचारों को जन्म दिया था, परन्तु अंत में यही कहती रहीं - ''सुभद्रा ही मेरी अंतरंग मित्र थी ।''[60]

क्रास्थवेट कॉलेज में अन्य मित्रों से भी सम्पर्क हुआ, जिनमें दो क्रिश्चिन लड़कियाँ भी थीं - एलीन शो और एरीन बोनोफेकस ।''[61]

एलीन गरीब परिवार से आई थी । महादेवीने उसे अपनी रूम मेट के रूप में पाया और धीरे-धीरे मित्रता आत्मीयता में परिवर्तित होती गई । वे उसे हर प्रकार की सहायता करती थीं । उसने एक हिन्दू ब्राह्मण से शादी की, जिसमें सभी हिन्दू मित्रों ने उसे सलाह दी थी और यथा योग्य मदद की थी ।

एरीन बी.ए. से लेकर एम.ए. तक साथ पढ़ी । उसे गवर्मेन्ट स्कोलरशिप प्राप्त हुई और वह अध्यापक के प्रशिक्षण के लिए इंग्लैंड चली गई । स्कूल इंस्पेक्टर का व्यवसाय चुन कर वह आजीवन अविवाहित रही । यह भी महादेवी जी की मुख्य सहेलियों में समाविष्ट होती है ।

सावित्री मुखर्जी, जो शहर के नामी अखबार तंत्री एन. के. मुखर्जी की सुपुत्री थी, वह महादेवीजी के समान ही होशियार, चंचल और काफी तेजस्विनी थी तथा उसे कला का भी शौक था । इन दोनों में भी काफी दोस्ती थी । महादेवी नई - नई रचनाएँ लिखकर उसे सुनाती थी तो वह नये-नये गीत गा-गा कर महादेवी को आनंदित करती थी । एक अच्छी रनाओं की रचयिता भी, दूसरी सुमधुर गीतों की गायिका । मुखर्जी परिवार से महादेवी का सम्बन्ध दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा, वे उनके घर जाकर रहती, खातीं इतना ही नहीं, उन्होंने बंगाली भाषा भी सीख ली थी तथा सावित्री ने भी हिन्दी का विशेष अध्ययन किया था । इतनी मित्रता होने के बाद भी न जाने क्यों इनमें आपस में मनमुटाव होने लगा और वे कब अलग हुई इसका कोई प्रमाण नहीं

दिया जा सकता । उनके सम्बन्ध कैसे खत्म हुए यह दो मित्रों के सिवाय कोई नहीं जान पाया ।

महादेवी वर्मा को सुभद्राजी जैसी मित्र की आवश्यकता थी, जिसकी पूर्ति एम.ए. मे हुई । एक नवयुवती रामेश्वरी घोष जो हिन्दी की कवयित्री थी, उनका परिचय एक रूम मेट के रूप में हुआ । वह मित्रता कॉलेज, शहर तथा अन्य क्षेत्रों में भी प्रचलित हो गई । सामाजिक और साहित्यिक प्रत्येक क्षेत्र में दोनों अकेली आत्मबल पर निकल पड़तीं थीं, साहित्यिक पुस्तकालयों में घंटों बिता देती थीं । रामेश्वरी अंतरंग मित्रों की कोटि में आती हैं । एम.ए. करने के पश्चात् वे आर्य कन्या पाठशाला की प्रधानाचार्या बनीं । उन्होंने अपने विद्यार्थी जीवन के साथ प्रकाशचन्द्र गुप्त से विवाह किया था, जो युनिवर्सिटी में अंग्रेजी के प्राध्यापक थे, जितनी शीघ्रता से आत्मीयता स्थापित हुई थी, उसी रफतार से यह सम्बन्ध खत्म भी हो गया और महादेवी अकेली रह गयीं । रामेश्वरी प्रसूति के दरम्यान कठोर मृत्यु की शिकार हो गई । इस दु:खद घटना ने उन्हें हिला दिया । उन्होंने उज्जवल भविष्य की जो कल्पनाएँ की थी वे अधूरी रह गई । यहाँ पर महादेवी ने एक अच्छे मित्र को खो दिया था, अब तक भी वे उनके परिवार को भूला नहीं पाई थी ।

सुधाक्षी वर्मा कायस्थ परिवार की लड़की थी । वह हिन्दी में लधु कहानी की रचना करती थी। महादेवी और सुधाक्षी की मित्रता एम.ए. के विद्याध्यायनकाल में हुई थी । यह मित्रता काफी घनिष्ठ न होकर सामान्य सतह पर ही सीमित रही ।

महादेवी ने अपने अंतरंग और मुख्य मित्रों में सुभद्रा कुमारी चौहान, एरीन, बोनी फेकस, श्यामा नेहरू तथा चन्द्रावली लखनपाल को स्वीकारा है ।[62] उनकी मित्रता सीमित दायरे में बँधी हुई है, उनके मित्रों का विशाल मंडल नहीं है । उनके सभी मित्र विशेषकर साहित्यक्षेत्र से ही सम्बन्ध रखतें हैं, राजनीतिक नेता या राष्ट्रीय जागरण के अग्रज नहीं है । उनके मित्र मंडल में उच्चता निम्नता का भेदभाव नहीं है, क्योंकि सभी मध्यम वर्ग की स्त्रियाँ हैं । शांत स्वभावशीला, उदात्त विचारों वाली महादेवी हमेशा अपने मित्रों के प्रति अपनेपन की भावना रखती है ।

1.18 विवाह :

महादेवी जी की सम्पूर्ण जीवन यात्रा का रहस्य सभर स्वाध्याय वैवाहिक जीवन है । पितामह ने सन् 1916 में[63] महामहिम महादेवी का विवाह करने का निश्चय कर लिया था । पिता इस सम्बन्ध में न तो विरोध कर सके, न ही विवाह का समर्थन कर सहर्ष स्वीकार सके । परिणाम स्वरूप 9 वर्षीया महादेवी का विवाह बरेली के निकट आये नवाबगंज कस्बे में स्वरूपनारायणजी से कर दिया गया । अबोध बालपन में हुए विवाह की अभिव्यक्ति महादेवी ने इस प्रकार की है । "I have no memory of the wedding having taken place. I can only remember hearing the sound of a band playing and seeing a procession with elephant and horses came upto our hous. I thought it was an entertainment and ran out to see it with all other children. Then somebody grabbed me and took me away (to put some nice clothes on me)..

I started getting sleepy, and then must haven fullen asleep some where. I have no idea when the ceremony took place... I had no real idea of that a wedding was because there had never been one in our home before, somebody must have picked me up and held me in their lap while the ceremony was preformed. When I wake-up the next day. I saw that a knot had been tied in my suri. I didn't like this at all. Some Puja (worship) was going on. So I quickly united the knot and ran away.''[64]

ससुराल में पहुँचक महादेवी ने एक नया उत्पात मचाया रो-रो कर आँखें सुजा ली, उल्टियों का ताँता लग गया, ज्वर आने लगा, खाने-पीने को तिलांजलि दे दी । बालिका वधू का स्वागत समारोह आतंक में परिवर्तित होने लगा । परिस्थिति का अनुमान कर श्वसुर ने उन्हें विदा कर दिया ।

गोविन्द प्रसादजी महादेवी का नफासत पसंद, नाजुक मिजाज की लड़की मानते थे । अल्प-आयु में शादी करके उन्होंने बड़ी भूल की है, ऐसा महसूस करके सोचते रहते कि वह इस जीवन की सुख पूर्वक नहीं अपना पायेगी, लड़कियों की पढ़ाई को उचित न मानने वाले श्वसुर का देहान्त विवाह के एक वर्ष पश्चात् हुआ । यह एक संयोग ही माना जा सकता है । इस समय गोविन्द प्रसाद जी को पश्चाताप करने का योग्य अवसर मिला । उन्होंने महादेवी को क्रास्थवेट कॉलेज में भर्ती करा दिया तथा स्वरूपनारायण वर्मा-दामाद को अपने पास बुला शिक्षा दिलाने लगे । विवाह के समय वे 10वीं कक्षा के विद्यार्थी थे । पिता की मृत्यु के बाद उन्हें क्रास्थवेट कॉलेज से गोविन्दप्रसाद जी ने इण्टरमीडिएट कराया तथा लखनऊ के मेडिकल के बोर्डिंग में रख दिया, जहाँ पर

उन्होंने डाक्टरी की योग्यता प्राप्त की । गोविन्दप्रसादजी ने समजदारी और तर्क से जो निर्णय लिया, वह उनकी विराट विद्वता का प्रमाण है, जिसके कारण महादेवी सुखी जीवन जी सकीं । उनका निश्चय था –" वे अपने दामाद और बेटी को अलग–अलग रखेंगे ताकि वह पृथकता की खाई एक दूसरे को भविष्य में मनोनुकूल जीवन जीने दें ।[65]

बी.ए. पास होते ही जब गौने का प्रश्न उपस्थित हुआ, तब महादेवीजी ने साफ शब्दों में दृढता पूर्वक किन्तु सहज भाव से जिज्जी को बता दिया कि वे किसी भी स्थिति में, अपरिपक्व अवस्था में हुए विवाह को नहीं स्वीकारेंगी ।[66] इसीलिए गौने की चर्चा करना व्यर्थ हैं । माता ने उन्हें काफी समझाया, इस विवाह अस्वीकार के प्रसंग से उन्हें अत्यंत पीड़ा हुई, पर महादेवी टस से मस न हुई । उनका निश्चय अटल बना रहा । पिता ने भी इस परिस्थिति में दु:ख का अनुभव किया । उन्होंने सहानुभूति व्यक्त करते हुए कहा – महादेवी इच्छानुसार विवाह करना चाहती हो तो वे धर्म–परिवर्तन करने को भी तैयार हैं । महादेवी जी ने स्पष्ट उत्तर दिया – दूसरे विवाद की बात ही नहीं, वे विवाह करना ही नहीं चाहतीं । यदि पिछले कृत्य की ग्लानि छोड़कर उनके वर्तमान निश्चय को स्वीकार कर लिया जाय तो दोनों ही पक्ष पाप मुक्त हो जायेंगे । पिता ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया और यहीं पर इस प्रसंग का अंत हो गया ।

वैवाहिक जीवन अस्वीकार करने के मूल में अनेक अनुमान लगाये गये युगों से चली आई दयनीय दशा, सहज वैराग्य भावना, बौद्ध भिक्षणी बनने की इच्छा, पुरूष निरपेक्ष नारी व्यक्तित्व की स्थापना का जीवन

व्यापी उदेश्य इत्यादि । इन सबसे चक्कर में न पड़ हमें उनके स्पष्ट कथन को ही स्वीकारना उचित प्रतीत होता हैं – ''मेरे जीवन ने वही ग्रहण किया जो उसके अनुकूल था । कविता सबसे बड़ा परिग्रह है, क्योंकि वह विश्व मात्र के प्रति स्नेह की स्वीकृति है ।''[67] स्वाधिन विकास की संवर्धना के लिए उन्होंने जीवन साहित्य में जो भगीरथ अनुष्ठान किया है, वह भारतीय इतिहास का स्वर्णिम पृष्ठ है ।

महादेवी स्वयं कहती हैं – ''मेरे पति डाक्टरी पढ़ते थे, उन्होंने कई बार चाहा, हम साथ रहें । लेकिन यह बात मेरे मन में थी ही नहीं । मैंने उनसे कहा गृहस्थ जीवन की ओर मेरी थोड़ी सी भी प्रवृत्ति नहीं है, अतएव मैं आपके साथ कभी भी नहीं रह सकूँगी । मैंने कई बार उन्हें यह भी समझाया कि वे अपना दूसरा विवाह कर लें, लेकिन दूसरा विवाह उन्होंने नहीं किया ।''[68] पति के साथ उनका मित्रवत् सम्बन्ध रहा । जब वे इलाहाबाद आते तो महादेवी जी से अवश्य मिलकर जाते । उनका आपस में पत्र–व्यवहार भी होता । एकबार सावित्री जी ने श्री दिनकर जी को बताया कि जब कभी डॉ. साहब छात्रावास में आते तो वे अपनी सहपाठिनों से यह भी कह देती थी, इनसे मुझे मुक्ति दिलवाओ । शादी क्यों नहीं निभी है, इस प्रश्न पर वे बताती है । ''हम जैसे बौडम आदमी से शादी का क्या निभती, जिसने कभी कोई बन्धन माना ही नहीं । ससुराल वाले सोचते थक जायेगी, परेशान होगी तो अपने–आप आ जायेगी, सो भला हमसे क्यों होता, पति के साथ हमारा कोई कटु सम्बन्ध नहीं रहा ।''[69] इस रोचक प्रसंग की कथा निराली ही है ।

विवाह का अस्वीकार करने के बाद भी उनका परिवार सीमित नहीं । उनका क्षेत्र विशाल है, जिसका संचालन सबके बस की बात नहीं । गाय, हरिण, कुत्ते गिलहरी, खरगोश, मोर, कबूतर उनके परिवार के सदस्य हैं, लता, फूल पेड़-पौधे आदि उनकी जीवन ममता के समानाधिकारी हैं । वे आगन्तुक अतिथि का स्वागत तन्मयता से करती हैं । उनका निवास स्थान शंकर की बरात का जनवासा-सा बना रहता है । साहित्यिक असाहित्यिकों की व्यवस्था देखने लायक ढंग से करती हैं । परिचित अपरिचित सभी के लिए, उनके द्वार मुक्त हैं, गुप्तजी कहते हैं - "मेरी प्रयाग यात्रा केवल संगम स्नान से पूरी नहीं होती, उसको सर्वथा सार्थक बनाने के लिए मुझे सरस्वती महादेवी के दर्शन के लिए प्रयाग महिला विद्यापीठ जाना पड़ता है । संगम में कुछ फूल अक्षत भी चढ़ाना पड़ता हैं, पर सरस्वती के मंदिर में कुछ प्रसाद मिलता है ।"[70] मलय की मधुर हवा की भाँति वे आजीवन मुक्त रूप से चलती रहीं । हर पलक, हर साँस में उन्होंने अपने सामने एक नये जीवन के दर्शन किये हैं ।

1.19 साहित्य-रचना की प्रेरणा :

साहित्य में मनुष्य की बुद्धि और भावना इस प्रकार मिल जाती है जैसे धूप छाँही वस्त्र के दो रंगों के तार, जो अपनी अपनी भिन्नता के कारण ही अपने रंगों से भिन्न एक तीसरे रंग की सृष्टि करते हैं । हमारी मानसिक वृत्तियों की ऐसी - सामंजस्यपूर्ण एकता साहित्य के अतिरिक्त और कहीं सम्भव नहीं । उसके लिए न हमारा अंतर्जगत

त्याज्य है और न बाह्य, क्योंकि उसका विषय सम्पूर्ण जीवन है, आंशिक नहीं । महादेवी जी का कहना है – ''मेरी साहित्य यात्रा की कथा मेरी जीवन कथा से भिन्न नहीं है । जब छः वर्ष की अवस्था में मैंने तुकबंदी आरम्भ की तब मैं न तुकबंदी के सम्बन्ध में जानती थी और न कविता के । पर माँ से सुने मीरा या सूर के पद मेरे चारों ओर ध्वनित प्रतिध्वनित होते रहते थे । सम्भवतः उन्हीं स्वर लहरियों ने मेरे कानों को एक ऐसी लय से भर दिया था, जिसका प्रभाव अब तक मेरी कविता को छंदायित करता रहा है । मेरी बचपन की तुतली तुकबंदी को सुनकर माँ ने पंडितजी की व्यवस्था करा दी, जो मुझे ब्रजभाषा तथा पिंगल, अलंकार आदि की शिक्षा देने लगे । उन दिनों काव्य की भाषा ब्रज भाषा थी और कविता सीखने की कला मानी जाती थी, क्योंकि सीखे बिना मात्रिक, वर्ण वृत आदि का ज्ञान कठिन था ।''[71] साहित्य रचना की प्रेरणा में उनकी माता मुख्य स्थान पर आती हैं । जन्म से ही वे उन्हें स्वयं रचित भाव भरी गीतांजलियाँ, जन्म, विवाह आदि शुभ-अवसरों पर गाये जाने वाली गीत कथाएँ, परिचारकों के ॠतु पर्व आदि से संबंध रखने वाले लोकगीत, कलाविदों का ध्वनि-संगीत, प्राचीन ज्ञान और सौन्दर्य द्दष्टाओं के वेद-छन्द, माधुर्य-भरे संस्कृत और प्राकृत पद सुनाती समझती रहती थीं ।

जन्मजात संस्कार तथा अंतःकरण की प्रेरणा से ही महादेवीजी शैशवकाल की 6 वर्ष जैसी अल्पायु में सुन्दर काव्य पंक्तियाँ लिख सकती थीं –

''ठंडे पानी में नहलातीं,
ठंडा चन्दन इन्हें लगातीं,
इनका भोग हमें दे जातीं,
फिर भी कभी नहीं बोले हैं ।
माँ के ठाकुरजी भोले हैं ।''[72]

इसके साथ ब्रजभाषा की रचना भी देख सकते है –

''आवन के दिन नायक को, अरूनाई भरी नभ की गलियान में,
सीरी सुमंद बतास बही, मुस्कान नई बगरी कलियान में:
संख धुनी बिरूदाबलियाँ अब गुंजित है खग औ अलियान में,
वारन के हित कंज–कली मुकुताहल जोरि रही अँखियान में ।''[73]

गोविन्द प्रसादजी साहित्य प्रेमी व्यक्ति थे । उनके यहाँ 'सरस्वती' पत्रिका आती थी, उसमें लिखी गई मैथिलीशरण गुप्त की तुकबंदियों ने उन्हें आकर्षित किया तभी से वे खड़ीबोली व्यवहार की भाषा में अहो, कहो के तुक लगाकर समस्या पूर्ति करने लगीं । 'मेघ बिना जल वृष्टि भइ है' समस्या की पूर्ति उन्होंने इस प्रकार की है –

''हाथी न अपनी सूँड में
यदि नीर भर लाता अहो,
तो किस तरह बादल बिना
वर्षा यहाँ होती कहो ?''[74]

महादेवी जी की खड़ीबोली में प्रथम पूर्ण रचना 'दीया' थी, जो ग्यारह वर्षकी आयु में लिखी गई थीं ।

''धूलि के जिन लघु कणों में है न आभा प्राण,
तू हमारी ही तरह उनसे हुआ वपुमान ।
आग कर देती जिसे पल में जलाकर क्षार,
है बनी उस तूल से वर्ती नई सुकुमार ।
तेल में भी है न आभा का कहीं आभास,
मिल गये सब तब दिया तू ने असीम प्रकाश ।
धूलि से निर्मित हुआ है, यह शरीर ललाम,
और जीवन-वर्ति भी प्रभु से मिली अभि राम ।
प्रेम का ही तेल भर जो हम बने निःशोक,
तो नया फैले जगत के तिमिर में आलोक ।''[75]

महादेवी जी ने इस तथ्य को स्वीकारा है कि ''प्रेरणा स्त्रोत बाहर से नहीं मिलते वे अपने ही अंतःकरण में बनते हैं । यदि बाहर से मिलते तो सभी कवि बन जाते ।''[76]

महादेवी ने जिस युग में लिखना आरम्भ किया उस समय काव्य की मुख्य भाषा ब्रज थी । इन्होंने भी इसी भाषा को स्वीकार किया । सन् 1917 में क्रास्थवेट कॉलेज में पढ़ने आने पर वे श्रीधर पाठक तथा सुभद्रा कुमारीजी के सान्निध्य में खड़ीबोली में लिखने लगी । छायावाद नामकरण तो बहुत बाद में व्यंग्य रूप में आया, इसके पहले लिखने का प्रश्न ही नहीं उठता । सामान्यतः छ-सात वर्ष की आयु में ही ये

राष्ट्रकवि गुप्तजी से प्रभावित थी । बचपन के संस्कार योग्य अवसर पाकर प्रस्फुटित होने लगे । महादेवीजी ने भी स्पष्ट कहा हैं – ''मेरे गीत अध्यात्म के अमूर्त आकाश के नीचे लोकगीतों की धरती पर पले हैं ।''[77]

1.20 जीविकोपार्जन :

सन् 1932 में वे प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्य नियुक्त हुईं । रात–दिन के परिश्रम ने विद्यापीठ को गाँधीवादी संस्कार भवन बना दिया । एक बार एक केरली सज्जन अपनी पुत्री को विद्यापीठ में भर्ती कराने आये, उन्होंने कहा – ''आपके कोई संतान भी है ।'' उत्तर में महादेवी जी ने कहा – ''हाँ–हाँ मेरे सात–आठ सौ बच्चे हैं । ये सब विद्यार्थी मेरे बच्चे ही तो हैं ।[78] वास्तव में वे ऐसी बड़ी माँ की अधिकारिणी हैं । सन् 1960 से महादेवी जी महिला विद्यापीठ में उप–कुलपति पद पर विराजमान रहीं ।

इस समय के दरम्यान उन्होंने पत्र–पत्रिकाओं का संपादन भी किया । हर क्षेत्रीय कार्य अल्प वेतन तथा निःशुल्क रूप में वे करतीं । सादगी सभर जीवन के पश्चात् बची धन–संपदा वे देश और गरीबों में बाँट देती । अगर हम कहें कि व्यवसाय उन्होंने अपने लिए नही औरों के लिए किये हैं तो इस तथ्य में अतिशयोक्ति जरा भी नहीं है । उन्होंने अपना सर्वस्व लुटा 'महादेवी' नाम की सार्थकता की है ।

1.21 राजनीति एवं सामाजिक – जीवन :

देशव्यापी आन्दोलनों में उन्होंने सक्रिय सहयोग दिया है । सन् 1942 में इलाहाबाद के आस-पास के गाँव जला दिये गये तथा मदद में किसी को वहाँ जाने नहीं दिया जाता था । उस समय महादेवी ने स्त्री-बच्चों को कपड़ा, भोजन तथा दवाइयाँ वगैरह पहुँचायी हैं । जलती दोपहरी में गाँव की गरम-गरम धूल धानी है, घूम-घूमकर सबकी व्यवस्था को संभाले रखा है ।

महादेवी वर्मा में देश-प्रेम की असीम भावना है । सन् 1942 के विप्लव में उन्होंने अडिग धैर्य, अटूट साहस के साथ विद्रोहियों का साथ दिया वे देश-प्रेम विद्रोहियोँ को सहानुभूति व सहयोग भी देती । बापू द्वारा उच्चरित 'एकता', 'राष्ट्रीयता' को उन्होंने अपने लहू के कण-कण में व्याप्त कर लिया ।

जब देश में कोई आन्दोलन छिड़ा – देशवासियों पर कोई आपत्ति आ पड़ी तो उन्होंने केवल सक्रिय सहयोग ही नहीं दिया बल्कि पत्र-पत्रिकाओं में कविता और लेख देकर तथा संपादन कार्य करके अपनी शाब्दिक सहानुभूति भी प्रकट की है । बंगाल के अकाल के समय उनहोंने सन् 1943 में प्रयाग में एक चित्र प्रदर्शनी का आयोजन किया । उस समय उन्हें अन्य व्यक्तियों की तरफ से पर्याप्त मात्रा में चित्र प्राप्ति न हो सके, तो स्वयं उन्होंने थोड़े-बहुत नहीं पूरे 75 चित्र अपने हाथों से बनाकर प्रदर्शन सफल बनाया और अकाल पीड़ितों की आर्थिक सहायता की । इसी अवसर पर महादेवी जी ने 'बंगदर्शन'

पुस्तक भी प्रकाशित की, जिसकी संपूर्ण राशि बंगाल को अर्पित की गई । दूसरी बार चीनी आक्रमण के समय इन्होंने 'हिमालय' नामक काव्य-संग्रह में राष्ट्रीय प्रेमी इतिहास प्रसिद्ध रचनाओं का संकलन किया । इस रचना की संग्रहित राशि भी राष्ट्र वीरों को समर्पित की गई ।

उनके ग्रामीण विपन्न जीवन के साथ निकट का संपर्क 'अतीत के चलचित्र' तथा 'स्मृति की रेखाएँ' में प्राप्त होते हैं ।

सामाजिकता की दृष्टि से सहिष्णु, प्रगतिशील तथा पर्याप्त बहिर्मुख हैं । उनके व्यक्तितत्व का सामाजिक पक्ष उनकी कविता के प्रतीकों के सहारे अंतर्मुख होकर अभिव्यक्त हो उठा है । राष्ट्र और समाज के लिए उन्होंने अपने घर का साज-श्रृंगार भी अवसर आने पर नीलाम कर दिया, सहज रूप से कहती रही इस वस्तु की कोई जरूरत नहीं यह व्यर्थ पड़ी थी । वे सब कुछ सहन कर सकती हैं, परंतु औरों का दु:ख उनसे नहीं देखा जाता । इसीलिए वे सदैव अपने को 'नीर भरी दु:ख की बदली ' कहती हैं ।

संस्थाओं से संबंध :

पराधीनता के समय विविध प्रादेशिक भाषाओं के लेखकों की समस्याएँ एक जैसी थीं । उन सभी का एक मंच पर एकत्रित होना अत्यंत आवश्यक था, इसी भावना से महादेवी जी ने एक मंच, एक शिविर देने और आर्थिक संकटग्रस्त लेखकों को सहयोग देने की दृष्टि से 'साहित्यकार-संसद' का निर्माण सन् 1942 में किया था । इस भावना

की स्थापना गंगा तट पर रसूलाबाद में की गई । इस संस्था को चलाने के लिए मंत्री पद स्वीकार करके 'साहित्यकार' नामक पत्रिका का प्रकाशन भी किया ।

सन् 1951 में भारतीय साहित्यकार सम्मेलन का आयोजन कर सभी भाषाओं के साहित्यकारों को प्रथम बार एक मंच पर एकत्रित करने का श्रेय महीयसी महादेवी को प्राप्त होता है । यह संस्था साहित्यिक – समाज के तीर्थ–स्थान समान है । महाकवि निराला अपनी पत्नी तथा पुत्री के अवसान के बाद इसी संस्था में रहे । उनके विचलित, चिंतित चित को शांति, वात्सल्य सेवा–सुश्रूषा का संपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ । उपेन्द्रनाथ ''अश्क'' अपनी पत्नी के साथ कुछ समय तक इस संस्था के महेमान बने रहे । इस संस्था के मूल में राष्ट्रीय एकीकरण की भावना छिपी हुई पाई जाती हैं ।

साहित्यिक संस्थाओं की स्थापना में महादेवी जी ने अपनी रचनात्मक वृति की गहन कलात्मकता का परिचय दिया है । हिन्दी के पास कोई नाट्य संस्था नहीं थी । महादेवी जी ने सन् 1955 में 'रंगवाणी' नामक नाट्य संस्था की स्थापना की । जिसका उद्धाटन उन्होंने मराठी नाट्यकार मामा वरेरकर के हाथों कराया । 'प्रयाग महिला विद्यापीठ' की स्थापना भले ही अन्य व्यक्तियों द्वारा हुई हो परन्तु उसका संचालन महादेवी जी के हाथों हुआ । व्यवस्थित संचालक के प्रभाव से प्रभावित सदस्य उनके अस्वस्थ स्वास्थ्य को भी मुक्ति नहीं दे रहे थे । यही कारण है कि महादेवी अंत तक इस संस्था से मुक्ति नहीं पा सकी थी । नौजवानों

के समान ही उनके पास कामों का ढ़ेर लगा हुआ रहता था । जिसे संस्था के प्रति प्रेम और कार्य के प्रति मोह कहा जा सकता हैं । इसी संस्था के साथ-साथ 'वनस्थली' का निर्माण भी किया गया था । जो महिला विद्यापीठ की शाखा मानी जाती थी, परंतु आज उसका अस्तित्व स्वतंत्र है । उस संस्था को भी महादेवी द्वारा प्रेरणा प्राप्त हुई । उनके जीवन में हंमेशा साहित्यिक प्रवृत्तियों का स्त्रोत प्रवाहित होता रहा, जिससे सभी प्रेरणा पा प्रेरित होते रहे । हिन्दी साहित्य जगत के लिए महादेवीजी स्वयं एक संस्था बन चुकी हैं ।

1.22 सम्मान एवं पुरस्कार :

महादेवी ने बचपन से ही पुरस्कार प्राप्त करने आरंभ कर दिये थे । प्राथमिक स्कूल में उन्हें सबसे पहले काव्य-पठन स्पर्धा में चाँदी का कटोरा प्राप्त हुआ था । माध्यमिक शिक्षण में भी इन्हें विभिन्न प्रकार के मेडल तथा सर्टिफिकेट प्राप्त हुए हैं । हिन्दी के साहित्यकारों की तरफ से महादेवी जी को दो ग्रंथ प्रकट हुए हैं । सवंत् 2021 में भारतीय परिषद प्रयाग की ओर से कविवर पंत ने इनके निवास पर इन्हें एक 'अभिनन्दन ग्रंथ' भेंट किया । सवंत् 2023 में षष्ठि प्रवेश के उपलक्ष्य में साहित्यकारों की ओर से पंतजी ने एक 'संस्मरण-ग्रंथ' भेंट किया । बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के कला भवन में इनके मूल चित्रों को स्थान प्राप्त हो चूका है; अतः महादेवी जी गद्य और पद्य की श्रेष्ठ लेखिका तो हैं, साथ ही महान् चित्रकर्त्री भी हैं जिसका यह प्रमाण है ।

संवत् 1919 में 'नीरजा' पर सेक्सरिया पुरस्कार गाँधीजी के हाथों मिला । संवत् 2000 में 'स्मृति की रेखाएँ' पर द्विवेदी-पदक प्राप्त हुआ । संवत् 2001 में आधुनिक कवि भाग-1 को पदक प्राप्त हुआ । संवत् 2009 में स्वतंत्रता के पश्चात् गठित उत्तरप्रेश की विधान परिषद् की सम्मानित सदस्या मनोनीत हुई संवत् 2011 में दिल्ली में स्थापित साहित्य अकादमी की संस्थापक सदस्या चुनी गई । संवत् 2013 में उज्जैन और बनारस यूनिवर्सिटी ने माननीय 'डाक्टरेट' और भारत सरकार ने 'पद्मभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया । संवत् 2017 में सर्व सम्मति से प्रयाग महिला विद्यापीठ की उपकुलपति निर्वाचित हुई । संवत् 2020 में लेखिका संघ, दिल्ली की ओर से तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन् द्वारा अभिनन्दित हुई, रात को इनके सम्मान में जो काव्य गोष्ठी आयोजित हुई थी, उसमें स्वर्गीय प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू ने इसका स्वागत किया और डेढ़ घंटे तक काव्य पाठ सुनते रहे । किसी काव्य-कवि गोष्ठी में प्रथम बार उन्होंने इतना समय बिताया था । सन् 1982 में ज्ञानपीठ संस्था की ओर से 'यामा' काव्य संग्रह पर डेढ़ लाख रूपये का 'ज्ञानपीठ' पुरस्कार प्राप्त हुआ, जो इंग्लैंड की प्रधान मंत्री मार्गरेट थेचर के शुभ हाथों से मिला था । सन् 1983 में उत्तरप्रदेश की सरकार की तरफ से एक लाख रूपये का 'भारत-भारती' पुस्रकार मिला ।

इस प्रकार महादेवी जी सामान्य से लेकर विशेष महत्वपूर्ण पुरस्कारों को प्राप्त कर चुकी हैं । इनकी संपूर्ण साहित्य साधना पारितोषों तथा पुरस्कारों का मेला बन गई हैं । इनके व्यक्तितत्व की एक रहस्यपूर्ण

विशिष्टता यह रही कि इन्होंने आज तक प्राप्त प्रत्येक पुरस्कार की राशि को 'साहित्य - सहकार संस्था' में लगा दिया । महादेवी जी प्रत्येक स्थान में सम्मानित शिरोमणि स्थान की अधिकारी हैं, इस तथ्य में अतिशयोक्ति या शंका नहीं ।

संक्षेप में कहा जाये तो विभिन्न क्षेत्रों में विस्तृत उनका विशाल जीवन आदर्शों का भंडार है । महादेवी वर्मा के जीवन का संपूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए उनके व्यक्तितत्व और साहित्य का गहन अध्ययन करना अनिवार्य है । अत: महादेवी जी का जीवन एक ऐसा आदर्श है जिसकी दिप्ती से समग्र हिन्दी साहित्य जगमगा रहा है, तथा भविष्य के निर्माणों को नया संदेश प्रदान करने में सक्षम सिद्ध हो रहा है ।

2. व्यक्तितत्व विश्लेषण :

व्यक्तितत्व को लेखनीबद्ध करना एक संगीन तत्त्व को सीमाबद्ध करने के समान कठिन कार्य है । उसकी अपनी स्वतंत्र सत्ता होती है, जिसकी आलोचना करना साहसिक कार्य करने के समान है । मानव के व्यक्तितत्व को विश्लेषित करने के लिए सामान्यत: दो रूपों का आश्रय लेना आवश्य है - बाह्यपक्ष और आंतरिक पक्ष । इनके द्वारा ही समग्र व्यक्तितत्व का परिचय प्राप्त हो सकता है । श्रीमती महादेवी वर्मा की जीवन यात्रा को तथा उनके समस्यापूर्ण व्यक्तितत्व को बाह्य पक्ष और आंतरिक पक्ष को आधार पर ही अवलोकित किया जा सकता है, क्योंकि उनका व्यक्तितत्व सरल साधारण नहीं वरन् पेचीदा है ।

2.1 बाह्य पक्ष :

2.1.1आकृति एवं वेशभूषा :

कोमल कृशकाया, श्वेत वस्त्रों में सुसज्जित उनकी सौम्य आकृति हिम–सा उज्जवल दुकूल, जिसमें श्रृंगारिकता नहीं सात्विकता की झलक और सुरूचि की सम्पन्नता दिखायी देती है । कुछ खोजती सी अन्तर्हित सौन्दर्य का पथ देखती आकुल सजग–सजल आँखें, जो जीवन व्यापी जिज्ञासा में निर्निमेष व्यस्त होकर भी अपनी दृष्टि से दिव्य भावोन्मेष का संसार करने में समर्थ हैं । अधरों में अरूणोदय की स्फूर्ति का उपमान मंदहास, जो अपने और दर्शक के बीच का अन्तर अपनी निर्मल तथा शुभ्र स्निग्धता से भरकर सबको आत्मीयता की निकट स्थिति और आश्वासन देने में सहज ही सफल है । स्वर में 'भ' और 'म' के बीच की मूच्छना, कण्ठ में संगीत तो नहीं, किन्तु आरोह अवरोह की आर्द्रता है । व्यक्तिगत सीमित ऐश्वर्य राग को छोड़कर असीमित अभिप्राय से अवेष्ठित और उद्दीप्त महाराग मय प्रतिभा – प्रसन्न मुख मंडल, जिससे प्राणी मात्र के प्रति महामैत्री तथा महाकरूणा के अमोध आलोक की किरणें फुहारें छोड़ती रहती हैं सब मिलाकर एक ऐसा व्यक्तितत्व जो प्रातः की तरह मधुर, रात की तरह करूण और बरसात की तरह सरल–सहल है । एक ऐसी आकर्षक आकृति, जिसे देखकर अपरिचित भी कह उठे – लगता है इसे पहले कहीं देखा है । इनके चहरे की एक विशेषता है कि इनके कान कुछ आगे को बढ़े हुए, झाँकते हुए से हैं – मानो वे मानव की करूण पुकार सुनने के लिए ही सतर्क खड़े हों ।

महादेवी वर्मा ने कॉलेज प्रवेश करने के बाद एकदम सादी वेश–भूषा को अंगीकृत किया । इससे पूर्व उन्होंने रेशमी, चमकदार, बूटेवाली किनारी की तथा विभिन्न आकर्षित रंगों की साड़ियाँ पहनी थीं । गाँधीजी के प्रभाव के पश्चात् इनका संपूर्ण जीवन एक नवीन दिशा की और गति करने लगा था । आरंभ में वे रंगी हुई धोती पहनती थीं । कभी–कभी अनेक रंगों का कलात्मक मिश्रण कर वे स्वयं अपने हाथों से धोती रंगकर पहनती थीं । परंतु कॉलेज में वे अधिकतर बारीक किनारे की सफेद सूती धोती पहनती थीं । सीधा लंबा पल्ला इनकी वेशभूषा की विशेषता था । आज भी इनकी पोषक में कोई परिवर्तन दृष्टिगत नहीं होता । दुग्धोज्ज्वल वस्त्रों में सुसज्जित महादेवी जब जमीन पर पाल्थी मारकर बैठ जाती हैं तो ऐसी लगती हैं जैसे शांत गंभीर हिमालय की उच्चतम हिमाच्छादित श्रेणी का ऊपरी भाग काटकर किसीने पृथ्वी पर ला रख दिया हो ।

21.2 श्रृंगारिकता का अभाव :

महादेवी ने अपने जीवन में कभी श्रृंगार को महत्व नहीं दिया । उन्होंने कभी दो चूडियाँ नहीं पहनीं और श्रृंगार के नाम पर माथे पर कभी बिन्दी नहीं लगाई । इसी संदर्भ में कभी–कभी छात्रावास की सुपरिन्टेण्डेन्ट टोकती भी थीं, ''ए महादेवी ! यह क्या सोटे जैसे नंगे हाथ लटकाये फिरती हो ? सिर में तेल भी तो नहीं डाती । क्या उदास सा चेहरा बनाया हुआ है ? पढ़ – लिखकर लड़कियों के ढंग ही अजीब हो गये है ।''[79] यह मीठी झिड़कियाँ सुनकर महादेवी हँस देती थीं ।

उनके व्यक्तितत्व पर इन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था । विस्मित कर देने वाली बात तो यह है कि उनके घर पर शीशा – दर्पण भी प्राप्त नहीं होता । वे कभी भी स्वयं शीशा नहीं देखती, न ही बालों में कंधे का प्रयोग करती थीं । अतिथियों के लिए व्यवस्था कर रखी हो तो कहा नहीं जा सकता । वे हर हमेश काठ के कठोर तख्त पर ही सोना पसंद करती थी, और सोती भी बहुत कम समय तक । इसका प्रमाण इनका संपूर्ण साहित्य सृजन रजनी के दूसरे याम में ही हुआ है । स्वास्थ्य की अस्वस्थता में भी वे घंटों बैठकर लेखन और अध्ययन का कार्य करती थी । सभी तरह से ये साहित्यसाधिका तथा यथार्थ रूप में तपस्विनी की साकार मूर्ति हैं ।

2.1.3 **विनोद–परिहास :**

महादेवी का विनोदी और हँसमुखी स्वभाव देखते हुए प्रसिद्ध कवि पंतजी ने लिखा है – ''उनका सा विनोदी, परिहास, प्रिय छायावादियों में दूसरा नहीं मिलता, उनकी निश्च्छल भावाकुल हँसी प्रसिद्ध है । किसी विनोद प्रिय अवसर या घटना के हल्के स्पर्श से ही उनकी हृदयतंत्री बज उठती है । वे हँसी से लोटपोट हो जाती हैं । क्या वह उनके हृदय की वेदना का बाह्य अवगुण्ठन है ? ऐसा तो नहीं जान पड़ता ।''[80] इनकी चमकती हुई आँखें और खिलखिलाकर हँसना मनुष्य को बरबस अपनी और खींच लेते थे । हँसी की स्वाभाविकता में वे अपने अंतस्तल में छिपी उदासी को छिपाने में असफल रहती थीं । उनके मुख पर हमेशा मुस्कुराहट खेलती रहती, परंतु आँखों में से एक उदासीनता

झाँका करती थी और आज भी वही परिस्थिति है । संसार के दु:खों को इन्होंने इतनी तीव्रता से अनुभव किया कि युवावस्था में ही वे एक सन्यासिनी की तरह जीवन जीती रहीं । पलकों की ओट में भले हीं करूणा के अनंत आँसू हों, पर उनके अधरों की ओट में तो संसार को देने के लिए हँसी का अक्षय भंडार ही है । इन आँसुओं को उनके काव्य में अभिव्यक्ति मिली है और इस हँसी को इनके जीवन में । उनके अधरों से फूटता हुआ अविरल मुक्तहास उस तरह है जैसे किसी शांत भूधर के अंचल में कोई दूध से श्वेत पारदर्शी जल का निर्झर फूट रहा हो और उसके धारा की रज मलिन न कर पायी हो । उनके व्यक्तितत्व से प्रकट होने वाली हँसी श्वेत पुष्पों की पावन मंदाकिनी के समान जान पड़ती है ।

2.1.4 **वार्तालाप :**

महादेवी से बातचीत करने में ना ही कोई घुटन महसूस करता है और ना ही निराशा, बल्कि पल में समय बीत जाता । यह उसकी सतर्कता है कि वे सामने वाले की चेतना बुद्धि का स्तर ताड़ लेती थी । उनसे बातचीत करने वाले किसी भी व्यक्ति को ऐसा लगता था कि उनका और प्रत्यक्ष व्यक्तितत्व का पुराना परिचय हो । किसी पर भी वे अपनी विद्वता नहीं थोपतीं और न ही किसी को चारों ओर से घेरने का प्रयत्न करती – चाहें कोई निरक्षर हो या महापंडित । वे सभी के साथ घुल-मिल जाती थीं ।

21.5 बाल–सुलभ व्यक्तितत्व :

महादेवी के व्यक्तितत्व में वृद्धावस्था में भी बाल–सहज कुतुहल और चंचलता दिखाई देती थीं । पेड़ों के नीचे, झाड़ियों के पीछे, बगीचे में, डाली पर आदि जगहों पर घंटों बैठना । बच्चों के झगड़े, बातचीत सुनना, गिलेहरी को कुतरते देखना, चिड़ियों का बच्चों को चोंगा देना यह सारी बातें वे अदम्य, अद्‌भूत भावों को महसूस करती । जो सायद साहित्य साधना में भी सुविधा खड़ी कर सकते हैं ।

2.1.6 दिनचर्या और खान–पान :

सहज सामान्य व्यक्ति के समान जीवन यापन करनेवाली महादेवी जी की दिनचर्या एकदम सादगी पूर्ण है । प्रात:काल नित्यक्रम से मुक्ति प्राप्त कर वे अपना काम स्वयं करती थीं, तत्पश्चात्, ताँगे में कॉलेज रवाना हो जाती थी । वृद्धावस्था में भी वे उसी क्रम में कॉलेज जाती थी, फर्क इतना था कि ताँगे का स्थान कारने लेलिया था । शाम को विधिवत् वापस लौटकर वे स्नानादि से निवृत हो कुछ नास्ते का प्रबन्ध करती थी । इस समय आये हुए मित्र मंडल के साथ वे बैठकर घंटों बातचीत करती । साथ ही अपने हाथों से बनाये गये नमकीन और मिष्ठान पदार्थ का नाश्ता किया जाता । वे नाश्ते को 'प्रसाद' का स्वरूप देती थीं । शायद ही कोई व्यक्ति इस प्रसाद से वंचित रह जाता होगा । इस समय उनकी बातचीत का कोई एक प्रमुख विषय नहीं होता । प्रत्येक व्यक्ति अपने स्पष्ट मनोभावों को मुक्त रूप से अभिव्यक्त करने की सत्ता रखता है । समग्र दिनचर्या में यह कुछ घंटों का समय

महादेवी जी के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण रहेता है और फिर कुछ लेखन और अध्ययन का कार्य पूर्ण करके काफी रात गये सोनें का संदेश स्वीकार करती हैं । यह उनकी अत्यंत सरल और सादगीपूर्ण दिनचर्या है ।

महादेवी जी शुद्ध शाकाहारी भोजन पसंद करती है । उन्हें बंगाली और दक्षिणी भोजन विशेष प्रिय है । जिसमें रसगुल्ला, गुलाब जामुन, बरफी, इडली-सांभर, मसाला ड़ोसा, उपमा जैसी वैविध्यपूर्ण कुछ खाद्य सामग्री उनके अत्यंत प्रिय व्यंजनों में समाविष्ट होती हैं । व्यक्ति के खान-पान के अनुरूप ही प्रायः उसके स्वभाव का निर्माण होता है । इस तथ्य को महादेवी जी के व्यक्तितत्व में सार्थकता प्राप्त हुई है ।

कला-ज्ञान :

महादेवी जी सीना-पिरोना, कातना, भोजन एवं मिठाई बनाना इत्यादि सभी कार्यों में सिद्धहस्त थी । ललित कलाओं में काव्य, संगीत, चित्रकला तीनों का उन्हें वरदान मिला था । साथ ही इन्हें उर्दू, संस्कृत, पाली, प्राकृत, बंगला, गुजराती और अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान था । उन्होंने काव्य कला को अपने जीवन में सर्वोपरि स्थान दिया है, किन्तु चित्रकला और मूर्तिकला इत्यादि की दिशा में भी कुशल प्रयोग किये हैं, जहाँ उन्हें विशेष सफलता प्राप्त हुई हैं ।

2.1.8 रचना-प्रक्रिया :

महादेवी जीने जिस युग में आँखें, खोलीं, वह व्यापक सामाजिक, सुधार-चेतना से परिपूर्ण तथा राष्ट्रीय जागरण का समय था, परंतु

पुरूष प्रधान समाज में बालिकाओं का कवि सम्मेलन में कविता सुनाना परिवार वाले अच्छा नहीं समझते थे परंतु, सुभद्राजी तथा महादेवी जी के अभिभावक प्रगतिशील विचारधारा के थे, परिणामतः इन्हें परंपरा के प्रतिबंधों से मुक्ति मिली । ये दोनों सखियाँ कवि सम्मेलनों में कविता सुनाती तथा पदकों से पुरस्कृत होती रहती थीं । उस समय महादेवी जी को यह मालूम नहीं था कि काव्य सुनाने के अतिरिक्त संग्रह करना पुस्तक प्रकाशन का रूप पाता हैं । इसी त्रिटि के कारण सन् 1920 तक की इनकी रचनाएँ खो गई, कुछ माँ के रामचरितमानस में सुरक्षित रहीं तो उन्हें महादेवी जी ने प्रकाशित करना रूचिकर नहीं समझा । रचना प्रक्रिया का दौर क्रमशः चलता रहा अतः आज हमारे समक्ष गद्य-पद्य का विस्तृत भंडार महादेवीजी ने रखा है । पद्य में 'नीहार' से लेकर 'यामा', 'प्रथम आयाम' तक और गद्य में रेखाचित्र, संस्मरण, निबंध इत्यादि ।

2.1.9 जन-नेतृत्व :

जन नेतृत्व के उनमें नैसर्गिक गुण हैं । आकर्षक एवं प्रभावशाली व्यक्तितत्व, आत्म-विश्वास, कठिन परिश्रम, अदम्य साहस, अध्ययन, इच्छा, अथक आशावाद, जोश तथा उत्साह, अत्यधिक त्याग, हाथ में लिए हुए काम को किसी भी प्रकार पूरा करने की प्रवृति, संभाषण शक्ति और ओजपूर्ण भाषण इनमें मुख्य हैं । प्रकृति ने उन्हें इतनी ऊँची आवाज़ दी हैं कि बिना लाउडस्पीकर की सहायता के ही हजारों आदमी उनका भाषण सुविधा पूर्वक सुन सकते हैं ।

2.1.10 सौन्दर्य एवं कलात्मक व्यक्तित्व :

महादेवीजी के सौन्दर्य और कलात्मक रूप को बाह्य तत्व नहीं माना जा सकता । ये बाह्य वस्तुएँ होते हुए भी महादेवी जी के लिए अंतराल की सूक्ष्मानुभूति की सत्य अभिव्यक्तियाँ हैं । अनजाने ही काव्य का रूप धारण करना और सुन्दर चित्र का सृजन होना इनके अंतर की गाथा को व्यक्त करनेवाले सक्षम साधन हैं । महादेवी जी की सौन्दर्य चेतना को पाने के लिए पाठक को दूर दूर नहीं भटकना पड़ता बल्कि उनके आसपास की सामान्य वस्तुओं में हमें उनकी महानता के दर्शन हो जाते हैं ।

2.1.11 व्यवस्था–प्रियता :

कला प्रेमी व्यक्ति के कारण उन्हें प्रत्येक वस्तु में कलात्मकता ही पसंद है । सीधी सरल वस्तु में भी उन्हें कुछ वैविध्य अधिक स्वीकार है । उन्हें वस्तु या जीवनगत व्यवहार में अस्त–व्यस्तता बिलकुल पसंद नहीं । घर में एकत्रित बर्तन भले ही सामान्य हो परंतु उनकी बनावट ओर कारीगरी कलात्मक होनी चाहिए । चादर और परदे भले ही खादी के हों पर स्वच्छ और रंग–बिरंगे फूलों से सुसज्जित होने चाहिए । किताबे भले ही पुरानी हों, फट गई हों परंतु वे कतार में सुव्यवस्थित जमी होनी चाहिए । सामान्यतः किसी भी वस्तु में बिखराव उन्हें पसंद नहीं, सभी चीजों का नियत स्थान जरूरी होता है । साथ ही उनमें प्रभावोत्पादक आकर्षण भी अनिवार्य है । महादेवी जी की व्यवस्थाप्रियता और कला प्रेम उनके व्यक्तितत्व की प्रमुख विशेषताएँ हैं । वे कुशल

चित्रकार हैं, उनकी यह कलात्मक रूचि उनके निजी जीवन में भी उतर आई है । इसी कलात्मक रूचि का परिणाम है कि उनका निवास स्थान देव मंदिर सा द्दष्टिगोचर होता था ।

हिन्दी साहित्यकी विदुषी लेखिका का बाह्यव्यक्तितत्व हिम सा उज्जवल और शांत दृष्टिगत होता है । सरल सौम्य आकृति सभी को आकर्षित करती है । अधरों से प्रस्फुटित मंद हास्य की मधुर फुहारें ही अनजाने व्यक्ति को भी उनके निकट ला खड़ा कर देती हैं । उनकी हँसी उनके व्यक्तितत्व की विसंगति का कारण न होकर उनके अपार संयम एवं दृढ़ व्यक्तितत्व का प्रतीक है । उनके व्यक्तितत्व की एक और विशेषता यह हैं कि वे मित-भाषी हैं । किन्तु आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि सभाओं, गोष्ठियों आदि के अवसर पर जब उनकी वाणी मुखरित होती है तो सुनते ही बन पड़ता है । ऐसी प्रतीति होती हैं मानो हम दैवी वाणी सुन रहे हैं - ''विशुद्ध वाणी का ऐसा विलास नारियों में तो क्या, पुरूषों में भी एक रवीन्द्रनाथ को छोड़कर कहीं नहीं सुना ।''[81] उनका यह बाह्य रूप जितना साधारण हैं आंतरिक व्यक्तितत्व उतना ही गूढ़ है । वे कब किस रूप में प्रकट हो, इसका अंदाज लगाना एक कठिन समस्या है । इसी कारण उनका आंतरिक पक्ष आकर्षण उत्त्पन्न करने वाला है ।

2.2 आंतरिक-पक्ष :

व्यक्तितत्व का अर्थ हैं मानसिक प्रक्रिया में अनुरूपता अथवा एक रूपता की निर्मिति । महादेवी का व्यक्तितत्व विकासोन्मुखी है । उनमें

अपने आप को युगानुरूप ढालने की प्रवृत्ति सदा विराजमान रही है, आज भी वे परिवर्तनशील युग को आवश्यक अंग के रूप में स्वीकार करती हैं प्राचीन परंपराओं से बंधे होने पर भी उन नवीन विचारों और सिद्धान्तों का उन्होंने सदैव हार्दिक स्वागत किया है, जो मानव मात्र के लिए कल्याणकारी हैं । उनके व्यक्तितत्व के आंतरिक पक्ष का निरूपण इन तत्वों के आधार पर किया जा सकता है ।

2.2.1 मैत्री-भाव की उत्त्कटता :

महादेवी की आत्मा हमेशा किसी सहचर मित्र के लिए आकुल रहती है । वे सहज ही किसी को भी अपनत्व प्रदान कर देती हैं, परंतु हमेशा अपने मित्रों से सजग रहती हैं । 'उग्र स्वाभिमानी' होने के कारण वे अपनी निजी कष्ट की बात भी किसी से नहीं करतीं । उन्हें यह स्वीकार्य नहीं कि कोई उन पर दया करे, सहानुभूति प्रकट करे । महादेवीजी समाज के ऐसे वर्ग से मित्रता स्थापित करना चाहती हैं, जो अभावों के झंझावात से पीड़ित है । वे उनकी वेदना को अपनी वेदना समझती हैं । इनका जीवन खुली पुस्तक के समान दिखाई देता है । इनका जीवन उस प्रकार अस्त-व्यस्त है, जैसे बंधनमुक्त पुस्तक के तितर-बितर पन्ने हों फिर भी महादेवी जी इनसे निकटता स्थापित करने को तत्पर हैं । महादेवी जी के संस्मरणों में रामा, बिंदा, बिट्टो, सबिया, मेहतरानी, रधिया कुम्हारिन, लक्ष्मी पहाड़िन , धीसा जैसे पात्र मैत्री भाव के पोषक है । वे स्वयं कहती हैं - ''समता के धरातल पर सुख-दु:ख का मुक्त आदान-प्रदान आदि मित्रता की परिभाषा मानी

जाय तो मेरे पास मित्र का अभाव है ।''[82] परिणाम स्वरूप उनकी आत्मा मित्रता के लिए, अपनेपन के लिए व्याकुल रहती है ।

2.2.2 मानवतावादी दृष्टिकोण :

महादेवी जी में मानवीय आस्था और करूणा कूट-कूटकर भरी है । उन्होंने जन-जन की पीड़ा को समझा और निकट से अनुभव किया है । उनमें जीवनगत अनुभवों की वास्तविकता प्राप्त हैं । उसका साहित्य जन-चेतना का साहित्य माना जाता है, जो आज के युग की विषय स्थिति, उसकी गहरी व्यथाओं, वेदनाओं की मार्मिक कथाएँ कहता हैं । परंतु महादेवी जी की करूणा, आस्था और सहानुभूति निम्न मध्यमवर्गीय श्रेणी के मानवों के लिए है, पिसते हुए जन के लिए है, श्रमिक और शोषित वर्ग के लिए है । महादेवी जी इस उच्च श्रेणी के पूँजीवादी वर्ग से धृणा करती हैं । यह शोषक वर्ग है, जो जनता का रक्त पीता है, जिसका मार्ग अन्याय का मार्ग है, अत्याचार का द्वार हैं । उनके साहित्य में भी इस गर्व के प्रति तीव्र धृणा व्यक्त हुई है । स्वभावतः आदर्शोन्मुख महादेवी वर्मा मानवता की दृष्टि से बहुत ऊँचे दर्जे की व्यक्ति हैं । उनके कदम-कदम पर हमें मानवता के दर्शन होते हैं ।

2.2.3 अन्याय का विरोध :

महादेवीजी अपनी तीव्र और पैनी दृष्टि से देश के कोने-कोने में झाँकती रही हैं, उन्होंने समाज को, सामाजिक व्यवस्था को गहरे रूप में

टटोला है । उन्होंने राजनीति के दाँवपेचों को प्रखरता से भेदा हैं, देश को कमजोर बनाने वाली नब्ज़ पर हाथ रखकर अनुभव किया है, समाज को बुराइयों की ओर घसीटने वाली, उसे खोखला बनानेवाली दुर्दान्त शक्तियों को खींचकर सामने लाने का प्रयत्न किया है । वे विद्रोह में अपने धैर्य को नहीं खोतीं, यही उनकी सफलता की सिद्धि है ।

2.2.4 नौकरों के प्रति आत्मीय-व्यवहार :

प्रधानमंत्री से लेकर सामान्य ग्रामीण तथा उनके नौकर-चाकर तक उनका अपनत्व प्राप्त कर सकते हैं । उनके हृदय में उच्च पद या धन के प्रति आत्मसमर्पण की भावना नहीं है । इसीलिए उनकी शालीनता, शिष्टाचार तथा नम्रता उच्च पद पर प्रतिष्ठित या धनवान्-व्यक्तियों के सम्मुख अन्य रूप में प्रकट नहीं होती । उनकी ये उच्च मानवीय प्रवृतियाँ सबके लिए समान होती हैं । वे अपने नौकरों को कभी नौकर नहीं समझती । उन्हें हमेशा अपना सहायक तथा परिवार का अंग मानती हैं । उनकी हर समस्या को सुलझाना, दु:ख में प्रकट रूप से मदद करना, उनके मुख्य कर्तव्य थे ।

2.2.5 बौद्धदर्शन का प्रभाव :

बौद्धदर्शन के प्रमुख सिद्धान्त मुख्यत: ये हैं : दु:खवाद, प्रतीत समुत्पाद, मध्यम मार्ग, निर्वाण, आत्मा, परमात्मा, जगत् एवं पुनर्जन्म इत्यादि । इन सभी का महादेवी जी के जीवन पर गंभीर प्रभाव दृष्टिगोचर

होता है । बुद्ध की दार्शनिक जिज्ञासा एवं धार्मिक प्रवृत्ति की मूल प्रेरणा संसार के लोगों की कष्टपूर्ण स्थिति थी, कदाचित् इसी से उनके दर्शन में दु:ख संबंधी विचारों पर बल दिया गया है । शनैः शनैः महादेवी की भावना विश्वभावना का रूप धारण करती है । यह बौद्ध दर्शन का ही प्रभाव कहा जा सकता है ।

2.2.6 दार्शनिक-दृष्टिकोण :

महादेवी जी की दार्शनिक मान्यताएँ विशेषतः ब्रह्म सृष्टि, जीवात्मा, माया आदि से संबंधित हैं । साधना साध्य है, वेदना उसका माध्यम है, सृष्टि प्रक्रिया शाश्वत् है, गति सत्य है, साधना ही सिद्धि है । वे आत्मसत्ता में विश्वास रखती हैं, संघातवाद में नहीं; अतः समग्र क्षेत्र में सर्वात्मवादी दर्शन व्याप्त है ।

2.2.7 धार्मिक-दृष्टिकोण एवं भारतीय संस्कृति :

वेद, उपनिषद् तथा आदिकालीन परंपरा को केन्द्र में रखते हुए महादेवी जी स्वीकारती हैं कि भारतीय संस्कृति आलोकवाहिनी है । अग्नि-सूर्य आज भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं, जितने वेदकालों में थे । ये दोनों प्रत्यक्ष जीवन के अनिवार्य संगी है । दीपावली, होली आदि अग्नि के ही उत्सव है । आज के वैज्ञानिक युग में भी बुद्धिजीवी मानव अग्नि के बिना नहीं जी सकता । महादेवी जी के व्यक्तित्व पर छाई हुई धार्मिक भावना भारतीय संस्कृति के रंग में रंगी हुई है, जिस पर पारिवारिक परंपरा का यथेष्ट प्रभाव है ।

2.2.8 सेवा–भाव :

महादेवी जी स्वभाव से संवेदनशील रही । वे प्रत्येक की किसी भी प्रकार की पीड़ा को दूर करने के लिए उद्यत रहती हैं । यहाँ पर वे परिचित अपरिचित की भेद रेखा नहीं रखतीं, सभी को समान रूप में देखती हैं । पीड़ित प्रताड़ित और भावग्रस्त लोगों के लिए उनके द्वार सदैव खुले रहते हैं । वे मूलतः समाजसेविका कहलाने की अधिकारिणी हैं ।

संक्षेप में कहे तो महादेवी के व्यक्तित्व के तीन रूप हैं । ममता मयी भारतीय नारी का; जो बड़ों से छोटी बहन और छोटों से बड़ी बहन की तरह का व्यवहार करती थी । दूसरा, राष्ट्र की मेधाविनी नारी का; जिसके विचारों में दृढ़ता और वाणी में अपूर्व तेज है । तीसरा, रहस्य कल्पनाओं की भावप्रवण कवयित्री का; जिसने मधुरतम छायावादी गीतों की सृष्टि की है । इनके व्यक्तित्व और कृतित्व का स्पष्ट परिचय उनकी हिमालय से संबंधित काव्य रचना से अनायास ही प्रकट हो जाता है :

''हे चिर महान् !
यह स्वर्णरश्मि छू श्वेतभाल, बरसा जाती रंगीन हास,
सेली बनता है इन्द्रधनुष, परिमल मलमल जाता बतास !
पर रागहीन तू हिमनिधान !
नभ में गर्वित झुकता न शीश, पर अंक लिए है दीन क्षार,
मग–गल जाता नत विश्व देख, तन सह लेता है कुशिल–भार,

कितने मधुर कितने कठिन प्राण !
टूटी है कब तेरी समाधि, झंझा लौटे शत हार-हार,
बह चला दृगों से किन्तु नीर, सुनकर जलते कण की पुकार,
सुख से विरक्त दुःख में समान ।
मेरे जीवन का आज मूल, तेरी छाया से हो मिलाप,
तन तेरी साधकता छू लें मन ले करूण की थाह नाप !
उर में पावस दृग में विहान ।''[83]

व्यक्तितत्व संपन्न लेखिका करूणा, ममता, मानवीयता, अकृत्रिमता, आत्म निर्भरता जैसे गुणों की धनी हैं । उनका जीवन कलाकारों के साहित्य का कला मंदिर है । वे साहित्य-साधिका के साथ-साथ तपस्विनी तथा करूणा की जीवन-संगिनी होकर भी विद्रोहिणी है । दुःख प्रिया होकर भी वे सरल स्वभाव से मधुरभाषिणी हैं अर्थात् वे रहस्यमय व्यक्तितत्व की अक्षय निधि हैं । उनके व्यक्तितत्व की अखंडता सर्वत्र अक्षुण्ण हैं ।

3. कृतित्व :

बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कवयित्री महादेवी वर्मा की प्रतिभा का विकास साहित्य की विविध विधाओं के माध्यम से हुआ है वैसे उनकी सशक्त लेखनी से साहित्यिक विधाओं का प्रत्येक स्वरूप परिचित हैं । अपने अंतर्मन की रूचि और अरूचि के परिणाम स्वरूप उन्होंने कुछ साहित्यिक रूपों को ही विशेष रूप में स्वीकार किया और कुछ को एकदम छोड़ दिया । यह उनकी अपनी विशिष्टता है । खंडकाव्य, यात्रा

वर्णन, संस्मरण, रेखाचित्र, निबंध, विवेचन, काव्य, नाट्क, भाषण तथा पत्र-पत्रिकाओं के सामाजिक - असामाजिक लेखों आदि पर उनकी कलम बड़ी सरलता से सरकी है । उनके साहित्य पर एक सरसरी निगाह डाल लेने के पश्चात् ही साहित्यिक वर्गीकरण करना उचित प्रतीत होगा ।

3.1 पद्य साहित्य :

हिन्दी साहित्य उस महान् विभूति से परिचित कराता है, जिसकी प्रतिभा शैशव में ही खिल उठी थी । उनकी तुतली-अवस्था में लिखें गए काव्य मोहने लगे तथा सभी पाठकों का ध्यान अपनी ओर केन्द्रित करते गए । यह गौरव हिन्दी साहित्याकाश के दीप्तीमय प्रकाश पुंज महादेवी वर्मा को प्राप्त हुआ ।

महादेवीकी प्रथम काव्य रचना तुकबंदी के रूप में स्फूरित हूई । यथा -

> ''ठंडे पानी में नहलातीं,
> ठंडा चन्दन इन्हें लगातीं,
> इनका भोग हमें दे जाती;
> फिर भी कभी नहीं बोले हैं,
> माँ के ठाकुरजी भोले हैं ।[84]

इस समय उनकी उम्र लगभग 6 वर्ष से अधिक नहीं थी । इसके बाद लगभग सात-आठ वर्ष की उम्र में ब्रजभाषा के पदों में ये मुक्तकों

की रचना करने लगी । इन रचनाओं में समस्यापूर्ति का ढंग होता था । यथा –

> ''आवन के दिन नायक हो,
> अरूनाई भरी नभ की गलियन में ।''[85]
> ''कैसे हो विराट् अरू कैसे तुम ज्योति रूप,
> दीपक असंख्या बारी, बैठे हो अँधेरे में ।''[86]
> ''हाथी न अपनी सूँड में
> यदि नीद भर लाता अहो,
> तो किस तरह बादल बिना
> वर्षा यहाँ होती कहो ।''[87]

इसी बीच इनका परिचय 'सरस्वती' पत्रिका से हुआ उसमें खड़बोली से प्रेरित हो, इन्होंने पूर्ण रचना 'दिया' लिखी इस समय इनकी उम्र लगभग 11 वर्ष की थी । रचना का स्वरूप इस प्रकार है –

> ''धूलि के जिन लधु कणों में है न आभा प्राण,....
> .....तो नया फैले जगत के तिमिर में आलोक !''[88]

इस काव्य पंक्तियों में कवयित्री का वह रूप दृष्टिगोचर होता है, जो कुछ समय के पश्चात् स्वतंत्र रूप से अपने मनोभावों को सूक्ष्म रूप में अभिव्यक्त कर सका । इस अवस्था में जाग्रत होने वाली भावनाओं ने उचित समय पाकर 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत' और 'दीपशिखा' का सहारा लिया । 'दिया' के बाद इनकी कविताएँ 'आर्य महिला', 'महिला जगत' और 'चाँद' पत्रिका में प्रकाशित होने लगी ।

कविताओं के भाव, शब्दोंका गठन, युक्ति की रोचकता शैली की मधुरता आदि का अनुभव पाठक स्वयं कर सकते हैं । उनकी छोटी उम्र में विकास पाने वाली हृदय की उच्च भावना आदि यौवन में मधुर बन जावे तो कोई आश्चर्य नहीं, यह तो एक सहज स्वाभाविकता है । कवयित्री की सात छंदो में रचित 'चाँद' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी जिसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं –

> ''ज्योतिमय यह सदा आकाश का श्रृंगार रहे ।
> चाँदनी शुभ्र का यह सर्वदा आधार रहें ।
> प्रेम का नेम का शुभ शांति का अगार रहे ।
> चाहकों का सदा इस चाँद में अनुराग रहे ।''[89]

विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में इनकी 'चन्द्रोदय', 'भारत माता', 'धन्यवाद', 'अबला', 'विधवा', 'वसंतोपहार' एवं 'होली' आदि रचनाएँ प्रकाशित हुई । इसी समय लगभग सन् 1920 में इन्होंने सौ छंदो में एक करूण कथा का करूणा पूर्ण खंडकाव्य भी लिखा जो अप्रकाशित रहा, वह आज भी अप्राप्य है । इसी तरह सन् 1923 में एक नाटक की रचना की, जिसमें फूल, भ्रमर, तितली, वायु आदि पात्र बने; अतः यह रचना भी अप्रकाशित ही रही हैं । अबोधपन के इस काल दरम्यान लिखी गई रचनाओं में से कुछ 'प्रथम–आयाम' में प्रकाशित हुई हैं । यह कृति उन कविताओं का संग्रह है जो माँ के द्वारा सुरक्षित रह सकी थीं या रामायण आदि में छिपी रहीं ।

महादेवी की काव्य-प्रतिभा और काव्य-चेतना उतरोत्तर विकसित होती रही । आरंभिक काल की कविताओं में वर्णनात्मक पद्धति और तत्सम शब्दावली का प्रयोग अधिक दिखायी देता है । धीरे धीरे भाव-गांभीर्य के साथ लाक्षणिक प्रयोगों की अधिकता होती गयी और काव्य-सौन्दर्य बढ़ता गया । कालक्रमानुसार उनकी पद्य-रचनाएँ इस प्रकार हैं - 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत' और 'दीप-शिखा' । 'सप्तपर्णा' तथा 'हिमालय' अनुदित रचनाएँ हैं । 'प्रथम आयाम' में बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था में लिखें गीत संग्रहित है । इनके अतिरिक्त समय-समय पर महादेवी की कुछ अन्य रचनाएँ भी प्रकाशित होती रही हैं, जिनमें मुख्यतः पाँचों मूल कृतियों की रचनाएँ ही हैं, किसी - किसी कृति में कोई एक-दो नवीन रचनाएँ मिल जाती हैं । 'आधुनिक कवि', 'संधिनी', 'गीत-पर्व', 'परिक्रमा', 'आत्मिका', 'नीलांबरा' तथा 'दीपगीत' ऐसी ही कृतियाँ हैं । प्रथम चार मूल कृतियाँ ('नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' और 'सांध्यगीत') 'यामा' में संकलित हैं । 'प्रथम आयाम' की रचनाओं के अतिरिक्त और भी रचनाएँ 'महादेवी-साहित्य भाग-३' में संकलित हैं ।

3.1.1 'नीहार' :

सन् 1924 से 1928 ई. तक की 47 रचनाओं से संकलित 'नीहार' सन् 1930 में प्रकाशित महादेवी की प्रथम काव्यकृति है ।

किशोरावस्था में प्रणीत महादेवी के इन गीतों में जो उत्सुकता अकुलाहट और वेदना का स्वर है वह उस अवस्था के अनुरूप है ।

वेदना, अकुलाहट आदि का अनुभव तो अधिकांश व्यक्ति करते हैं किन्तु उन्हें काव्य-रूप में व्यक्त करना सब के बश की बात नहीं । प्रतिभा-संपन्न संवेदनशील कवि-हृदय ही उन भावानुभूतियों की व्यंजना में समर्थ होता हैं । महादेवी ने अपनी कुतूहल मिश्रित वेदना के संदर्भ में कहा हैं - 'नीहार' के रचनाकाल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कुतूहल मिश्रित वेदना उमड़ आती थी जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहरी उषा और स्पर्श से दूर सजल मेध के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है ।''[90]

अप्राप्य की अभिलाषा है किन्तु यदि वह अप्राप्य, प्रणयानुभूति का आधार असीम अलौकिक प्रियतम है तो वह अभिलाषा और उत्कट हो जाती है, व्याकुलता और बढ़ जाती है । कवयित्री की वेदना यह सोचकर और अधिक मुखर हो जाती है कि उसकी लज्जा-स्निग्ध आँखों में दर्शन की अभिलाषा जगाकर वह निर्मम प्रिय छिपकर पीड़ा क्यों दे गया !

''इन ललचाई पलकों पर पहरा था जब व्रीड़ा का,
साम्राज्य मुझे दे डाला उस चितवन ने पीड़ा का ।''[91]

कवयित्री का मुग्ध प्रणयी हृदय प्रियतम की प्रतीक्षा में बैठा रहा और 'सपनों के जाल' बिछाता रहा । निष्ठुर प्रियतम् अपनी सम्मोहक तान और मधुर स्मित के साथ पीड़ा का साम्राज्य देकर चला गया -

''बिछाती थी सपनों के जाल तुम्हारी वह करूणा की कोर,
गयी वह अधरों की मुस्कान मुझे मधुमय पीड़ा में बोर ।''[92]

और तभी से वियोगिनी अपने उस पीड़ा के साम्राज्य 'सुनेपन' की मतवाली रानी बनकर, अपने प्राणों के दीप जलाकर नित्य दीपावली मनाती हैं -

''अपने इस सूने पन की मैं हूँ रानी मतवाली,
प्राणों के दीप जला कर करती रहती दीवाली''[93]

'नीहार' की आशा-निराशा जनित पीड़ा का स्वर इतना मार्मिक है कि महादेवी की वेदना की कसक सहृदय पाठक भी अनुभव करने लगता है ।

3.1.2 'रश्मि' :

व्यक्तिगत सुख विश्ववेदना में घुलकर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है और व्यक्तिगत दुःख विश्व के सुख में घुलकर जीवन को अमरत्व ।[94] यह अनुभूति ही ज्ञान-रश्मि का परिचायक है । 'रश्मि' शीर्षक से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि 'नीहार' का धुंधलका पार करके कवयित्री रश्मि के प्रकाश में आ गयी है । 'रश्मि' को उस समय आकार मिला जब मुझे अनुभूति से अधिक उसका चिंतन प्रिय था ।[95] महादेवी की इन उक्ति से हम यह आशय ले सकते हैं कि 'नीहार' में उन्होंने जिस अज्ञात प्रिय का अनुभव किया था, 'रश्मि' तक आते आते उस अनुभूति से अधिक उस प्रियतम का चिंतन प्रिय लगने लगा ।

महादेवी की यह दूसरी कृति 'रश्मि' सन् 1932 ई. में प्रकाशित हुई । सन् 1928 से 1932 ई. तक लिखे गए कुल 35 गीत इसमें संकलित हैं ।

'रश्मि' में वेदना की तीव्रता नहीं अपितु रहस्यमय प्रियतम का स्वरूप जानने की तीव्र जिज्ञासा परिलक्षित होती है । हृदय में उसके बाण के चुभते ही सजल-गान निःसृत होने लगते हैं ।[96] किन्तु इस पर बाण छोड़ने वाले का स्वरूप क्या है ? दूरागत संगीत की तरह अपने समीप बुलाने वाला, अपनी चमक से आँखे मूँदने वाला[97] संसृत के सूने पृष्ठों पर करूण काव्य लिखने वाला[98] कौन है ? वह कौन है जिसे देखकर गगन में मयंक हँस पड़ता है,[99] समुद्र की लहरें उमड़ पड़ती हैं, जिसकी आभा के कण-मात्र से सूर्य-चन्द्र और तारे चमकने लगते हैं, जिसकी सुषमा के एक कण से राशि-राशि फूलों के वन खिल उठतें हैं ![100] कौन अपनी तुलिका से जग के चित्राधार को बार-बार रँगता और मिटता हैं ?[101]

जिज्ञासु कवयित्री जब उसके निश्चित स्वरूप को देख पाने में असमर्थ हो जाती हैं तब वह प्रकृति के उदात्त, नित्य-नूतन और क्षण-क्षण परिवर्तित उपकरणों में उसका आभास पाकर और अपनी सीमा पहचान कर संतुष्ट हो जाने का उपक्रम करती है ।[102]

जिज्ञासा के शांत होते ही वेदना फिर मुखर हो उठती है । किन्तु अब उसमें गंभीरता है । अपना अस्तित्व - बोध होते ही प्रिय से एकाकार होने के प्रबल आवेग का उपशमन होने लगता हैं; क्योंकि अप्राप्य की अभिलाषा चिरंतन होती है । तृप्ति निःस्पंद हो जाती है और अतृप्ति स्पंदनशील रहती है । इसीलिए कवयित्री की कामना है -

''तुम रहो सजल आँखों की सित असित मुकुरता बनकर;
मैं सब कुछ तुमसे देखूँ तुमको न देख पाऊँ पर ।

x x x

पाने में तुमको खोऊँ खोने में समझूँ पाना;
वह चिर अतृप्ति हो जीवन चिर तृष्णा हो मिट जाना ।''[103]

''चिर तृप्ति कामनाओं का, कर जाती निष्फल जीवन;
बुझते ही प्यास हमारी, पल में विरक्ति जाती बन ।''[104]

अनंत अलौकिक के प्रति जिज्ञासा का भाव व्यक्त होने के कारण 'रश्मि' की रचनाओं में दार्शनिकता का पुट अपेक्षाकृत अधिक है । जिज्ञासा मिश्रित वेदना का भाव, आध्यात्मिक चिंतन एवं दार्शनिक भावों का मणिकांचन संयोग 'रश्मि' की अपेक्षणीय विशेषता हैं ।

3.1.3 **'नीरजा' :**

'नीरजा' महादेवी की तृतीय काव्य कृति और गीति-काव्य की अमूल्य निधि है । इसका सर्व प्रथम प्रकाशन 1935 ई. में हुआ । इसमें सन् 1931 से 1934 ई. के मध्य रचित कुल 58 गीत हैं इन गीतों में अनुभूति की तीव्रता अधिक है । 'रश्मि' तक आते-आते 'नीहार' की अधीर कल्पना जिज्ञासा में और व्याकुल वेदना गंभीर अनुभूति में परिवर्तित हो गयी । 'नीरजा' तक पहुँचकर कवयित्री की जिज्ञासाएँ शांत हो गयी और उसने अतंर्मुखी भावनाओं का प्रकृति पर आरोपण करके सुख और दु:ख में सामंजस्य का प्रकृति स्थापित कर लिया । सामंजस्य

की स्थिति में पहुँचकर 'नीरजा' अपने संपूर्ण सौन्दर्य के साथ प्रस्फूरित हो गयी ।''[105] 'नीहार' का धुंधलका छँट गया, रश्मि प्रभासित हुई और नीरजा खिल गई ।

'नीहार' में प्रिय-मिलन की आकांक्षा और तज्जनित वेदना के क्रम को कवयित्री ने अपने प्रिय को प्राप्त कर लिया -

''एक करूण अभाव में चिर तृप्ति का संसाद सचित;
पा लिया मैंने किसे इस वेदना के मधुर क्रय में ?''[106]

'नीरजा' की भूमिका में श्री रायकृष्णदास ने लिखा है - ''प्रस्तुत गीति-काव्य 'नीरजा' में 'नीहार' का उपासना-भाव और भी सुस्पष्टता और तन्मयता से जाग्रत हो उठा है । इसमें अपने उपास्य के लिए केवल आत्मा की करूण अधीरता ही नहीं; अपितु हृदय की विह्वल प्रसन्नता भी मिश्रित है । 'नीरजा' यदि अश्रुमुख वेदना के कणों से भीगी हुई है तो साथ ही आत्मानन्द के मधु से मधुर भी है । मानो, कवि की वेदना, कवि की करूणा अपने उपास्य के चरण-स्पर्श से पूत होकर आकाशगंगा की भाँति इस छायामय जग को सींचने में ही अपनी सार्थकता समझ रही है ।[107]

कवयित्री प्रिय की स्मृति से अधीर हो उठती है; हृदय की पुलकन और तन की सिहरन से वह अपने आँसुओं को निमंत्रित नहीं कर पाती[108] और मिलनाकांक्षा से पुकार उठती है :

''एक बार आओ इस पथ से मलय अनिल बन है चिर चंचल ।''[109]

उसकी अधिरता की अवधि जल्दी ही समाप्त हो जाती है । प्रकृति के प्रसन्न उपकरणों से उसे प्रिय के आने के संकेत मिलते हैं, उसकी संपूर्ण वेदना मिलनानंद में परिवर्तित हो जाती है :

''मुस्काता संकेत भरा नभ अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?

x x x

पुलको से भर फूल बन गये जितने प्राणों के छाले हैं ।''[110]

मिलनाकुल प्रियतमा प्रियमिलन का आभास पाकर तुरन्त ही सचेत हो जाती है । अपने सुख-दुःख से ऊपर उठकर दुःखी जग की चिंता करने लगती है -

''मेरे हँसते अधर नहीं जग की आँसू-लड़ियाँ देखो ।
मेरे गीले पलक छुओ मत मुर्झाई कलियाँ देखो ।''[111]

भाव-परिवर्तन होते ही वेदना-विकल वियोगिनी शलभ की शांति जलने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझती है -

''अलि ! मैंने जलने ही में जब जीवन की निधि पाली ।''[112]

'नीरज' में रहस्यमयी भावनाओं की अभिव्यक्ति रूपकों के माध्यम से सफलतम रूप में हुई है ।

''उजियाला जिसका दीपक में, तुझमें भी है वह चिनगारी,
अपनी ज्वाला देख, अन्य की ज्वाला पर इतनी ममता क्यों ?''[113]

इस प्रकार हम देखते है कि 'नीरजा' में प्रिय का आह्वान मिलन की आकांक्षा, प्रणय, विरह तथा समर्पण आदि अंतर्मुखी भावनाओं का प्राकृतिक उपकरणों में आरोपण करके कवयित्री ने अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा एवं ललित कल्पना का परिचय दिया है । महादेवी की रागात्मक तीव्रता उनकी कलात्मक शैली को पाकर निखर उठी है । उन्होंने 'नीरजा' के गीतों की लय को लोकगीतों का कोमल संस्पर्श देकर, प्राकृतिक पदार्थों को चेतना रूप देकर, रहस्यानुभूत्तियों का लौकिक रूप देकर तथा चिंतनप्रधान अनुभूतियों को सहज, सरस और सरल बनाकर उन्हें उत्कर्ष प्रदान किया है । इस संदर्भ में डॉ. विजयेन्द्र स्नातक की समीक्षा द्दष्टव्य है – ''गीति–काव्य की नूतन – शैली को द्दष्टि में रखकर यदि 'नीरजा' के छंद, लय, ध्वनि, ताल आदि पर विचार किया जाए तो निस्संदेह वह छायावादी युग की इस दिशा में अन्यतम श्रेष्ठ रचना है । 'नीरजा' में गीति–काव्य का पूर्ण विकास है, इसमें संदेह का अवकाश है ही नहीं ।''[114]

3.1.4 'सांध्यगीत' :

महादेवी के चतुर्थ काव्य–संग्रह 'सांध्यगीत' में 45 गीत संगृहित हैं । 1934 से 1936 ई. तक की अवधि में लिखें गीतों के संकलन का प्रकाशन 1936 ई. में हुआ । इस कृति में भी चिंतनप्रधान भावानुभूतियों की विशेष अवस्थिति है । महादेवी 'सांध्यगीत' की भूमिका में इसे स्पष्ट करती हुई कहती है – 'नीरजा' और 'सांध्यगीत' मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिसमें अनायास ही मेरा ह्दय सुख–दु:ख

में सामंजस्य का अनुभव करने लगा । पहले बाहर खिलने वाले फूल को देखकर मेरे रोम-रोम में ऐसा पुलक दौड़ जाता था मानों वह मेरे हृदय में एक अव्यक्त वेदना भी थी । फिर वह सुख-दुःख और अब अंत में न जाने कैसे मेरे मन में उस बाहर-भीतर में एक सामंजस्य सा ढूँढ़ लिया है, जिसने सुख-दुःख को इस प्रकार बुन दिया कि एक के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है ।[115] महादेवी के उक्त विचारों का सटीक उदाहरण 'सांध्य गीत' का यह पहला गीत है -

''प्रिय ! सांध्य गगन, मेरा जीवन ।...
साधों का आज सुनहलापन
घिरता विषाद का तिमिर सघन
सांध्य का नभ से मूक मिलन
यह अश्रुमयी हँसती चितवन ।''[116]

विहर-साधना में लीन कवयित्री जब वेदना की भाव-भूमि पर पहुँचती है तब उसकी आकुलता तन्मय राधा बन जाती है और उसका विरह (साधना) ही आराध्य (साध्य) बन जाता है ।

''आकुलता ही आज हो गई तन्मय राधा,
विरह बना आराध्य द्वैत क्या कैसी बाधा ।
खोना-पाना हुआ जीत वे हारें ही हैं ।''[117]

उस तादात्म्य की चरमावस्था में हार-जीत, खोना-पाना सब समरस हो जाते हैं ।

सुख-दु:ख, नाश-विकास, विरह-मिलन सभी सापेक्ष हैं और एक - दूसरे के पूरक हैं । निरंतर चिंतन-मनन करने वाली साधना-रत आत्मा की गरिमा इनमें कोई अंतर नहीं देखती -

"मैं सजग चिर साधना ले !...
विरह का युग आज दीखा मिलन के लधु पल सरीखा
दु:ख सुख में कौन तीखा मैं न जानी औ न सीखा
मधुर मुझको हो गए सब मधुर प्रिय की भावना ले ।"[118]

"सजनि ! अन्तहित हुआ है 'आज' में धुंधला विफल 'कल'
हो गया है मिलन एकाकार मेरे विरह में मिल;"[119]

सांध्यगीत में महादेवी स्वयं विरह-व्यथित होते हुए भी विश्व के करूण-क्रन्दन से तटस्थ नहीं रह पाती । संतप्त जन पर अपनी ममता बिखरा कर, उनके आँसुओं का क्षार लेकर उन्हें अपना स्नेह-रस देने में वे रंचमात्र भी संकुचित नहीं होती -

"आँसुओं का क्षार पी मैं बाँटती नित स्नेह का रस !
सुभग मैं उतनी मधुर हूँ, मधुर जितना प्रात ।"[120]

इस प्रकार हम देखते है कि 'सांध्यगीत' में जहाँ विरह-मिलन के घात-प्रतिघात हैं वही चिंतन और साधना की स्थिरता भी । बंधन और मुक्ति की कामना के साथ-साथ विश्व-वेदना में अपने सुख को लीन करने की भावना भी है । सांध्यगगन के विभिन्न रंगों के समान 'सांध्यगीत' के विभिन्न भाव भी राग-रंजित होकर जीवन को रंग देते है ।

3.1.5 'दीपशिखा' :

'दीपशिखा' कवयित्री के मन का प्रतीक हैं, जो निरंतर जलती हुई जग के कण-कण को आलोकित करते रहने की कामना से युक्त हैं । 'दीपशीखा' का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण घटना है । सन् 1942 ई. में प्रकाशित इस कृति में सन् 1936 से 1942 ई. तक लिखित 51 गीत संकलित है । प्रथम संस्करण में प्रत्येक गीत महादेवी की हस्तलिपि में मुद्रित है और साथ ही प्रत्येक गीत का एक अर्थवाही चित्र भी अंकित हैं । इस महत्वपूर्ण कृति से कवयित्री का चित्रकार - रूप भी प्रत्यक्ष हो गया ।

'दीपशिखा' के गीतों में तीन विशेषताएँ स्पष्ट लक्षित होती हैं - अज्ञात प्रिय का संकेत, अतृप्ति एवं विश्व के प्रति स्निग्ध करूण भाव ।

प्रियतम अज्ञात और अलौकिक है, इसलिए उसके प्रति व्यक्त प्रणयानुभूति में रहस्यात्मकता स्वाभाविक है । प्रिय का परिचय केवल उसकी सुधि है जो प्राणों में बसी है, उसका कोई निश्चित रूप नहीं, कोई निश्चित प्रदेश नहीं, फिर उसकी खोज हो भी तो कैसे -

> ''अलि कहाँ संदेश भेजूँ ? मैं किसे सन्देश भेजूँ ?
> एक सुधि अनजान उनकी, दूसरी पहचान मन की,
> पुलक का उपहार दूँ या अश्रुभारत अशेष भेजूँ ?[121]....

अनिश्चय की स्थिति में विरहिणी अपना मोम-सा तन गलाती तथा दीप-सा मन जलाती रहती हैं । अंत में, उस 'धनसार' बनकर उड़

जानेवाले प्रिय के समीप पहुँचने का एक ही साधन पाती है और वह होता है उसका 'निश्वास-दूत' -

"मोम-सा तन धुल चुका अब दीप-सा मन जल चुका है ।
विरह के रंगीन क्षण ले, अश्रु के कुछ शेष कण ले
बरूनिये में उलझ बिखरे स्वप्न के सुखे सुमन ले,
खोजने फिर शिथिल पग निश्वास दूत निकल चुका है ।"[122]

विरह की पराकाष्ठा मिलन की अनुभूति में परिवर्तित हो जाती है । वियोगिनी के वियोग का कल्प निमिष - सा बीत जाता है । जब साधना निर्वाण बन जाती है, कंटक वरदान बन जाते हैं तब कण-कण का स्पर्श ही उस प्रियतम से मिलन का आभास देने लगता है -

"निमिष से मेरे विरह के कल्प बीते ।
पंथ को निर्वाण माना, शूल को वरदान जाना,
जानते यह चरण कण-कण छू मिलन - उत्सव मनाना !
प्यास ही से भर लिए अभिसार रीते ओस से ढुल कल्प बीते ।"[123]

कवयित्री जब आर्तमन का क्रंदन सुनती है तब उसे अपने सुख-दुःख का स्मरण नहीं रहता । तब उसका हर संभव प्रयत्न यही होता है कि किसी प्रकार वह दुःख के अंधकार में घिरे प्राणियों का कष्ट निवारण करे । इसके लिए वह अपने मन को दीपक को निरंतन जलते रहने का संदेश देती है । ताकि उसके प्रकाश में लधुतम प्राणी भी अपने लक्ष्य तक पहुँच जाएँ ।

''दीप मेरे जल अंकपित घुल अचंचल ।...
पथ न भूल, एक पग भी घर न खोये लघु विहग भी
स्निग्ध लौ की तूलिका से आँक सबकी छाँह उज्वल ।''[124]

दु:खी और संतप्त–जन की व्यथा देख वह करूणा–विगलित होकर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए तत्पर हो जाती है –

''मेघ सी घिर झर चली मैं ।
फूल की रंगीन स्मित में अश्रुकण से बाँध बेला,
बाँट अगणित अंकुरों में धुलि का सपना अकेला
पंथ के हर शूल का मुख मोतियों से भर चली मैं ।''[125]

अपना कर्तव्य – कर्म करने से उसे कोई नहीं रोक सकता । मार्ग की अगणित बाधाओं को वह अपने प्राणों के संकल्प से चुर–चूर कर देने का सामर्थ्य रखती हैं –

''पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला ।
घेर ले छाया अमा बन
आज कज्जल अश्रुओं से रिमझिमा ले यह घिरा धन;
और होंगे नयन सूखे तिल बुझ औ पलक रूखे,
आर्द्र चितवन में यहाँ शतविद्युतों में दीप खेला !
अन्य होंगे चरण हारें,
और हैं जो लौटते दे शूल को संकल्प सारे ।''[126]

महादेवी की अनुपम कृति 'दीपशिखा' एक प्रणय-काव्य है जिसमें अज्ञात प्रियतम के प्रति आत्मनिवेदन की प्रधानता है । साथ ही 'दीपशिखा' की अनुभूति में एक तो रज के प्रति ममत्व और दूसरे विश्वासमय अबंधगति ये दो नवीन तत्व मिलते हैं । जिनके लिए हमारे - युग - जीवन की प्रवृतियाँ उत्तरदायी हैं ।

3.1.6 'हिमालय' :

सप्तपर्णा के पश्चात् सन् 1963 में यह संकलन प्रकाशित हुआ । इसमें महादेवी जी का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं, यह सामयिक संकलन के रूप में प्राप्त कृति है, जिसमें प्राचीनकाल से आजतक हिमालय पर लिखी गई महत्वपूर्ण कविताओं को एक साथ संकलित किया गया है । संकलित कृति होते हुए भी यह अपने आप में एक बहुत बड़ी राष्ट्रीय उपलब्धि है । इस कृति में चीनी आक्रमण के समय की परिस्थितियों एवं भारतीयों को जागृत करने के हेतु लिखित अनेक कवियों की रचनाओं का संकलन किया गया है । हिमालय का समर्पण भी अत्यंत भाववाही है । ''जिन्होंने अपनी मुक्ति की खोज में नहीं, वरन् भारत भूमि को मुक्त रखने के लिए नहीं, वरन् भारत की जीवन उषा को सुरक्षित रखने के लिए हिमालय बन गये हैं, उन्हीं भारतीय वीरों की पुण्य स्मृति में''[127] कवयित्री ने अपनी भावनाओं को समेटकर इस संकलन को उनके चरणों में समर्पित कर दिया है ।

'हिमालय' में कवयित्री अपने मनोभावों और इच्छाओं को तो सहज रूप में प्रकट करती ही है । साथ ही उन्होंने भारतीय मानस के

प्रशान्त क्षणों की रंगभूमि की ओर भी संकेत किये है । यह कृति एक पूजा की थाली के समान है, जिसमें अनेक पूजार्थियों के विविध काव्य संकलित हैं । 'हिमालय' की कथा संसार में अनोखी है । किसी भी पर्वत की कथा इतनी रहस्यमयी नहीं, जितनी हिमालय की है । उसकी हर चोटी, हर घाटी हमारे धर्म, दर्शन, काव्य से हीं नहीं हमारे जीवन के संपूर्ण निःश्रेयस से जुड़ी हुई है ।

''ए हिमाला ! ए फसीले – किश्वरे – हिन्दोस्ताँ !
चूमता है तेरी पेशानी को झुक कर आसमाँ
तू जवाँ है गर्दिशो – शामों शहर के दमियाँ !
एक जलवा था कली में – तूरे – सीना के लिए !
तू तजल्ली है सशपा चश्में–बीना के लिए !''[128]

हाँ, दिखा दे, ऐ तसौवर, फिर वो सुबहो–शाम तू !
दौड़ पीछे की तरह, ऐ गर्दिशे–ऐप्याम, तू !''[129]

महादेवीजी 'हिमालय' को भारतीय – संस्कृति के हर चरण का साक्षी मानती हैं । उसमें भारतीय जीवन की उजली छाया के दर्शन करती हैं । राष्ट्रीय प्रेम की भावना से सभर यह कृति अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है, जिसमें अकेली कवयित्री का जीवन स्पष्ट नहीं होता वरन् संपूर्ण सृष्टि की मानवीयता दृष्टिगोचर होती है । वेद, पुराण, आदि से लेकर आज तक की कथा हिमालय के प्रतीक द्वारा अभिव्यक्त होती हैं ।

3.1.7 'सप्तपर्णा' :

'सप्तपर्णा' महादेवी द्वारा अनुदित काव्य कृति है इसका प्रकाशन सन्–1966 से हुआ । इसमें वेद, वाल्मीकि, थेर गाथा, अश्वधोष, कालिदास, भवभूति तथा जयदेव की उदात्त एवं मार्मिक उक्तियों का प्रतिभासंपन्न कवयित्री ने अत्यंत सरस रूपांतर किया है ।

वैदिक ऋषियों की महती चेतना प्रकृति के विराट, भव्य और सुन्दर रूप को देखकर केवल चमत्कृत ही नहीं होती थी, उनसे रागात्मक संबंध भी स्थापित कर लेती थी ।

महादेवी जीवन के प्रारंभ से ही प्रकाश के प्रति आकर्षित रही । वेदों के प्रति उनकी आस्था भी शैशव से ही थी । उषा, ज्योतिष्मती, जागरण, अग्निगान आदि गीतों में उनका प्रकाशविषयक प्रेम उज्ज्वल रूप में प्रकट हुआ है ।

वाल्मीकि क्रौंच वध को देखकर आहत हो गये थे और उन्होंने एक अभिशाप दिया था, उस प्रसंग को महादेवीने अपनी कला–कुशलता से हृदय–द्रावक बना दिया –

कौंच के इस मुग्ध जोड़े से किया हत एक
तू न पायेगा प्रतिष्ठा व्याध वर्ष अनेक ।
पाद बद्ध, समान अक्षर तंत्र ज्ञेय समर्थ,
श्लोक यह शोकार्त उर का हो न सकता व्यर्थ
पूत आत्मा गुरू एक संकल्प में सन्यस्त,
श्लोक छंदायित करूँगा रामचरित समस्त ।''[130]

'थेरगाथा' और 'अश्वधोष' कालिदास, भवभूति तथा जयदेवी की कुछ प्रमुख रचनाओं के अंशो का सरल शैली में अनुवाद अत्यंत उत्तम है ।

प्रत्येक कवि की अपनी भावानुभूति होती है । स्वानुभूतियों की अभिव्यंजना कवि के लिए सरल है; किन्तु उन्हीं भावावेगों का अनुवाद दूसरे कवि के लिए कठिन हो जाता है । सुधी कवियत्री महादेवी ने उस दुष्कर कार्य को भी संपन्न करने में अपूर्व सफलता प्राप्त की है ।

रचनाओं में व्यक्त भावानुभूतियों की गहराई तक पहुँचने के लिए पहले उनसे तादात्म्य स्थापित करना आवश्यक है । संवेदनशील कवि ही ऐसा सत्प्रयास कर सकता है । महादेवीने अनुवाद की कठिनाइयों की चर्चा करते हुए कहा है – ''स्वाध्याय से अधिक प्रयास–साध्य होने पर भी अनुवाद अंततः अपूर्णता की अनुभूति ही देता है । इसका कारण स्पष्ट है । भाषा विचारों और मनोभावों का परिधान है और इस दृष्टि से एक विचारक या कवि की उपलब्धियाँ जिस भाषा में व्यक्त हुई हैं उससे उन्हें दूसरी वेषभूषा में लाना, असंभव नही तो दुष्कर अवश्य रहता है । ... इसके अतिरिक्त युग विशेष के कृति स्रष्टा की अनुभूतियाँ करने में असमर्थ रहता है, तब युगान्तर के किसी की अनुभूतियों की आवृत्ति के संबंध में कुछ कहना व्यर्थ है । परन्तु अनुवादक के लिए ऐसी तादात्म्यमूलक आवृति आवश्यक ही रहेगी जिसमें वह देश–काल के व्यवधान पार करके किसी कवि की अनुभूति को नवीन वाणी दे सके ।''[131]

3.1.8 प्रथम आयाम :

सन् 1982 में प्रकाशित इस नवीन कृति में महादेवी के जीवन की प्रारंभिक रचनाएँ संकलित हैं । शीर्षक से ही स्पष्ट है कि यह उनकी साहित्यिक यात्रा का प्रथम आयाम है । जीवन के तुतले उपक्रम में उत्साह ही उत्साह झलकता है । छः वर्ष की अवस्था में की गयी तुकबंदियों में आस्था उत्साह के साथ-साथ कुछ कर दिखाने की दृढ़ता भी प्रीतबिंबित है । 62 गीतों के इस संग्रह में अधिकांश गीत प्रकृति से संबंधित है । तुतले उपक्रम प्रथम आयाम और समस्या पूतियौँ में तारे, बादल, हवा, पानी, सागर, धुलिकण, बारहमासा, षड्ऋतु, विहान, गिरिराज, विराट ईश से लेकर हाथी, हिरण, पपिहा, कोयल, तितली और भँवरा सभी का समावेश है । देशगीत, ध्वजगीत, क्रान्तिकारी आदि उद्बोधन - परक गीतों में कवयित्री की देशभक्ति का स्वर मुखरित हैं । 'तुतले उपक्रम' में यद्यपि वर्णनात्मकता है, तथापि अवस्था की तुलना में यह प्रयास स्तुत्य है । कवयित्री की मानस-भूमि में काव्य का बीज अंकुरित हो गया था । किशोरावस्था तक आते-आते समस्या पूर्तियौँ एवं स्वतन्त्र अभिव्यक्तियों में भाव-गांभीर्य आता गया और भाषा भी प्रांजल होती गयी । ब्रजभाषा से काव्य-रचना आरंभ कर के फिर खड़ीबोली के प्रभाव उसी में काव्य सृजन करके महादेवी ने खड़बोली को समृद्ध किया है । पीड़ा, आँसू, करूणा, संवेदना आदि भावों से बाल्यावस्था में ही परिचित होकर वे काव्य में भी उनकी अभिव्यक्ति करने लगी थीं -

''आँसुन सो अभिषेक कियो, पुतरी में निराजन ज्योति जराई...
पीर की मूरत ही हमने, अब तो मन मंदिर में ठहराई ।''[132]

''फूलन में छिपी आई हँसी करूणा हू के रंग छिपाये हैं बादर,''[133]

अज्ञात, अदृश्य ब्रह्म के प्रति कवयित्री की आस्था जाग चुकी थी; तभी फूलों में उसके सुवास को, तारों में उसके पद-चिहन् को, मंद-बयार में उसके पग-चाप को और अपने हृदय की स्पंदन में जैसे उस प्रिय को पहचान कर उसे अपनी हँसी के प्रसून समर्पित करती रही ।[134] अपनी दृष्टि से आरती उतारती, अपनी गति में उसकी परिक्रमा करती हुई मन ही मन उसे प्रणाम करती रही । किशोर कवयित्री दानी और मानिनी बनी रही, याचिका कभी नहीं बन पायी ।[135]

छः वर्ष की अबोध अवस्था से लेकर सोलह-सत्रह वर्ष की किशोरावस्था तक की रचनाओं में भी प्राजंलता है । महादेवी का दार्शनिक चिंतन आरंभ हो चुका था, तभी वे जीवन-मृत्यु, जगत, ब्रह्म-जीव आदि की भी चर्चा करने लगी थी । उन्होंने धरती, दिशाएँ, सागर, सूर्य आदि के रूपक से सबका स्वागत करने के लिए अनवरत जलने वाला मंगलदीप जलाया है -

''भूमि को मृतिका पात्र रच्यो, अरू चार दिशान की बाती बनाई,
सागर सांत को तेल भरो, अरू सूर्य की दीपशिखा है जराई,
ज्योति अखंड जरै निशिबासर, मृत्यु की आँधी सकै न बुझाई,
चौमुख दिवला जरै यहि हाटमें, मंगलमय सब की अगुआई ।''[136]

महादेवी के 'प्रथम आयाम' की समस्यापूर्तियों में भी विचारशीलता और भाव-गंभीरता झलकती है । अन्य कविताओं में भी अनुभूतियों को छंदमय अभिव्यक्ति देने का सुंदर प्रयास है । ब्रजभाषा और खड़ीबोली में सवैया छंद का प्रयोग महादेवी की अभिरूचि का परिचय देता है ।

3.1.10 'अग्निरेखा' :

'अग्निरेखा' में महादेवी की कुछ विशेष काव्य-कृत्तियाँ संकलित है, जिसका प्रकाशन 1990 में हुआ । इस संग्रह में कुल 30 कृत्तियाँ हैं । इसके कुछ काव्यों में वेदना, दुःख, आँसू, अंधकार जैसे शब्दों से महादेवी अपने जीवन के कुछ अंशों को प्रकाशित करती हैं ।

''नीला सहस्रदल - अंधकार
खिल घेर रहा दिशि-चक्रवाल''[137]

आंतरिक और बाह्यजीवन को उजागर करती हुई महादेवी कहती हैं -

''छिन्न जीवन-पृष्ठ जिन पर
अनलिखी दुःख की कथाएँ
और बिखरे पृष्ठ जिन पर,
बोलती सुख की प्रथाएँ''[138]

प्रस्तुत संग्रह की विशेषता यह है कि इस में पूज्य बापू को श्रद्धाजलि, कवीन्द्र रवींद्र के महाप्रस्थान पर, बंगला के अकाल पर, दीपक पर

पहली कविता (सन् 1916 में), जैसी कविताएँ भी समाविष्ट है ।

बापू को श्रद्धांजली देते हुए वह लिखती है –

"पा तुझे यह स्वर्ग की धात्री प्रसन्न प्रकाम ।
मानव–वर ! असंख्य प्रणाम !"[139]

कवीन्द्र रवींद्र के महाप्रस्थान पर महादेवी अपने अश्रु सिंचित कहती है –

"स्वस्ति लय जो बन चुकी है आज उर–कंपन हमारी !
स्वस्ति यह सुधि पा जिसे हमने विरह का भार झेला !
यह तुम्हारे हास से रंजित बिदा–वेला !
यह हमारे अश्र से सिंचित विदा वेला !
अमर वेला !

बंगाल में हुए अकाल पर उनका हृदय द्रवित हुआ और उसने लिखा है –

"अर्ध्य आज कपाल देते शून्य कोटर प्यालियों से ।
मृत्यु क्रंदन गीत गाती हिचकियों की मूच्छना ले ।"[141]

3.2 गद्य–साहित्य :

महादेवी की प्रमुख गद्य रचनाएँ 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', 'श्रृंखला की कड़ियाँ', 'क्षणदा', 'संकल्पिता', 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध', 'मेरा–परिवार' आदि श्रेष्ठ संकलित है ।

कुछ एक स्वतंत्र निबन्ध भी है इनमें से कतिपय रचनाएँ ऐसी हैं जो जीवन के विविध यथार्थ का बोध कराती हुई पाठक के साथ जुड़ जाती हैं, तो कुछ विचारपरक निबन्ध भी हैं, जहाँ भाषा, साहित्य, सामाजिक, राष्ट्रीय शिक्षित जीवन की विविध समस्याओं का गद्य के सहज एवं व्यावहारिक रूप का विवेचन किया गया है । साथ ही समाविष्ट है भारतीय नारी के विविध रूपों का आलंबन भी । 1923 में एक नाटक की भी रचना की जिसमें फूल, भ्रमर, तितली, वायु आदि को पात्र रूप में प्रस्तुत किया गया था । यह भी अप्रकाशित ही रहा ।

महादेवी के गद्य-साहित्य की संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार है -

3.2.1 'अतीत के चलचित्र' :

महादेवी के प्रथम संग्रह की यही रचना है । जिसमें समय-समय पर लिये गये ग्यारह रेखाचित्रों का सुन्दर आल्बम प्रस्तुत है । इस रचना के रेखाचित्रों का क्रम - रामा, विधवा भाभी, बिन्दा, सबिया, बिट्टो, अवैध सन्तान, घीसा, अभागी-स्त्री, अलोपी, बदलू, लछमा के नाम से है ।

रामा विमाता के दुर्व्यवहार, ममता के अधिकार, सहानुभूति एवं अंतर्मन के सौन्दर्य का सजीव उपहार है । 19 वर्षीय विधवा नारी भाभी से सम्बधित है । संयम परिश्रम की कर्मठता, मानसिक वेदना, क्रन्दन आदि दूसरे रेखाचित्र में उभरे है । माँ की ममता की याचिका, विमाता द्वारा उत्पीड़न आदि का चित्रांकन तीसरे रेखाचित्र बिन्दा में है । भंगिन

नारी सबिया का चौथा रेखाचित्र है । इस कर्मठ नारी में चौथे रेखाचित्र में भंगिननारी सबीया में आश्रयहीनता, द्रढ़ता, स्वावलंबन की भावना और निर्मोही पति के प्रति समर्पित भाव है । पाँचवा रेखाचित्र 'बिट्टो' में मातृपितृ हीन, वृद्ध के साथ विवाह, भाग्य हीनता के कारण पति की मृत्यु, पितृगृह की शरण, दोषारोपण एवं चुभते ताने, इसके बाद 58 वर्षीय वृद्ध की तीसरी नवोढा बनी । ऐसी विवश नारी की करूणा चित्रित है । सातवाँ रेखाचित्र 'घिसा' में घिसा की गुरू भक्ति एवं नारी ही नारी का शोषण करती है आदि का चित्रण है । आठवाँ रेखाचित्र 'अभागी स्त्री' का व्यंग्यपरक है । ससुर की क्रुरता, गृहत्याग, विधवा - श्रम से शरण आदि इस चित्र की रेखाएँ हैं । इसके बाद का रेखाचित्र अंधे, विकलांग युवक अलोपी का है । बदलू - रधिया दसवें रेखाचित्र 'लछमा' का है । इसमें दुदैव की क्रुरता, अनमेल विवाह, पारिवारिक कटुता आँसूओं से भीगी उनकी कारूणिक कथा है ।

3.2.2. 'श्रृंखला की कडियाँ' :

प्रस्तुत निबन्ध संग्रह में लेखिकाने नारी विषयक विचारों को व्यक्त किये है । शीर्षक के नीचे एक उप-शीर्षक देकर लेखिकाने स्पष्टीकरण के रूप में कहा है कि इस पुस्तिका में भारतीय नारी की समस्याओं का विवेचन किया गया है । इसमें हमारी श्रृंखला की कडियाँ, युद्ध और नारी, नारीत्व का अभिशाप, आधुनिक नारी-उसकी स्थिति पर एक द्दष्टि, घर और बाहर, हिन्दु स्त्री का पत्नीत्व, जीवन का व्यवसाय, स्त्री के अर्थ स्वातंत्र्यका प्रश्न, हमारी समस्याएँ, समाज और व्यक्ति, जीने की कला आदि निबन्ध संकलित है ।

3.2.3 'स्मृति की रेखाएँ' :

सात रेखाचित्रों का संग्रह 'स्मृति की रेखाएँ' पात्र शीर्षक की अपेक्षा अध्यायों में विभाजित एक अन्य कलात्मक एवं प्रौढ कृति है । पहला रेखाचित्र 'भक्तिन' एक देहाती वृद्ध महिला का है । दूसरे रेखाचित्र में चीनी फेरीवाला, जो अपनी खोई हुई बहिन की तलाश करने के लिए कपड़ें की फेरी लगाता फिरता है । तीसरा रेखाचित्र जंगिया - धनिया नामक दो पहाड़ी मजदूर भाइयों का है । चौथा रेखाचित्र मून्नू की माई का है । इसके बाद क्रमशः ठकुरी बाबा, धोविन बिबिया और जुंगिया का है ।

3.2.4 'पथ के साथी' :

'पथ के साथी' रेखाचित्रों की तीसरी रचना हैं । 'पथ के साथी' एक ऐसी रेखाचित्र रचना है जिसमें महादेवी ने कतिपय साहित्यकारों के जीवन के युगीन कसौटी के आधार पर अंकित करने का प्रयास किया है । 'प्रणाम', 'पथ के साथी' का पहला रेखाचित्र है । कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति लेखिका की श्रद्धांजली अर्पित की गई है । इसके बाद मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराली', जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सियारामशरण गुप्त आदि के रेखाचित्र अंकित किये गये हैं ।

3.2.5 'क्षणदा' :

यह संग्रह महादेवी की गद्य-कृतियों से भिन्न हैं । इसमें अनेक आलोचनात्मक निबन्धों का संग्रह है । महादेवी इन निबन्धों के विषय

में कहती है – '' 'क्षणदा' में मेरे कुछ चिन्तन के क्षण एकत्र है । इनमें न तर्क की प्रक्रिया है और न किसी जटिल समस्या को सुलझाने के निमित प्रस्तुत समाधान ।''[142] इस संग्रह में कुल बारह निबन्ध है – करूणा का संदेशवाहक, संस्कृति का प्रश्न, कसोटी पर, स्वर्ग का एक कोना, कला और हमारा चित्रमय साहित्य, कुछ विचार, दोष किसका, सुई दो गूनी, अभिनय कला, हमारा देश और राष्ट्रभाषा, साहित्य और साहित्यकार । ये निबन्ध समाज, संस्कृति, कला, दर्शन तथा साहित्य से सम्बन्धित है । इन निबन्धों के माध्यम से महादेवीने गौरवमय अतीत के पृष्ठों को पलट वर्तमान काल में उस संस्कृति की पतनोन्मुख दशा का भी चित्रण किया है । विषयों की चर्चा में महादेवी ने अपने विचारों एवं भावना का सामंजस्य किया है । नाम के विपरीत क्षणदा का महत्व सर्वकालिक और शाश्वत है ।

3.2.6 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध' :

इसमें संग्रहित आठ निबन्धों के चयन का कार्य श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय ने किया है । प्रारंभ में श्री पाण्डेय ने विज्ञप्ति लिखी है । इसके अतिरिक्त सात निबन्ध है : साहित्यकार की आस्था, काव्य-कला, छायावाद, रहस्यवाद, गीति-काव्य, यथार्थ और आदर्श, सामयिक समस्या । इन सात निबन्धों में 'साहित्यकार की आस्था' शीर्षक निबन्ध को छोड़कर अन्य सभी निबन्ध इसके पूर्व ही 'महादेवी का विवेचनात्मक गद्य' में प्रकाशित हो चुके है । इन निबन्धों में महादेवी के समन्वयवादी आलोचक रूप की अभिव्यक्ति हुई है ।

3.2.7 'संकल्पिता' :

इस कृतिमें अठारह निबन्ध है : 'भाषा का प्रश्न', 'मानव विकास परम्परा के संदर्भ में', 'संस्कृति और प्रकृतिक परिवेश', भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि, प्राकृतिक परिवेश और राष्ट्रीयता, भारतीय वाङ्मय पर एक दृष्टि (1 से 7 तक) चिन्तन के क्षण साहित्यकार और समाज, साहित्यकार व्यक्तित्व और समष्टि, साहित्यकार व्यक्तित्व और अभिव्यक्ति, हिन्दी रंगमंच हिन्दी पत्र जगत के दृष्टि । संकल्पित के सारे निबन्ध महादेवी के गहन चिन्तन – मनन के परिणाम है ।

3.2.8 'मेरा परिवार' :

इस संस्मरण संग्रह में पशु पक्षियों से सम्बन्धित सात संस्मरण हैं । नलकण्ठ, जिल्लू, सोना दुर्मुख, मोरा, नीलू, निक्की, रोजी और रानी ये सभी पशु–पक्षी मिलकर महादेवी के परिवार का निर्माण करते है ।' स्मृति–यात्रा में पशु–पक्षी ही मेरे प्रथम संगी रहे है ।[143] महादेवी की सबसे बड़ी विशेषता इस संस्मरण संग्रह में यह है कि उन्हों ने पशु–पक्षियों की साधारण क्रियाओं का साहित्यिक रूप प्रदान किया है । उनकी सूक्ष्म संवेदना ने उन पशु, पक्षियों के जीवन की अनुभूति ली है । इसमें महादेवी की अप्रतिम प्रतिभा आभास हो उठी है ।

3.2.9 चिंतन के क्षण :

सन् 1986 में यह गद्य रचना प्रकाशित हुई । जिस में महादेवी की चिंतनात्मकता प्रदर्शित होती है । इसमें महादेवी के विभिन्न लेख विविध विषयों पर लिखे गये है ।

3.3 संकलन :

3.3.1 पद्य कृतियाँ :

3.3.1.1 यामा :

महादेवी की प्रथम चार रचनाएँ – 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' तथा 'सांध्य गीत', 'यामा' में संकलित हैं । सर्व प्रथम इसका प्रकाशन 1936 ई. में हुआ । इसमें कुल 185 गीत संग्रहित है । महादेवी की रचनाओं के कालक्रम में तथा उनके नामकरण में एक कलात्मक सूझ और दार्शनिक भाव की अभिव्यंजना मिलती हैं । 'यामा' की भूमिका में वे लिखती है – ''यामा में मेरे अंतर्जगत् के चार यामों का छायाचित्र हैं । ये याम दिन के है या रात के यह कहना मेरे लिए असंभव्य नहीं तो कठिन अवश्य है । यदि वे दिन के हैं तो इन्होंने मेरे हृदय को श्रम से क्लांत बनाकर विश्राम के लिए आकुल नहीं बनाया और यदि रात के हैं तो इन्होंने अंधकार में मेरे विश्वास को खोने नहीं दिया, अतएव मेरे निकट इनका मूल्य समान है और समान ही रहेगा ।''[144]

कुत्तियों के नामकरण से यह निश्चित निष्कर्ष है कि ये चारों याम दिन के ही हैं । 'नीहार' दिन के पूर्वभाव में दिखाई देता हैं । उसके पश्चात् सूर्य के रश्मि-प्रकाश से विश्व प्रकाशित हो जाता है और नीरजा प्रसन्न हो प्रस्फूटित हो जाती है । दिन और रात्रि की संगम-बेला को संध्या कहते हैं । सांध्य बेला अपने विभिन्न रंगों से रंजित होकर

रात्रि अंधकार में विलीन हो जाती है तब दीपशिखा का जल उठना अनिवार्य हो जाता है । इससे यह स्पष्ट है कि 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' तथा 'सांध्यगीत' के पश्चात और 'दीपशिखा' से पूर्व प्रकाशित 'यामा' दिन के चारो यामों का प्रतीक हैं ।

3.3.1.2 अन्य पद्य कृतियाँ :

'यामा' के अतिरिक्त सन् 1964 में 'संधिनी' सन् 1970 में 'गीतपर्व', सन् 1974 में 'परिक्रमा', सन् 1975 में 'संभाषण', सन् 1983 में 'आत्मिका' सन् 1983 में 'नीलाम्बरा' और अंत में 'दीपगीत' कविता संग्रह प्रकाशित हुए ।

जिसमें महादेवी के पूर्व रचित एवं प्रकाशित काव्यों को समाविष्ट किया गया है । प्रकृति, रहस्य, अलौकिक प्रिय, मानवतावाद, दुःख, पीड़ा, विरह, मिलनाकांक्षा आदि को लिया गया है । 'दीपगीतों' को भी अलग से स्थान मिला ।

महादेवी के संग्रहित काव्यों में भी महादेवी को साहित्य सिद्धि प्राप्त हुई है । क्योंकि छायावादी कवि की पूर्व रचित एवं प्रकाशित कृतियाँ फिर से संग्रहित करके प्रकाशित हुई ऐसा मौका सिर्फ महादेवी को ही प्राप्त हुआ है ।

3.3.2 गद्य कृतियाँ :

3.3.2.1 स्मृति चित्र :

'स्मृति चित्र' का प्रकाशन सन् 1966 में हुआ । महादेवी के जीवन के साथ जिसका संबंध है एसे प्रसंगों को इस कृति में समाविष्ट किया गया है । जो उनके जीवन के कुछ अंशों एवं भावों को उजागर करता है ।

3.3.2.2 महादेवी साहित्य : (भाग – 1, 2, 3)

'महादेवी साहित्य भाग–1' प्रकाशन सन् 1969 में हुआ । जिस में महादेवी रचित समग्र कविताएँ संग्रहित है ।

'महादेवी साहित्य भाग–2' का प्रकाशन सन् 1970 में हुआ । इसमें महादेवी की गद्य रचनाएँ संग्रहित की गई है ।

'महादेवी साहित्य भाग–3' सन् 1970 में प्रकाशित किया गया । इस में कुछ लेख, निबंध आदि गद्य रचनाओं को संग्रह किया है ।

3.3.2.3 मेरे प्रिय निबंध :

सन् 1981 में 'मेरे प्रिय निबंध' प्रकाशित हुआ । महादेवी के विभिन्न निबंधों का संग्रह इस रचना में हुआ है । निबंध उनकी बहिर्मुखी समाज सापेक्ष दृष्टि के घोतक हैं । समाज की उन जटिल परिस्थितियों को निबंधों में स्थान मिला है । 'मेरे प्रिय निबंध' में 'क्षणदा', 'श्रृंखला की कडियाँ' तथा 'साहित्यकार की आस्था और अन्य निबंध' में से संग्रहित किये गये हैं ।

4. अंतर संबंध :

प्रत्येक काव्यकार की कृति का मूलोद्‌गम उसका भावुक हृदय होता है । कवि के अंतस् में प्रछ्न्न भावनाएँ ही उसकी गहराई को आपूरित कर और उसके बंधनों को अपने वेग से कूलेकषा की तरह विच्छिन्न कर जब बाहर फूटना चाहती है तभी काव्य का सृजन होता है । इतना होते हुए भी काव्य की चिनगारियों को प्रज्वलित होने के लिए अन्य उपकरण रूपी इँधन की भी आवश्यकता होती है, जिसका संचयन कवि समाज मे, अपने बाह्य जगत् से साहित्य के अध्ययन से करता है । आदि कवि की करूण काव्यधारा की अभिव्यक्ति के लिए निषाद के तीक्ष्ण तीराघात से क्रोंचवध, प्रकृति के बीच बाह्य व्यापार ही था । महादेवी के जीवन पर अपने समसामयिक समाज, परिवार, वैयक्तिक जीवन की विषमता ओर दार्शनिक अध्ययन और चिन्तन का प्रभाव पड़ा है ।

4.1 मुक्तक गीत और प्रभाव :

मानव जीवन में सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था जब अपना प्रबलतम रूप ले लेती है तब उसकी सहज अभिव्यक्ति गीत के रूप में ही होती है । गीत के मूल में महादेवी की आत्माभिव्यक्ति की सहज प्रवृति है जैसे कि उन्होंने कहा है - "मेरे गीत मेरा आत्म निवेदन मात्र है ।"[145] नारी हृदय कोमलतम भावनाओं का अतुल आगार है, और गीत कोमलतम भावनाओं की अभिव्यक्ति का उपयुक्त माध्यम, अतः

महादेवी की सुकुमार भावनाओं की अभिव्यक्ति भी मुक्तक गीतों में हुई । इनके गीत भावों की मृदुलता के सुन्दर प्रमाण हैं ।

महादेवी की शिक्षा और संस्कार के साथ पैत्रिक गुणों का भी गीतों के प्रति रागोद्रेक पर पर्याप्त प्रभाव है । नीरजा की भेंट में उन्होंने कहा है । "जिनके मधुर कंठ से निकले हुए मीरा के पद प्रभाती और लोरी के समान बचपन में मुझे जगाते सुलाते रहे हैं, उन्हीं जनती को गीतों की एक अकिंचन भेंट"[146] बचपन में उन्होंने संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी । अतः गीत से उन्हें बचपन से ही प्रेम था ।

महादेवी के समकालीन कवि पंत, प्रसाद और निराला के गीतों के माध्यम से ही उनके कवि रूप का परिचय मिला । महादेवी जी के गीतों में मानवता के प्रति सहानुभूति, भाव प्रवणता, कल्पना, मार्मिकता, लाक्षणिकता, चिंतन और सांकेतिकता आदि विशेषताएँ समाविष्ट हैं । महादेवी जी का गीति - सौन्दर्य और उनकी कांत कलात्मकता इन गीतों में पूर्णतः अभिव्यक्त हुई है -

"मत अरूण घूंघट खोल री,
वृन्त बिन नभ में खिले जो,
अश्रु बरसाते हंसे जो,
तारकों के वे सुमन,
मत चयन कर अनमोल ही ।"[147]

कहीं कहीं पर महादेवी ने अपने गीतों में लोकगीतों को भी साहित्यिकता प्रदान कर उनमें चार चाँद लगा दिये हैं ।

''मुखर पिक हौले हौले बोल ।
हठीले हौले हौले बोल ॥''[148]

4.2 वेदनाभाव और प्रभाव :

जिस प्रकार वर्तमान गीत–कवियों में महादेवीजी का स्थान सर्वोच्च है उसी प्रकार उनके गीतों में वेदनाभाव की सर्वोच्च स्थिति है । करूणा और वेदना से उसका अधिक अंतरंग संबंध है । महादेवीजी सम्भवतः या तो अपना दिल बहलाने के लिए या वेदना के व्यापक प्रभाव को प्रकट करने के लिए ही अपने काव्य में वेदना को स्थान देती हैं । वेदना के व्यापक प्रभाव का स्वरूप इस प्रकार देखा जा सकता है ।

''दुख के पद छू बहते झर झर
कण कण से आँसू के निर्झर
हो उठता जीवन मृदु उर्वर
लधु मानस में वह असीम जग को आमंत्रित कर लाता ।''[149]

समाज के विषय एवं नैराश्यपूर्ण जीवन के प्रभाव ने बौद्ध दर्शन के प्रभाव ने और वैदिक दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रभाव ने भी वेदना को काव्य में अनिवार्यता प्रदान की है । महादेवीजीने स्वतः कहा है ''बचपन से भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्ति या अनुराग होने के कारण उनकी संसार को दुःखात्मक समझी जाने वाली फिलासफी से मेरा असमय में

ही परिचय हो गया था ।''[150] अतः बुद्ध की व्यापक करूणा जो विश्व की मंगल कामना से अनुस्यूत थी महादेवी जी की कविताओं का भी प्राण है । पीड़ा ही उन्हें प्रिय है और पीड़ा में अपने आराध्य की खोज इष्ट है ।

''पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणों की क्रीड़ा
तुमको पीड़ा में ढूँढा तुममें ढूँढूगी पीड़ा ।''[151]

4.3 वैयक्तिकता और प्रभाव :

द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता, बौद्धिकता और आलोचनात्मक प्रवृत्ति के प्रतिरोध ने कवियों को कल्पनात्मक मनोदृष्टि प्रदान की । फलतः इसी प्रभाव से महादेवी भी जगत के यथार्थ रूप की विभिषिकाओं से पलायन कर कल्पना लोक में विचरण करने लगीं । यह स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति महादेवी में प्रेम, सौंदर्य, प्रकृति, नूतन अभिव्यंजना प्रणाली आदि रूपों में दृष्टिगोचर होती है । महादेवी गतिशील जीवन में विश्वास करती हैं अतः गतिशीलता काव्यगत बंधनों की जड़ता को स्वीकार नहीं कर सकती । फलतः महादेवी की कविता अति वैयक्तिक और एकान्त अन्तर्भुखी बन गई है । उनकी वैयक्तिक भावना के कुछ अंश मिलते है –

''मेरी मधुमय पीड़ा को,
कोई पर ढूँढ न पाये ।''[152]
''मेरे जीवन की जागृति ।''[153]

''मेरे शैशव के मधु में धुल
मेरे यौवन के मद में तुल
मेरे आँसू स्मित में हिलमिल
मेरे क्यों न कहाते ?''[154]

4.4 दार्शनिकता और प्रभाव :

महादेवी वेदान्त दर्शन के अद्वैतवाद से अत्यन्त प्रभावित हैं । महादेवी सृष्टि से पूर्व संसार का अस्तित्व नहीं मानती हैं –

''न थे जब परिवर्तन दिन रात
नहीं आलोक तिमिर थे ज्ञात ।''[155]

वे वेदान्तवादियों की तरह अद्वैत ब्रह्म के द्वारा अपने एकाकीपन से ऊबकर भू–रचना मानती हैं ।

''.... और किस शिल्पी ने अनजान
विश्व प्रतिभा कर दी निर्माण ।''[156]

''.... उगज जिसने तिनरंगे तार
बुन लिया अपना ही संसार ।''[157]

अद्वैतवाद के प्रभाव से महादेवी जीव और ब्रह्म को एक ही मानती हैं ।

''मैं तुम से हूँ एक, एक हैं
जैसे रश्मि प्रकाश ।''[158]

4.5 प्रतीक योजना और प्रभाव :

छायावादी काव्य शैली की एक विशेषता प्रतीक प्रयोग पद्धति रही है । प्रयोग पद्धति प्राय: सभी छायावादी कवियों में भी मिलती हैं । महादेवीजी ने अपनी सूक्ष्मतर रहस्यात्मक भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक – प्रयोग किया है । छायावाद की यह अभिव्यंजना पद्धति थी जिसका प्रयोग महादेवी के काव्य में भी मिलता हैं । महादेवीने जिन प्रतीकों का प्रयोग किया है वे परम्परा मुक्त हैं अथवा अभिनव । महादेवी के जीव व परमात्मा के अभिन्न सम्बन्ध को व्यक्त करने वाले प्रतीक प्राय: इन्हीं के समान हैं किन्तु इनके प्रतीक प्रकृति से अधिक लिए गये हैं । जैसे –

''नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ ।
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ ।
फूल को उर में छिपी विकल बुलबुल हूँ ।
एक होकर दूर तुम से छांह वह चल हूँ ।
दूर तुम से हूँ अखंड सुहागिनी भी हूँ ।[159]

महादेवी जी की प्रतीक योजना पर कहीं कहीं सूफी रहस्यवादियों की प्रतीक पद्धति का प्रभाव लक्षित होता है ।

''अलि छोड़ी न जीवन की तरणी
उस सागर में जहां में जहां तीर नहीं
कभी देखा नहीं वह देश जहां ।
प्रिय से कम मादक पीर नहीं ।''[160]

4.6 प्रेम निरूपण और प्रभाव :

कबीर में प्रेम की जो भावना 'हरि मोर पिउ मैं राम की बहुरिया' बनकर आई और जो मीरा में 'जाके सिर मोर मुकुट मेरों पति सोई' के रूप में व्यक्त हुई वही भावना महादेवी जी में 'सांसों की घड़ियां गिन गिन प्राणों के अंतिम पाहुँन' को प्राप्त करने के लिए मचल उठती है । अत: महादेवी को आधुनिक मीरा कहा गया । महादेवी जी की प्रेम भावना का स्वरूप शुद्ध रूप में भारतीय ही है । उसके ऊपर कबीर, मीरा और कुछ अंशों में संभवत: सूफी प्रेम पद्धति का प्रभाव परिलक्षित होता है । कबीर की तरह महादेवी जी का प्रियतम अज्ञात है जब कि मीरा का ज्ञात ।

''क्या पूजा क्या अर्चन रे
उस असमी का सूना मन्दिर मेरा लधुतम जीवन रे
मेरी स्वार्स करती रहती नित प्रिय का अभिनंदन रे ।''[161]

सूफियों के प्रेम में ब्रह्म में भी जीव से मिलने की आतुरता दिखलाई जाती हैं । जायसी ने 'पद्मावत' में यह व्यक्त किया है । महादेवी जी के प्रियतम भी–इसी प्रकार आते हैं ।

''वह सपना बन बन आता जागृति में जाता लौट''[162]

4.7 प्रकृति चित्रण और प्रभाव :

महादेवी जी के प्रकृति वर्णन की प्रवृति पर सबसे प्रबलतम प्रभाव छायावादी शैली का है । महादेवी जी ने भी प्रकृति के विविध रूपों में

चित्र उपस्थित किये हैं । आत्मभावनाभिव्यंजना के रूप में प्रकृति का चित्र दिखाई देता है, जहाँ महादेवी जी सुमन और दीपक को प्रतीक रूप देती हैं ।

"कर दिया मधु और सौरभ
दान सारा एक दिन
किन्तु रोता कौन है
तेरे लिए दानी समुन ।"[163]

प्रकृति का मानवीकरण का सुन्दर दृश्य देखिए –

"सज केशर – पट तारक – बेंदी,
दृग अंजन मृदु पद मेंहदी,
आती भर मदिरा से नगरी,
संध्या अनुराज सुहाग भरी ।"[164]

कहने का तात्पर्य यह है कि महादेवी जी ने प्रकृति को अनेक रूपों में देखा है । उनके जीवन में जो अभाव था उसकी पूर्ति प्रकृति के प्रांगण में ही हुई । प्रकृति के बीच ही उन्हें अपने प्रिय की झांकी मिली है । वही उनकी साधना भूमि है । उनके हर्ष और विषाद में वह भी हर्षित और विषमय होती है । जीवन में सहचरी का साथ, मां का दुलार उन्हें प्रकृति में ही प्राप्त हुआ । इस तरह महादेवी जी प्रकृति में घुलमिल सी गई हैं । वह उनके जीवन की अभिन्न सहचरी बन गई है । उनकी प्रकृति मानवीय चेष्टाओं और भावों से परिपूर्ण है । इसके

आलम्बन चित्र महादेवी जी के भावुक और कोमल हृदय के संस्पर्श से बड़े ही सरस और सुन्दर बन गये हैं ।

''कनक से दिन मोती सी रात,
सुनहली साँझ गुलाबी प्रात,
मिटाता रंगता बारंबार,
कौन जग का यह चित्राधार ?''[165]

☸ निष्कर्ष :

मनन, चिंतन, अनुभूति और कवित्व के सामंजस्य से सर्जित महादेवी का साहित्य हिन्दी साहित्य की अपूर्व निधि हैं । अतः महीयसी महादेवी का कृतित्व ही उनके व्यक्तितत्व के मनोभावों को उजागर करके बहुमुखित्व की पहचान कराता है ।

हिन्दी साहित्य के युग प्रवर्तक कवि निरालाजी ने एक स्थल पर महादेवी जी के व्यक्तितत्व पर अर्ध्य चढ़ाते हुए लिखा है –

''हिन्दी के विशाल मंदिर की वीणा-वाणी,
स्फूर्ति चेतना रचना की प्रतिभा कल्याणी ।''[166]

📖 संदर्भ ग्रंथ सूचि :

1. 'धर्मयुग', डॉ. रामजी पाण्डेय, पृ.6
2. वही, पृ.6
3. वही, पृ.6
4. 'Mahadevi Verma : And the Chha.Age of the modern Hindi Poetery', Karine Schomer p.153
5. do, P.153
6. do, P.158
7. 'हिन्दी के प्राचीन और आधुनिक कवि', सत्येन्द्रकुमार सिंह, पृ.154
8. 'Mahadevi Verma : And the Chhe. Age of the modern Hindi Poetry.' Karine Schomer पृ.158
9. do, p.158
10. do, P.158
11. do, P.162
12. 'महादेवी नया मूल्यांकन', गणपति चन्द्र गुप्त, पृ.20
13. 'महादेवी वर्मा : काव्य-कला और जीवन-दर्शन', शचीरानी गुर्टू, पृ.23
14. 'महादेवी वर्मा : व्यक्तित्व और कृतित्व', डॉ. विमलेश तेवरिया, पृ.19
15. 'धर्मयुग : रामजी पाण्डेय', पृ.20
16. वही, पृ.1
17. 'गद्यकार : महादेवी वर्मा', डॉ. बड़सूवाला, पृ.01
18. 'आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि महादेवी वर्मा', गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ.1
19. 'महादेवी का काव्य एक विश्लेषण', डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र, पृ.10
20. 'Mahadevi Verma : And the Chha. Age of Modern Hindi Poetry', Karine Schomer, p.157
21. 'महादेवी वर्मा व्यक्तित्व और कृतित्व', डॉ. विमलेश तेवरिया, पृ.20 (प्रत्यक्ष बातचीत दौरान)

22. वही, पृ.20
23. 'Mahadevi Verma : And the Chha. Age of Modern Hindi Poetry'. Karine Schomer P.157
24. 'अतीत के चलचित्र', महादेवी वर्मा, पृ.17
25. 'आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि महादेवी वर्मा', गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ.11
26. वही, पृ.11
27. वही, पृ.11
28. 'महीयसी महादेवी', गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ.25
29. 'आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि महादेवी वर्मा', गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ.12
30. 'महीयसी महादेवी', गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ.26
31. 'धर्मयुग', डॉ. रामजी पाण्डेय, पृ.20
32. 'महादेवी साहित्य : एक नया दृष्टिकोण', पद्‌मसिंह चौधरी, पृ.41
33. 'महीयसी महादेवी', गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ.28
34. 'आज के लोकप्रिय कवि महादेवी वर्मा', गंगाप्रसाद पाण्डेय पृ.12
35. वही, पृ.12-13
36. 'अतीत के चलचित्र', महादेवी वर्मा, पृ.15-16
37. 'धर्मयुग', डॉ. रामजी पाण्डेय, पृ.6
38. 'महादेवी वर्मा : कवि और गद्यकार', डॉ. लक्ष्मण दत्त गौतम, पृ.16
39. 'संस्मरण', महादेवी वर्मा, पृ.94
40. वही, पृ.55
41. वही, पृ.55
42. 'धर्मयुग', डॉ. रामजी पाण्डेय, पृ.20
43. 'दीपशिखा', महादेवी वर्मा, पृ.46
44. वही, पृ.52
45. 'महादेवी वर्मा : व्यक्तितत्व और कृतित्व', विमलेश तेवरिया, पृ.27
46. वही, पृ.27

47. 'महीयसी महादेवी', गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ.43

48. वही, पृ.35

49. 'गद्यकार महादेवी वर्मा', डॉ. वड़सूवाला, पृ.01

50. 'चाँद', महादेवी वर्मा,पृ.97-98 (महादेवी वर्मा : व्यक्तितत्व और कृतित्व', डॉ. विमले तेवतीया, पृ.41 से उद्धृत)

51. 'आज के लोकप्रिय कवि महादेवी वर्मा', गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ.15

52. 'Psychology', R.S.Woodworth, P.122

53. 'धर्मयुग', डॉ. रामजी पाण्डेय पृ.20

54. 'Mahadevi Verma : And the Chha, Age of Modern Hindi Poetry', Karine Schomer, P.154

55. 'धर्मयुग', डॉ. रामजी पाण्डेय , पृ.20

56. वही, पृ.20

57. वही, पृ.20

58. 'महादेवी नया मूल्यांकन', गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ.24

59. 'महीयसी महादेवी', गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ.197

60. 'महादेवी वर्मा : व्यक्तितत्व और कृतित्व', डॉ. विमलेश तेवतीया, पृ.43

61. 'Mahadevi Verma : And the Chha. Age of Modern Hindi Poetry', Karine Schomer, P.176

62. 'महादेवी वर्मा : व्यक्तितत्व और कृतित्व' डॉ. विमलेश तेवतीया, पृ.44

63. 'महादेवी वर्मा : विचार और व्यक्तित्व', अंबाशंकर नागर, पृ.88

64. 'Mahadevi Verma : and the chha. age of Modern Hindi Poetry', Karine Schomer, P.176.

65. 'गद्यकार महादेवी वर्मा', डॉ. बड़सूवाला, पृ.2

66. 'महादेवी – संस्मरण ग्रन्थ', सं.सुमित्रानंदन पंत, पृ.221

67. 'आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि महादेवी वर्मा', गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ.20

68. वही, पृ.20

69. 'गद्यकार महादेवी वर्मा', डॉ. बड़सूवाला, पृ.4

70. 'आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि महादेवी वर्मा', गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ.20

71. 'प्रथम आयाम, महादेवी वर्मा', (आत्मकथ्य), पृ.2

72. वही, पृ.1

73. 'महादेवी : नया मूल्यांकन', डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ.21

74. 'प्रथम आयाम', महादेवी वर्मा, पृ.3

75. महादेवी : नया मूल्यांकन, डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ.21-22

76. 'महादेवी वर्मा : व्यक्तितत्व और कृतित्व', डॉ. विमलेश तेवरीया, पृ.48

77. 'दीपशिखा, महादेवी वर्मा', (चिंतन के क्षण), पृ.18

78. 'महीयसी महादेवी', गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ.60

79. 'महादेवी वर्मा व्यक्तितत्व और कृतित्व', डॉ. विमलेश तेवरीया, पृ.61

80. वही, पृ.61

81. 'महादेवी के काव्य में बिम्बविधान', डॉ. सुधा श्रीवास्तव, पृ.44

82. 'महादेवी की रहस्य साधना', विश्वंभर मानव, पृ.17

83. 'हिमालय, महादेवी वर्मा', पृ.103

84. 'प्रथम आयाम', महादेवी वर्मा, पृ.1

85. वही, पृ.19

86. वही, पृ.23

87. वही, पृ.3

88. 'महादेवी : नया मूल्यांकन', डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ.21-22

89. 'महादेवी काव्य का एक विश्लेषण', डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र, पृ.27

90. 'यामा' (अपनी बात), महादेवी वर्मा, पृ.6

91. 'नीहार', महादेवी वर्मा, पृ.28

92. 'नीहार', महादेवी, पृ.17

93. वही, पृ.29

94. 'रश्मि', (अपनी बात), पृ.6

95. 'यामा' (अपनी बात), महादेवी वर्मा, पृ.6

96. 'रश्मि' (अपनी बात) महादेवी वर्मा, पृ.11

97. वही, पृ.25

98. वही, पृ.18

99. वही, पृ.80

100. वही, पृ.70-71

101. वही, पृ.14

102. वही, पृ.103-105

103. वही, पृ.21-22

104. वही, पृ.20

105. 'नीरजा' महादेवी वर्मा, पृ.11

106. वही, पृ.22

107. वही, पृ.8

108. वही, पृ.14

109. वही, पृ.59

110. वही, पृ.81-82

111. वही, पृ.41

112. वही, पृ.60

113. वही, पृ.70

114. 'महादेवी : चिंतन व कला : सं. इन्द्रनाथ मदान, पृ.105

115. 'सांध्यगीत' (अपनी बात), महादेवी वर्मा, पृ.2

116. वही, पृ.17

117. वही, पृ.30

118. वही, पृ.42

119. वही, पृ.35

120. वही, पृ.56

121. 'दीपशिखा' वही, पृ.110

122. वही, पृ.111

123. 'दीपशिखा', वही, पृ.116

124. वही, पृ.69-70

125. वही, पृ.114

126. 'दीपशिखा' महादेवी वर्मा, पृ.75

127. 'हिमालय' वही, भूमिका, पृ.4

128. वही, पृ.61

129. वही, पृ.63

130. महादेवी की रचना प्रक्रिया, डॉ. पालीवाल, पृ.62

131. 'सप्तपर्णा' (अपनी बात) महादेवी वर्मा, पृ.69

132. 'प्रथम आयाम', वही, पृ.22

133. वही, पृ.25

134. वही, पृ.82-85

135. वही, पृ.88, 89, 90

136. 'प्रथम आयाम', महादेवी वर्मा, पृ.26

137. 'महादेवी साहित्य समग्र-1' (अग्निरेखा) सं.निर्मला जैन, पृ.383

138. वही, पृ.387

139. वही, पृ.399

140. वही, पृ.402

141. वही, पृ.404

142. 'क्षणदा' (अपनी बात) वही, पृ.23

143. 'मेरा परीवार' वही, पृ.8

144. 'यामा' (अपनी बात) वही, पृ.5

145. 'यामा', महादेवी वर्मा, पृ.9
146. 'नीरजा' वही, (भूमिका), पृ.3
147. 'यामा' महादेवी वर्मा, पृ.185
148. वही, पृ.147
149. वही, पृ.74
150. 'यामा' महादेवी वर्मा, पृ.12
151. 'महादेवी साहित्य समग्र, सं. निर्मला जैन, पृ.64
152. 'यामा', महादेवी वर्मा, पृ.46
153. वही, पृ.46
154. 'रश्मि' – वही, पृ.17
155. वही, पृ.60
156. 'यामा', वही, पृ.71
157. वही, पृ.106
158. वही, पृ.104
159. वही, पृ.139
160. 'यामा', वही, पृ.95
161. वही, पृ.192
162. 'महादेवी साहित्य समग्र', सं. निर्मला जैन, पृ.183
163. 'यामा', महादेवी वर्मा, पृ.30
164. वही, पृ.157
165. 'महादेवी साहित्य समग्र', सं. निर्मला जैन, पृ.105
166. 'महादेवी वर्मा : काव्य कला और जीवन-दर्शन', राचीरानी दुगुर्टू, पृ.18

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

छायावाद और महादेवी वर्मा

❁ **प्रस्तावना :**

1. **'छायावाद' शब्द :**

2. **छायावाद की परिभाषाएँ :**

   2.1 जयशंकर प्रसाद

   2.2 सुमित्रानंदन पंत

   2.3 महादेवी वर्मा

   2.4 मुकुटधर पाण्डेय

   2.5 आचार्य रामचंद्र शुक्ल

   2.6 आचार्य नंददुलारे बाजपेयी

   2.7 हजारी प्रसाद द्विवेदी

3. **छायावाद के प्रवर्तक :**

4. **छायावादी काव्य प्रवृतियाँ एवं महादेवी वर्मा :**

   4.1 सौंदर्य चेतना

   4.2 प्रेम भावना

   4.3 मानवतावादी विचारधारा

4.4 वैयक्तिकता

4.5 युग चित्रण

4.6 रहस्य भावना

4.7 वेदना की अभिव्यक्ति

4.8 शृंगारिकता और इन्द्रीय बोध

4.9 स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह

4.10 प्रकृति प्रेम

4.11 राष्ट्रीय चेतना

- **निष्कर्ष :**

तृतीय अध्याय

छायावाद और महादेवी वर्मा

❁ प्रस्तावना :

हिन्दी के छायावादी कवियों में महादेवी के महत्व को समझने से पूर्व 'छायावाद' के उद्‌गम, परिभाषाएँ और विशेषताओं को समझना आवश्यक है ।

छायावाद का जन्म द्विवेदीयुग के आदर्श - उपदेश - प्रधानकथा - काव्यों के विरोध में हुआ, ऐसी ऐतिहासिक मान्यता है । यह विरोध या विद्रोह वेसा ही था जैसा पश्चिम के कवि पोप, गोल्डस्मिथ तथा लाँगफैलों की उपदेशात्मक कविताओं के विरूद्ध प्रकृतिवादी वर्ड्‌सवर्थ तथा शैली ने किया । 'रिटर्न टू दा नेचर' (प्रकृति की ओर लौटो) का नारा लगाकर जैसे वर्ड्‌सवर्थने पाश्चात्य काव्य को नई दिशा दी, उसी प्रकार कविवर प्रसाद ने भी (कोई नारा न लगाकर) हिन्दी काव्य को युगके आदर्शवादी आतंक से मुक्त कर प्रकृति के सुन्दर - स्वच्छन्द वातावरण की ओर उन्मुख किया, जहाँ कवि अपनी संवेदनाओं और सुख-दुःख की अभिव्यक्ति अपने ढंग और प्रकृति के माध्यम से कर सकता था । जड़ प्रकृति में अपने भावमय व्यक्तित्व की प्राणप्रतिष्ठा कर उसे प्रकृति में भी वही सजीवता संवेदना और 'हास्य-रूदन' सुनाई दिया जो उसका 'अपना' था । अब प्रकृति उसी की काया थी और वह स्वयं प्रकृति की प्रति-छाया था । प्रकृति के साथ संवेदनाओं के आदान-प्रदान की इसी अभिव्यक्ति को 'छायावाद' कहा गया ।

'छायावाद' के संदर्भ में अन्य विभिन्न मत भी दृष्टव्य है – छायावादी कविता का संबंध रीतिकाल के स्वच्छंदतावादी काव्य से जोड़ा गया है । जिसके संकेत बोधा, घनानंद, ठाकुर और भारतेन्दु में भी मिलते है । जब कविता की भाषा खड़ीबोली हो गई तब परंपरा से मुक्ति और स्वच्छंदता की ओर उन्मुखता; श्रीधर पाठक, जगमोहनसिंह, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी आदि के काव्य में दिखाई देती है । यदि उपनिषद के भावों से छायावाद का संबंध मानते है तो इसकी प्रेरणा कबीर, मीरा, रसखान, धनानंद की भावधारा से निष्पन्न दिखाई देती है । यह स्पष्ट है कि छायावादी काव्य हिन्दी की अविच्छिन्न धारा का अंग है । कुछ लोग इसे बंगाल के महाकवि रविन्द्र की प्रेरणा का फल मानते है, जिसके अंश कवि पंत और निराला में उभरे है ।

छायावादी कविता का उद्‌भव मुख्य रूपसे पाश्चाच्य काव्य एवं प्रकृति के विभिन्न रूपों में उभरे मनोभावों के निरूपण में ही दिखाई देता है ।

1. 'छायावाद' शब्द :

'छायावाद' शब्द प्रयोग को रहस्यवाद के अर्थ में लिया गया । रहस्यवाद का संबंध काव्यवस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनंत और अज्ञात् प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है । रहस्यवाद के अंतर्भूत रचनाएँ पहुँचे हुए पुराने संतों या साधकों की उसी वाणी के अनुकरण पर होती है जो तुरीयावस्था या समाधि दशा में नाना रूपकों के रूप में उपलब्ध

आध्यात्मिक ज्ञान का आभास देती हुई मानी जाती थी । इस रूपात्मक आभास में ब्रह्म समाज के बीच उक्त वाणी के अनुकरण पर जो आध्यात्मिक गीत या भजन बनते थे वे छायावाद कहलाने लगे । धीरे-धीरे यह शब्द धार्मिक क्षेत्र से वहाँ के साहित्य क्षेत्र में आया और फिर रविन्द्र बाबू की धूम मचने पर हिन्दी के साहित्यक्षेत्र में भी प्रकट हुआ ।[1] छायावाद के अर्थ निर्धारण के बारे में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे सीमित अर्थ में एक शैली-विशेष माना जिसमें लाक्षणिक मूर्तिमता, प्रतीकविधान, विरोध चमत्कार, विशेषण; विपर्यय, मानवीकरण, अन्योक्ति - विधान आदि पर बल रहता है ।[2] शुक्लजी भी 'छायावाद' के व्यापक अर्थ में रहस्यवाद को समाविष्ट करते है ।

छायावाद का आरंभ सामान्यतः 1920 ई. के आसपास से माना जाता है । तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं से पता चलता है कि 1920 तक 'छायावाद' संज्ञा का प्रचलन हो चुका था । 'मुकुटधर पाण्डेय ने 1920 की जुलाई, सितम्बर, नवम्बर और दिसम्बर की 'श्रीशारदा' (जबलपुर) में हिन्दी में 'छायावाद' शीर्षक से चार निबंधों की एक लेखमाला छपवाई थीं । तबतक किसी प्राचीनतर सामग्री का पता नहीं चलता, इसी को छायावाद संबंधी सर्व प्रथम निबंध कहा जा सकता है । ''हिन्दी में उसका नितांत अभाव देखकर मुकुटधरजी ने इधर-उधर की कुछ टीका-टिप्पणियों के सहारे वह निबंध प्रस्तुत किया था ।''[3] इससे स्पष्ट है कि उस निबंध से पहले भी छायावाद पर कुछ टीका-टिप्पणियाँ हो चुकी थी ।

2. छायावाद की परिभाषाएँ :

'छायावाद' एक ऐसा शब्द है जो स्पष्ट परिभाषा के घेरे में आता ही नहीं । कवियों और आलोचकों ने भिन्न भिन्न प्रकार से छायावाद की परिभाषाएँ प्रस्तुत की है । सब परिभाषाएँ भिन्न और स्पष्ट ही दिखाई देती है । स्वयं छायावादी कवियों ने ही इसके स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया है ।

2.1 जयशंकर प्रसाद :

कविता के क्षेत्र में पौराणिकयुग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुंदरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमय अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया तथा 'छाया' भारतीय दृष्टि से अनुमानित और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है । ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्य प्रकृति तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृती छायावाद की विशेषताएँ है । अपने भीतर से मोती को पानी की तरह अंतर स्पर्श करके भाव समर्पण करनेवाली अभिव्यक्ति की छाया क्रांतिमय होती है । अर्थात् प्रसादजी की दृष्टि में दार्शनिकता कल्पना प्रवणता, प्राचीन प्रतीकों का पुनः प्रस्थापन और निर्माण छायावाद है । जिसमें प्रकृति का सजीव चित्र हो युगानुरूप वेदना हो तथा शैली में ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता और उपचार वक्रता हो ।

2.2 सुमित्रानंदन पंत :

कविवर पंतने छायावाद के संबंध में अपने विचार उनके संग्रह 'पल्लव' की भूमिका में प्रस्तुत किये है । वे छायावाद को पाश्चात्य साहित्य के 'रोमैंटिसिज्म' से प्रभावित मानते हैं । इस लिए पंत का छायावादी काव्य भी अंग्रेजी रोमेन्टिक काव्य के आधार (आदर्श) पर ही है । उन्होंने वेदनानुभूति को रोमेन्टिक शोक के रूप में प्रकट किया है । वर्ड्सवर्थने प्राकृतिक सौंदर्य के साथ प्राकृतिक करूणा और निराशा का चित्रण किया है । प्रसाद छायावाद को पूर्णतः भारतीय परंपरा में स्थान देते है जबकि पंत इसे पाश्चात्य रोमेन्टिक काव्य का प्रभाव मानते है ।

2.3 महादेवी वर्मा :

छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस संबंध में प्राण डाल दिये जो प्राचीनकाल से बिंब-प्रतिबिंब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दुःख में उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी । छायावाद की प्रकृति, घट, कुप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई । अतः मनुष्य के अश्रुमेघ के जल-कण और पृथ्वी के ओश बिंदुओं का एक ही कारण एक ही मूल्य है तथा मनुष्य को बाह्य सौंदर्य की ओर से हटाकर उसे प्रकृति के साथ अपने अविच्छिन्न संबंध की स्मृति दिलाने का श्रेय भी छायावाद को ही है । आगे इस के उद्‌भव होने के कारण पर प्रकाश डालती हुई महादेवी कहती है - छायावाद ने कोई

रूढ़िगत या वर्गगत सिद्धांतों का संचयन देकर हमे केवल स्पष्टीगत चेतना और सूक्ष्मगत सौंदर्य सत्ता की ओर जागृक कर दिया था । इसी से उसे यथार्थ रूप में ग्रहण करना हमारे लिए कठिन हो गया ।

2.4 मुकुटधर पाण्डेय :

वस्तुगत सौंदर्य और उसके अंतर नीहित रहस्य की प्रेरणाएँ ही कविता की जड़े हैं । यही कविता के अव्यक्त का सर्वप्रथम संमिलित होता है । इस रहस्यपूर्ण सौंदर्य वर्णन से हमारे हृदय सागर में जो भाव तरंगे उठती हैं वे प्राय: कल्पना रूपी वायु के वेग से ही ज्ञात होती है क्योंकि यथार्थ की सेवा प्राप्ति इस समय उन्हें असंभव हो उठती है । यही कारण है कि कवितागत भाव प्राय: अस्पष्टता के लिए ही होता है उसी का दूसरा नाम छायावाद है ।

2.5 आचार्य रामचंद्र शुक्ल :

छायावाद को रहस्यवाद के अर्थ में लिया जाये तो वह काव्यवस्तु से संबंधित है । जहाँ कवि अनंत, अज्ञात प्रिय को आलंबन बना कर प्रेमाभिव्यंजना में चित्रित करता है । छायावाद का सामान्य अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करनेवाली 'छाया' के रूप में अप्रस्तुत का कथन । इस शैली के भीतर किसी भी वस्तु या विषय का वर्णन किया जा सकता है ।

2.6 आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी :

मानस अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भास । बाजपेयजी के मुताबिक यह सर्वमान्य व्याख्या होनी चाहिए । इस व्याख्या के सूक्ष्म और गंभीर शब्दों को समजे तो; यदि वह सौंदर्य सूक्ष्म नहीं है, साकार होकर स्वतंत्र क्रियाशील है । किसी कथा या आख्यायिका का विषय बन गया है तो हम उसे छायावाद के अंतर्गत नहीं ले सकेंगे ।

2.7 हजारीप्रसाद द्विवेदी :

द्विवेदीजी के अनुसार छायावाद एक विशाल सांस्कृतिक चेतना का युग था । यद्यपि इसमें नवीन शिक्षा के परिणाम होने के चिह्न स्पष्ट है तथापि वह केवल पाश्चात्य प्रभाव नहीं था । कवियों की भीतरी व्याकुलता ने ही नवीन भाषाशैली में अपने आप को व्यक्त किया है ।

3. छायावाद के प्रवर्तक :

हिन्दी काव्य की छायावादी धारा बहुत महत्वपूर्ण और हिन्दी साहित्य की संपन्नता का प्रतीक है । इस काव्य आंदोलन का प्रवर्तक किस कवि को और कौन सी कविता के साथ माना जाय ? यह बड़ा विवादास्पद है । छायावाद अपने आप में स्पष्ट और विवादों के घेरे में हैं । 'छायावाद' नाम उसमें रही अस्पष्टता और दुरूहता को मद्‌नज़र मुकुटधर पाण्डेय ने अपनी एक समीक्षा में दिया था । अतः अस्पष्टता के कारण यह कहना ही अत्यंत कठीन है कि अमुक कवि ही छायावाद

के प्रवर्तक कवि है । हिन्दी के मूर्धन्य आलोचकों ने अपने–अपने दृष्टिकोणों से छायावाद के प्रवर्तक कवि और उसकी कविता पर विचार किया है ।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सन् 1918 ई. से छायावाद का प्रादुर्भाव स्वीकार किया है । तब तक तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं में छायावादी शैली की कविताएँ प्रकाशित होने लगी थी । द्विवेदी युग में ही 'सरस्वती' में कुछ छायावादी कविताएँ प्रकाशित हुई थी । आचार्य शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, बद्रीनाथ भट्ट तथा पदुमलाल बक्षी को छायावाद का प्रवर्तक मानते हैं । उनका आधार उनकी यह कविताएँ है –

"दे रहा दीपक जलंकर फूल
रोपी उज्ज्वल प्रभापता का अंधकार हिय कुल ।"

पं. बद्रीनाथ भट्ट (1913)

'तेरे घर के द्वार बहुत है किस से होकर आऊँ में ?
सब द्वारों पर भीड बड़ी, कैसे भीतर आऊँ में ?

मैथिलीशरण गुप्त (1918)

"हुआ प्रकाश तमोमय मग में
मिला मुझे तु ततक्षण जग में
दंपति के मधुमय विलाप में
शिशु के स्वप्नोत्त हास में"

मुकुटधर पाणडेय (1917)

श्रीपालसिंह क्षेम ने 'इन्दु' पत्रिका में प्रकाशित जयशंकर प्रसाद की कविताओं के आधार पर प्रसाद को ही छायावाद का प्रवर्तक माना है । 'कानन कुसुम' और 'झरना' में संगृहित अनेक कविताएँ सन् – 1913-14 में रची गई थी और 'इन्दु' में पहले ही प्रकाशित हो चुकी थी ।

"भीग रहा है रजनी का वह सुंदर कोमल कवरी हार,
अरूण किरण सम करसे छूलो, खोलो प्रियत्तम द्वार ।"
जयशंकर प्रसाद (1914)

कुछ लोग निराला और पंत को छायावाद के प्रवर्तक मानते है । इन दोनों कवियों में सूक्ष्म शब्द चेतना, स्वरों का उपयोग, भाषा संगीत का गहरा बोध और प्रकृति के प्रति उसका सहज स्फूर्त भाव उन्हें पूर्ववर्ती कवियों और दूसरी शैली के संवर्तियों से अलग करता है । बल्कि नये छायावादी कवियों में भी इस प्रकार छायावादी चेतना का प्रसार देखे तो पंत और निराला ही इसके प्रवर्तक दिखाई देते है ।

छायावाद के संदर्भ में इलाचंद जोशी का मत है – छायावाद ने हिन्दी काव्य जगत में युगांतर उत्पन्न किया उस के प्रबल तरंगाभीधात से हमारी साहित्यधारा की प्रकृति ही बदल गयी । गोस्वामी तुलसीदास के बाद वह सबसे बड़ी क्रांति है ।

4. छायावादी काव्य प्रवृतियाँ एवं महादेवी वर्मा :

आधुनिक हिन्दी साहित्य में महादेवी वर्मा का कृतित्व इसी दृष्टि से विशेष मूल्य–महत्व रखता है कि उसमें छायावाद की सभी प्रमुख

प्रवृत्तियाँ चाहे वे विषयगत हो या शिल्पगत हो, व्यंजित हुई हैं । संभवतः अकेली महादेवी वर्मा ही आधुनिक कवयित्री है जिन्होंने अपनी काव्यानुभूतियों को अत्यंत उदात्त रूप से अभिव्यक्त किया है । प्रकृति में चेतना - सता का आरोपण करते हुए उन्होंने सौन्दर्य बोध को प्रकट किया है । उनके प्रतीक, रूपक एवं बिम्ब विधान का महत्त्व प्रवृत्यात्मक दृष्टि से विशेष माना जाना चाहिए ।

छायावाद के चार आधार स्तंभों - प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी में से महादेवी वर्मा की चर्चा एक रहस्यवादी कवयित्री के रूप में ही अधिक हुई । उसकी विरह - वेदना की तुलना मीरा से की गई और उसके छायावादी गीतों को नामवरसिंह जैसे आलोचकों ने 'रहस्यगीतों' की संज्ञा दी । महादेवी के काव्य की परीक्षा छायावादी काव्य-प्रवृत्तियों के आधार पर की जाए और यह देखा जाए कि क्या उनके काव्य में मात्र रहस्यवादिता है या रहस्यवादिता के साथ छायावाद की अन्य विशेषताएँ भी है । छायावाद की काव्य-प्रवृतियोँ पर महादेवी का मूल्यांकन करे तो इस तरह है ।

4.1 सौंदर्य चेतना :

छायावादी चेतना की सबसे प्रमुख प्रवृति सौंदर्य की आनंद पूर्ण अनुभूति है । छायावादी काव्य में अमुक्त अशरीरी सौंदर्य प्रियता के दर्शन होते हैं । छायावादी काव्य में सौन्दर्य का व्यापक स्तर पर उद्बोधन किया गया । प्रकृतिक सौन्दर्य के माध्यम से मानव के आंतरिक कपाट खोल दिये इसी सौन्दर्य दृष्टि से उन्होंने नारी को सत-सत रूपों में देखा

है । इस काव्य में नारी के शरीर का स्थूल सौन्दर्य नहीं है अपितु आंतरिक सौन्दर्य का प्रकाश है ।

''गुलालों से रवि का पथ लीप,
जला पश्चिम में पहला दीप,
विहँसती, संध्या भरी सुहाग,
दृगों से झरता स्वर्णपराग;

उसे तम की बढ़ एक झकोर
उड़ा कर ले जाती किस ओर ?
अथक सुषमा का सृजन विनाश
यही क्या जग का श्वासोच्छ्वास ?''[4]

4.2 प्रेम भावना :

छायावादी कवियों ने प्रेमभाव का उदातीकरण किया है । उन्होंने प्रेम को स्त्री–पुरुष की वासना के कीचड़ से निकाल कर व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित किया है । प्रकृति प्रेम, नारी प्रेम, आध्यात्मिक प्रेम, मानव प्रेम आदि को चित्रित किया है । आध्यात्मिक प्रेम महादेवी की कविताओं में अधिक है वे प्रेम की उच्चदशा में पहुच जाती हैं जहाँ प्रेम और प्रिय का अंतर मीट जाता है ।

''भरे उस में छवि का मधुमास,
दृगों में अश्रु अधर में हास,
ले रहा किसका पावस – प्यार
विपुल लधु प्राणों में अवतार ?''[5]

4.3 मानवतावादी विचारधारा :

छायावादी कवि अपनी सूक्ष्म और तीव्र मानवीय संवेदना के लिए ही प्रसिद्ध है । इस काव्य में मनुष्य की संकुचित जाति, वर्ण, देश, भेद पर आधारित विचारधारा में व्यापक परिवर्तन आया और मनुष्य को केवल मनुष्य के रूप में देखने का नया अंदाज इन कवियों ने प्रदान किया ।

''मेरे हँसते अधर नहीं जग –
की आँसू – लडियाँ देखो !
मेरे गीले पलक छुओ मत
मुरझाई कलिया देखो ।''[6]

4.4 वैयक्तिकता :

जब देश में ओहापोह मचा हुआ था, निराशा के कारण तरूण कवि का हृदय तीव्र अंत: द्वन्द्व से भर उठा था । अतीत छूट चूका था । नवीन सब अस्तव्यस्त निराशाजनक था । ऐसी स्थिति में उसे असाधारण मनोवैज्ञानिक क्षोभ था । यही विक्षोभ या यांत्रिक विकल्पना ही छायावादी काव्य में कवि नीजता या वैयक्तिा बनकर उपस्थित हुई हैं । छायावादी कवि अंतर्मुखी हो गये । वह आत्मगत हो कर कविता लिखने लगे । इसी वैयक्तिकता के कारण प्रसाद में आनंदवाद निराला में अद्वैतवाद, पंत में आत्मरति और महादेवी में परोक्ष रूप में अपने प्रिय को भाव सुमन अर्पित करने में व्यक्त हुई है ।

''सजग लखती थी तेरी राह
सुलाकर प्राणों में अवसाद;
पलक प्यालों से पी पी देव ।
मधुर आसव सी तेरी याद ।[7]

4.5 युग चित्रण :

छायावादी कवियों ने प्राचीन जीवन मूल्यों में अनास्था प्रकट की । इस काव्य में थोथी नैतिकता रूढ़ी-सडी-गली मान्यताएँ और परंपराएँ तथा सामंती संस्कृति के मान दण्डों का घोर विरोध किया गया । यह कवि लोक कल्याण और विश्वमय मंगलभावना की कामना करते है । आचार्य विश्वनाथ का मत है कि मानवीय अत्याचारों, क्रियाओं, चेष्टाओं और विश्वासों के बदले हुए मूल्यों को अंगिकार करनेकी प्रवृति थी । मध्यकाल के द्दष्टिकोण को छायावादी काव्य में परिवर्तन का रास्ता मिला । महादेवी के काव्य में युग चित्रण कुछ इस प्रकार से दिखाई देता है ।

''दूर है अपना लक्ष्य महान;
एक जीवन पग एक समान;
अलक्षित परिवर्तन की डोर,
खींचती हमें इष्ट की ओर ।''[8]

4.6 रहस्य भावना :

कई आलोचक छायावाद के मूल में रहस्यवाद को ही देखते है । महादेवीजी कहती है - विश्व के अथवा प्रकृति के सभी उपकरणों में

चेतना का आरोप छायावाद की पहली सीढ़ी हैं तो किसी असमी के प्रति अनुराग जनित आत्म विसर्जन का भाव अथवा रहस्यवाद छायावाद की दूसरी सीढ़ी है । स्वयं महादेवी का काव्य इस छायावादी रहस्य भावना का उत्कृष्ट उदाहरण है ।

"और वह विस्मय का संसार
अखिल वैभव का राजकुमार
धूल में क्या लिखकर नादान
उसी में होता अन्तर्धान ?"[9]

4.7 वेदना की अभिव्यक्ति :

छायावादी कवि प्रणय के साथ वेदना की अभिव्यक्ति प्रतीत करते है । यह वेदना इतने गहरे स्तर पर अनुभूत सत्य की भाँति कुरेदती रहती है कि कवियों से तादात्म्य होना असंभव हो जाता है । महादेवीजी ने उनकी वेदना में निराशा का अंधकार और भौतिक दुःखों का संताप नहीं है । यह तो शुद्ध आत्मिक बनकर काव्य का विषय बना है ।

"धिर कर अविश्ल मेधों से
जब नभमंडल झुक जाता,
अज्ञात वेदनाओं से
मेरा मानस भर आता ।"[10]

4.8 शृंगारिकता और इन्द्रीयबोध :

छायावादी काव्य विशुद्ध सौंदर्य और प्रेम भाव का काव्य है । रीतिकालीन शृंगारिकता और इन्द्रीय बोध कम है । ये पुनरूत्थान मात्र है । इसी लिए प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी की कविता में शृंगार का माँसल पक्ष भी मिलता है । उत्तर छायावादी कवियों में अेंद्रिकता और भी अधिक गति से प्रकट हुई है । महादेवी की शृंगार भावना शृंगार की सीमा को बाँधकर इतनी सूक्ष्म हो गई कि इसका रूपांतरण रहस्यवादी भावना में हो गया हैं ।

''चाँदनी का श्रृंगार समेट
अधखुली आँखों की यह कोर,
लुटा अपना यौवन अनमोल,
ताकती किस अतीत की ओर ।''[11]

4.9 स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह :

छायावाद के मूल में स्थूल से पराग मूक्ता और सूक्ष्म से लगाव का भाव रहा है । छायावाद प्रारंभ से बाह्य स्थूल जीवन को ही उदासीन दृष्टि से देखता रहा है । अत: उनकी दृष्टि स्थूल से विमुख हो कर सुदूर रहस्यमय सूक्ष्म के प्रति आकृष्ट हो रही थी । यही अंतर्मुखी दृष्टि काव्य को अतिन्द्रीय स्वरूप प्रदान करती है । अत: महादेवी के काव्य में सूक्ष्म को ही प्रदर्शीत किया गया है ।

''प्राण में जो जल उठा वह और हैं दीपक चिरंतन,
कर गया तम चाँदनी वह दूसरा विद्युत–भरा धन;
दीप को तज कर तुझे कैसे शलभ पर प्यार आता ।''[12]

4.10 प्रकृति प्रेम :

कुछ विद्वान छायावाद का प्राण तत्व प्रकृति–चित्रण को ही मानते है । यह सही भी है । महादेवी की 'रश्मि' आदि रचनाएँ उनके प्रकृति प्रेम की द्यौतक है ।

''फूलों का गीला सौरभ पी
बेसुध सा हो मन्द समीर,
भेद रहे हों नैरा तिमिर को
मेघों के बूँदों के तीरः ।''[13]

4.11 राष्ट्रीय चेतना :

छायावादी काव्य में देश प्रेम और राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति भी नवीन और मौलिक उद्‌भावनाओं के साथ हुई । राष्ट्रीय कविताएँ प्रचार न होकर अनुभूतियों का जीवित कोष होती हैं । सभी छायावादी कवियों ने राष्ट्रीय चेतना के लिए काव्यमय अनुभूतियों को प्रेरक बनाकर प्रस्तुत किया । महादेवी का प्रेम स्वदेशानुराग के रूप में भी अपनी कविताओं में मुखरित हुआ है । युग भावना से परिचालित होकर राष्ट्रीय जीवन में नव चेतना और स्फूर्ति भरने के लिए देश को सचेत करती है ।''

"चिर सजग आँखे अनीदी आज कैसा व्यक्त वाना
जाग तुमको दूर जाना ।"[14]

देश का स्तवन करती हुई राष्ट्रीय-ममता निम्न शब्दों में व्यंजित करती हैं -

"भारत मेरे विशाल
मुझको कह लेने दो उदार
फिर एक बार, बस एक बार ।"[15]

❁ निष्कर्ष :

आदि से लेकर आज तक कितने ही विद्वानों ने प्रेम के बारे में बताने का प्रयास किया है पर प्रेम को पूर्ण रूप से समज ही नहीं पाये है । उसे समजना कठीन हैं । छायावाद में भी प्रेम को दर्शाने का प्रयास किया है । छायावाद की विविध काव्य प्रवृत्तियों का अध्ययन करके महादेवी के काव्यों में इन प्रवृत्तियों को खोजने का प्रयास किया जाये तो सही उतरते है । अतः कह सकते है कि छायावाद का एक मूल आधार स्तंभ महादेवी भी है ।

संदर्भ ग्रंथ सूचि :

1. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' आ. रामचंद्र शुक्ल, पृ.362
2. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ.549
3. 'छायावाद' नामवरसिंह, पृ.9
4. 'रश्मि' महादेवी वर्मा, पृ.15-16
5. वही, पृ.28
6. 'नीरजा' महादेवी वर्मा, पृ.33
7. 'नीहार' वही, पृ.66
8. 'रश्मि' महादेवी वर्मा, पृ.29
9. 'यामा' वही, पृ.6
10. 'रश्मि' महादेवी वर्मा, पृ.33
11. 'यामा' वही, पृ.47
12. 'सांध्यगीत' महादेवी वर्मा, पृ.128
13. 'रश्मि' वही, पृ.31
14. 'यामा' वही, पृ.238
15. वही, पृ.33

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

महादेवी के काव्यों में संवेदना और युग-चेतना

❁ **प्रस्तावना :**

1. **संवेदना :**

2. **युग-चेतना एवं व्यक्ति-चेतना :**

    2.1 सामाजिक जीवन

    2.2 धार्मिक परिस्थिति

    2.3 राजनीतिक स्थिति

3. **काव्य विषय-वस्तु :**

4. **चिंतनात्मकता :**

    4.1 जीवन-मरण

    4.2 स्वर्ग-अपसर्ग और अमरत्व

    4.3 सुख-दु:ख

    4.4 आँसू

    4.5 प्रणय

    4.6 काव्य क्या हैं ?

    4.7 आदर्श और यथार्थ

    4.8 कला और सौन्दर्य

❁ **निष्कर्ष :**

चतुर्थ अध्याय

महादेवी के काव्यों में संवेदना और युग-चेतना

❁ प्रस्तावना :

मानव के उच्च आदर्श और उनके प्रति आस्था 'मानवता' है । यह मानव-स्वभाव की महनीय विशेषता है । ईश्वर की सृष्टि में मानव सर्वोतम है । संसार के सभी प्राणियों की मूलवृतियाँ एक-सी हैं । आहार, भय, निंद्रा, मैथुन आदि की सामान्य, चिरंतन और नैसर्गिक वृतियों से अलग, मनुष्य में जो परोपकार परदुःखकारकता और सहानुभूति की भावना है वही उसे अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ सिद्ध करती है । इस प्रकार की भावनाएँ मानवजीवन के विकास-क्रम में योग देकर मूलवृतियों को संस्कृत और संवर्धित करती हैं । मानवता की भावना से प्रेरित मानव-कल्याण और प्राणिजगत् की रक्षा के लिए प्रयत्नशील रहता है । दुःखार्त के लिए सोचना और सुख का विधान करना मानवता का लक्ष्य है । लोक-कल्याण की भावना जहाँ सर्वस्व-त्याग के लिए प्रोत्साहित करती है । वहीं वह आत्मविस्तार भी करती है । आक्रोश, अहंकार और आवेग को त्याग कर सहज और विवेकपूर्ण आचरण से आत्मविश्वासी मनुष्य जीवन की उच्चत्तम भूमि पर पहुँचने में सफल होता है वहाँ से सरसता, स्निग्धता और करूणा की अजस्र वर्षा करके विश्व-मंगल की कामना करता है । करूणा एक ऐसी उदात्त मनोवृत्ति है जिसके भावन से मानव-मन हिंसा से विमुख होकर मानवीय संवेदना की ओर अग्रसर होती है ।

1. संवेदना :

महादेवीजी के जीवन की संवेदना साहित्य में करूणा, मानवता, दु:ख, वेदना आदि भावों में निरूपित हुई है । उनकी करूणा, मानवता और संवेदना पर भगवान बुद्ध की करूणा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है । किन्तु बौद्ध-दर्शन की भाँति वे संसार को दु:खमय मान कर उससे मुक्ति नहीं चाहतीं, अपितु इस संसार के दु:खों से द्रवित होकर, उसके ताप को दूर करने के लिए मेघ बनकर, बार-बार इस संसार पर छा जाने की कामना करती है -

घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय !
नित घीरूँ झर-झर मिटूँ प्रिय
घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय !''[1]

इस करूण जग में अपने जीवन की मधुरता मिलाकर उसे सुन्दर बनाने के प्रयत्न में कवयित्री कभी कोमल बनकर अपने गीतों से सूखी डालियों में फूल खिलने की और कभी मलय-पवन के रूप में सूर्य-किरणों के यान पर चढ़ मधु का संदेश लेकर मूक प्राणों में नव चेतना भर देने की कल्पना करती है :

''जग करूण-करूण, मैं मधुर-मधुर ।
दोनों मिल कर देते रजकण,
चिर करूण मधुर सुन्दर-सुन्दर ।

जग पतझर का नीरव रसाल
पहने हिमजल की अश्रुमाल,
मैं पिक बन गाती डाल-डाल
सुन फूट-फूट उठते पल-पल,
सुख-दु:ख मेजरियों के अंकुर ।
विस्मृति-शशि के हिम-किरण बाण
करते जीवन पर मूकप्राण;
बन मलय-पवन चढ़ रश्मि-यान,
मैं आती ले मधु का संदेश,
भरने नीरव उस में मर्मर !''[2]

दार्शनिकों की मान्यता है कि कामनाएँ ही दु:ख का मूल कारण हैं । इच्छाओं की पूर्ति के लिए मनुष्य उचित-अनुचित साधनों का प्रयोग करता है । महादेवी ने इस तथ्य को लाक्षणिक शैली में सुन्दर अभिव्यक्ति दी है :

''धूलि के कण में नभ सी चाह
बिन्दु में दु:ख का जलधि अथाह,
एक स्पन्दन में स्वप्न अपार
एक पल असफलता का भार ।''[3]

मानव-हृदय में अनंत इच्छाएँ हैं, अनगिनत स्वप्न हैं । उन इच्छाओं और स्वप्नों की पूर्ति न हो पाने के परिणाम स्वरूप दु:ख के अथाह पारावार से जीवन का एक-एक पल असफलता के भार से बोझिल हो जाता है ।

संतप्त सांसारिक जीवन कवयित्री को अश्रुसिक्त कर जाता है । विश्व के दग्ध हृदय को शीतलता प्रदान करने की आशा से उसका सदय हृदय घन बनकर छा जाना और बरसात बनकर बरस जाना चाहता है :

''ताप जर्जर विश्व-उर पर -
तूल से घन छा गये भर,
दुःख से तप हो मृदुलतर
उमड़ता करूणा भरा उर ।
सजनि मैं उतनी सजल जितनी सजल बरसात ।''[4]

अनंत इच्छाओं और भावनाओं से युक्त मानव-हृदय की गति निराली है । उसे समझ पाना आसान नहीं है । कभी तो वह मानवता एवं करूणा से प्रेरित होकर यह कामना करती है कि कोई आये और ताप से खारे तथा विषाद से श्यामल उसके आँसूओं को ले जाये और अपनी चितवन से छान उन्हें मधु-जल बनाकर उसी से करूणा की घटा निर्मित कर तप्त व्योम पर फैला जाये -

''कोई यह आँसू आज माँग ले जाता ।
तापों से खारे जो विषाद से श्यामल,
अपनी चितवन में छान इन्हें कर मधु-जल,
फिर इनसे रच कर एक घटा करूणा की
कोई यह जलता व्योम आज छा जाता !''[5]

और कभी कण-कण को नवजीवन देने वाली करूणा इतनी संकुचित हो जाती है कि अपने बंध (हृदय) में ही निःस्पंद पड़ी रह जाती है -

जाती नव जीवन बरसा
जो करूण घटा कण - कण में,
निस्पंद पड़ी सोनी है वह
अब मन के लघु बंधन में ।''[6]

दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से पीड़ित जीवन असहनीय है । इन कंटकमय संसार में केवल फूल जो मधुरिमा और लघु के अवतार है, सुधा और सुषमा से सुन्दर हैं, वे भी अश्रुसिक्त सहमी आँखें लिए मूक हो जाते हैं । न जाने किस राग के सम्मोहन में खिंचे वे इस संसार में आ जाते हैं । उन कोमल प्राणों को जीवन के चक्र में भेजने वाला विधाता अत्यंत निष्ठुर है :

''मधुरिमा के, मधु के अवतार
सुधा से, सुषमा से, छविमान,
आँसुओ में सहमें अभिराम
तारकों से हे मूक अजान ।...
कमौन वह है सम्मोहन राग
खींच लाया तुमको सुकुमार ?
तुम्हें भेजा जिसने इस देश
कौन वह है निष्ठुर कर्तार ?''[7]

ऐसी स्थिति में जब मानव का संकुचित हृदय अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर परोपकारी की भी उपेक्षा और अवहेलना करता है, उसे पीड़ित करता है तब कवयित्री का संवेदनशील हृदय क्रंदन कर उठता है ।[8] अन्योक्ति का आश्रय लेकर वह आधिभौतिक बाधाओं से संतप्त कुसुम - कोमल प्राणियों को संसार की स्वार्थमयता की मार्मिक सांत्वना देती हुई सहानुभूति के स्वर में कह उठती हैं :

''मत व्यथित हो फूल ! किसको
सुख दिया संसार ने ?
स्वार्थमय सबको बनाया -
है यहाँ करतार ने !''[9]

इस जीवन-जगत् की विषयमता और दुःखसुखमयी स्थिति से कवयित्री व्याकुल हो जाती है । प्रकृति में व्याप्त हर्ष, माधुर्य, सौन्दर्य और जीवंतता जहाँ उसे उल्लसित करती है वही प्राणियों में व्याप्त विषाद, कटुता, कठोरता और चिंता से अभिभूत जड़ता उसे शोक-विह्वल कर देती है । असमंजस की स्थिति में वह निर्णय नहीं कर पाती कि क्या करें और किसे देखें :

''देखूँ खिलती कलियाँ या
प्यासे सूखे अधरों को,
तेरी चिर यौवन-सुषमा
या जर्जर जीवन देखूँ ।...
तेरे असीम आँगन की

देखूँ जगमग दीवाली,
या इस निर्जन कोने के
बुझते दीपक को देखूँ ।''[10]

प्राणिमात्र के कष्टों से उत्पन्न संवेदना से उदात्त भावों का प्रकटीकरण होता है । सहानुभूति आत्मत्याग के द्वारा पर-पीड़ा-हरण की प्रेरणा देती है । सहानुभूतिप्रवण होकर संवेदनशील हृदय 'स्व' और 'पर' से ऊपर उठकर विश्वबंधुत्व की ओर उन्मुख होता है । महादेवी की संवेदना में उनका व्यक्तिगत राग और उनकी पीड़ा घुल जाती है । उनका परदु:खकातर हृदय अपने सुखों की तुलना में संसार के दु:ख को अधिक महत्व देता है, और अपने असीम प्रिय से प्रार्थना करता है कि 'वह' भी इन दु:खों का अनुभव करे और फिर विश्व-वेदना को दूर करनेका प्रयत्न करें -

''मेरे हँसते अधर नहीं जग -
की आँसू - लड़ियाँ देखो ।
मेरे गीले पलक छुओ मत
मुर्साई कलियाँ देखो ।
मुझमें हो तो आज तुम्हीं 'मैं'
बन दु:ख की घड़ियाँ देखो ।
मेरे गीले पलक छुओं मत
बिखरी पंखुरियाँ देखों ।''[11]

महादेवी की करूणा लधुतम प्राण के लिए भी है मरू पाषाण के लिए भी –

"पथ न भूले, एक पग भी
घर न खोये, लघु विहग भी,
स्निग्ध लौ की तूलिका से
आँक सबकी छाँह उज्ज्वल ।
दीप मेरे जल अकंपित
घुल अचंचल ।"[12]

अपने हृदय में सबकी वेदना भर कर, मधुर स्वरों में गीत गाकर वे दु:ख को भी सुखमय बना देना चाहती है, अपने करूण-मधुर स्वर से वे पाषाण को निर्झर और मरू को उर्वर बना देना चाहती हैं । प्रस्तुत पंक्तियों में कवयित्री के आत्मविश्वासपरक भावुक हृदय का हृदयसंवादी परिचय प्राप्त होता है –

"एक घड़ी गा लूँ प्रिय मैं भी
मधुर वेदना से भर अन्तर;
दु:ख हो सुखमय सुख हो दु:खमय,
उपल बने पुलकित से निर्झर
मरू हो जावे उर्वर गायक ।
गा लेने दो क्षण भर गायक ।"[13]

महादेवी की असीम करूणा लोकव्यापी है । अपने जीवन के अणु अणु को गलाकर आत्मत्याग के द्वार वे अपरिमित सौरभ और प्रकाश का प्रसाद करना चाहती है । इस दिशा में दीपक उनका आदर्श है । उसी से प्रेरणा पाकर वे कामना करती है -

"मधुर मधुर मेरे दीपक जल !....
सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन,
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित
तेरे जीवन का अणु गल-गल ।"[14]

'अहं' के त्याग को महादेवी गुरूतम मानती हैं । उनके अनुसार : "मानव को मानवता की तुला पर गुरू होने के लिए स्वार्थ की दृष्टि से कितना हल्का होना पड़ता है, यह प्रश्न इतने दीर्घकाल में अनुभव के लम्बे पथ को पार कर स्वयं उत्तर बन गया है ।"[15]

प्रबल संवेदना से द्रवित महादेवी का हृदय समस्त विश्व को एक सूत्र में बाँधने के लिए प्रयत्नशील है । इसके लिए कवयित्री स्वयं गतिशील रहना चाहती है । परम ब्रह्म से वह प्रार्थना करती है कि पाथेय - रूप में अपना दृग-जल देकर वह उसे धरती के अंचल में भेज दे जिससे वह करूणा की अभिनव वाहक बनकर कण-कण का दु:ख दूर कर सके :

"मैं गीत विह्वल,
पाथेय रहे तेरा दृग-जल,
आवास मिले भू का अंचल,
मैं करूणा की वाहक अभिनव ।"[16]

महादेवी की करूणा अपने दु:ख से नहीं अपितु पीड़ित मानवता से उद्भूत हुई है । कवयित्री अपनी करूणा को उद्बुद्ध करके पीड़ित जगत् की सेवा में सक्रिय होने के लिए प्रेरित करती है -

"जाग बेसुध जाग ।
अश्रुकण से उर सजाया, त्याग हीरक-हार,
भीख दु:ख की माँगने फिर जो गया प्रतिद्वार,
शूल जिसने फूल छू चंदन किया, संताप,
सुन जगाती है उसी सिद्धार्थ की पदचाप
करूणा के दुलारे जाग ।"[17]

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि महादेवी केवल अपनी विरह - वेदना से ही व्यथित नहीं हैं, वरन् संसार की दु:खमयता उन्हें अधिक कष्ट पहुँचाती है । इन कष्टों से पलायन उन्हें स्वीकार नहीं । वे कर्म में विश्वास रखती हैं, इसीलिए उनका पर दु:खकातर हृदय दु:ख निवारण के लिए सदैव तत्पर रहता है । त्याग और उदारता आदि उच्चतर मानवीय गुणों से वे निरंतर विश्वप्रेम और 'वसुधैवकुटुंबकम्' की प्रतिष्ठा का प्रयास करती हैं ।

अत: महादेवी के काव्य का पूरा परिवेश इन्द्रियों में ज्जब होने के साथ काव्य-संवेदना का संस्कार बना है और उनकी पूरी काव्य-दृष्टि संवेदना से चलकर स्वानुभूति सत्य तक पहुँची है ।

2. युग-चेतना एवं व्यक्ति चेतना :

छायावाद के आलोचकों ने महादेवीजी की काव्यानुभूति को रहस्य - अध्यात्मवाद को छोड़ अन्य पहेलुओं की ओर न्यूनतम द्दष्टिपात किया हैं । यह आलोचना समय की सबसे बड़ी विडंबना रही । महादेवीजी के मूल विचारों पर रहस्यवादी - फ्रायडवादी मानदण्डों से लीपापोती होती रही । किसी ने उन्हें ''मैं नीर भरी दु:ख की बदली'' कहा तो कईने उनके काव्यों को निराशावाद, पलायनवाद, वेदनावाद और व्यक्तिवाद के घेरों में सिमित कर लिया । जबकि महादेवीजी की रचनाओं में युगीन नूतन द्दष्टि, युग-चेतना एवं व्यक्ति चेतना का संचार हुआ है । उनकी रचनाओं के पाठ पर भारतीय सांस्कृतिक नवजागरण के समूचे अर्थ - संदर्भ में द्दष्टि करना आवश्यक है । महादेवी के काव्य में सत्याग्रह युग की अंतर्ध्वनियाँ सुनाई देती है और उन अन्तर्ध्वनियों में युग की शक्ति-धारा का प्रवाह है, जिस से व्यक्ति के विभिन्न षुसुप्त भावों को चिनगारी मिलती है और लौ जल उठती है । किन्तु नवजागरण के इस स्वर को चालाकि से दबा दिया गया । उनकी कविताओं में दमित इस अर्थ ध्वनि को उजागर करने की आवश्यकता है ।

हिन्दी के ज्यादातर आलचकों की दृष्टि जितनी अन्य कवियों पर उदार रही उतनी महादेवी पर नहीं रही । कुछ विद्वानों को छोड़ महादेवी के संदर्भ में ज्यादातर की दृष्टि संकुचित एवं बुद्धि छोटी रही है । हिन्दी आलोच्य जगत के मर्दवाद ने महादेवी के सृजन - कर्म को अपना शिकार क्यों बनाया ? उनकी नारी-शक्ति पर आक्रमण एवं भारतीय संस्कृति को नज़र में रखकर नये किरण क्युं नहीं दृष्टित किये । महादेवी की काव्यानुभूति को अध्यात्म तक सीमित रखकर नव-चेतना के उषा रूचि किरणों को सांध्य किरण या रात्री के अंधकार में दफ्न कर दिया । उनके काव्य-शिल्प को बासी या पूराना कह गीतों को अपमाननित किया गया । इसी कारण महादेवी के अंतरमन की नारी उनके साहित्य में जागृत हुई और नारी - विमर्श का रूप धारण किया । आज महादेवी - काव्य के इस बंद पाठ को मूक्त किये बिना साहित्य सफर अधुरा ही रह जाएगा । महादेवी के काव्य को समझने के लिए तत् युगीन नव जागरण एवं संस्कृति की समझ लेना आवश्यक है ।

युग-चेतना के लिए सीमाएँ अनिवार्य हैं । विस्तृत परिवेश में योग्य मूल्यांकन करना कठिन समस्या बन जाती है । ऐसी अवस्था में कवि या साहित्यकार ही पूर्णयुग का परीक्षण कर सकते हैं । सामान्य व्यक्ति इसके मर्म को नहीं पहचान सकता । आज के मनुष्य में कल्याण कला का छोटे से छोटा अंकुर उगाने के लिए भी कवि को संपूर्ण जीवन का खाद्य, प्रसन्नता से देना होगा तभी वह उसे बचा सकता है । महादेवी जी का कहना है कि - ''इस युग के कवि के सामने जो परिस्थितियाँ हैं, उन पर में रंग फेरना नहीं चाहती । आज संगठित

जाति वीरगाथाकालीन युद्ध के लिए नहीं सज्जित हो रही है, जो कवि चारणों के समान खड़कों से उसे उतेजित मात्र करके सफल हो सके, वह ऐश्वर्य राशि पर बैठी पराजय भुलाने के साधन नहीं ढूँढ रही है, जो कवि विलास मदिरा को ढाल–ढालकर अपने आपको उसकी प्यास बुझा सके । वास्व में वह तो जीवन और चेतना के ऐसे विषम खंडों में फूटकर बिखर गई है जो सामंजस्य को जन्म देने में असमर्थ परस्पर विरोधी उपकरणों से बने जान पड़ते हैं । इसका कारण कुछ तो हमारा व्यक्ति प्रधान युग है और कुछ वह प्रवृत्ति जो हमें जीवन से कुछ न सीखकर अध्ययन से सब सीखने को बाध्य करती है । हम संसार भर की विचारधाराओं में जीवन के मापदण्ड खोजते – खोजते जीवन ही खो चुके है; अतः हम उन निर्जीव मापदण्डों की समष्टि मात्र है ।''[18]

आज हमारे जीवन में संतुलन, व्यवस्था एवं उच्च आदर्शों का अभाव है जिससे समाज में विकृतियाँ आ गई हैं । हम अपने व्यक्तिगत स्वार्थ और सुविधा के अनुसार तोड़ने फोड़ने का कार्य करते हैं । कहीं चट्टान पर सुनार की हथौड़ी का हल्का स्पर्श होता है, कहीं राख के ढेर पर लोहे के हथौड़े की गहरी चोट, जिसके परिणाम में अराजकता, द्वन्द्व, संघर्ष जैसी भयंकर परिस्थिति ही सर्जित होती है । इन्हीं परिस्थितियों के समाधान हेतु महादेवी के काव्योंमें युग–चेतना भी निर्मित है । जिसे विभिन्न परिस्थितियों में हम देख सकते हैं ।

2.1 सामाजिक जीवन :

सामाजिक जीवन में नर-नारी के प्रश्नों को उन्होंने प्रमुख स्थान दिया है । पुरूष की अपेक्षा नारी का समर्थन किया है । आज जिस विज्ञान, मनोविज्ञान, कला और साहित्य के माध्यम से भोगवाद का समर्थन तथा प्रचार हो रहा है, वह 'वासना' का ही एक रूप है ।

''खिल गया जब पूर्ण तू -
मंजुल सुकोमल पुष्पवर !
लुब्ध मधु के हेतु मंडरातें
लगे आने भ्रमर ।''[19]

महादेवीजी का कहना है - ''यदि वह पुरूष की इस प्रवृति को स्वीकृति देती है तो जीवन को बहुत पीछे लौटा के जाकर एक श्मशान में छोड़ आती हैं और यदि उसे स्वीकार करती है तो समाज को पीछे छोड़ शून्य में आगे बढ़ जाती है ।[20] महादेवी के ऐसे काव्यों पर कृष्णदत्त पालीवाल अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं - ''सबल, शक्तिमान 'दुर्गा-भाव से भरी नारी का बिंब उभरता है । अंगरों पर चलने वाली काव्यानुभूति में हर शब्द शक्ति स्त्रोत लिए है ।''[21] इस परिस्थिति में नारी को अपना मार्ग स्वयं चुनना होगा क्योंकि स्त्री के जीवन-तार को जिसने तोड़कर उलझा डाला है, उसके अणु को निर्जीव बना दिया है, जिससे वह अपने स्वर्णिम संसार को धूल के मोल लेती रही है । उस आदिम पुरूष के विश्वास को स्त्री मार्गदर्शन रूप में नहीं

स्वीकार करती । अब वह इतनी स्वतंत्र है कि अपने भविष्य का स्वयं निर्णय कर सकती है ।

2.2 धार्मिक परिस्थिति :

आधुनिक धार्मिक वृति भी संतोषजनक नहीं, समाज की भाँति धर्म में भी अनेक विकृतियाँ आ चुकी हैं । एक चल नहीं सकता, दूसरा वृत बनाता हुआ एक पैर से दौड़ लगा रहा है । धर्म की अधोगति का एक भयंकर परिणाम यह हुआ कि हमारे मन से आस्तिकता और आस्था विदा हो गई । इस समय व्यक्ति का जीवन के प्रति अविश्वास, सृजन के प्रीत अनास्थावान् हो जाना अनिवार्य है । धर्म के पतन एवं ईश्वर के प्रति अनास्था ने हमारे जीवन की प्रेरणाओं एवं आशाओं को ही समाप्त कर दिया है । ''धर्म ही मुक्ति का सन्देश देता हैं - रूढ़ियों - जड़ताओं - विकृतियों के विरूद्ध निरन्तर संघर्ष और मानव मुक्ति का आह्वान ।''[22]

महादेवी ने ऐसे आह्वान को स्वीकार किया । अपने काव्यों में ईश्वरीय भाव दर्शाने हेतु प्रकृति के विभिन्न रूपों एवं बिंबों का प्रयोग किया है । प्रकृति में महादेवी की अगाध आस्था रही है । उन्होंने प्रकृति में अपना अलौकिक प्रियतम ईश्वर के दर्शन किये है ।

''मेरी चितवन खींच गगन के कितने रँग लाई !
शतरंगों के इंद्रधनुष सी स्मृति उर में छाई;''[23]

"महादेवी हृदय में परमतत्व के अस्तित्व का बोध करते हुए द्वैत - अद्वैत में सामंजस्य स्थापित कर लेती है ।"[24] उन्होंने द्वैत-अद्वैत एवं जीवन-मरण को इस प्रकार व्यक्त किया है -

"क्या जीने का मर्म यहाँ मिट मिट सबने जाना ?
तर जाने को मृत्यु कहा क्यों बहने को जीवन ?
सृष्टि मिटने पर गर्वीली !"[25]

2.3 राजनीतिक स्थिति :

राजनीतिक स्थिति तो धर्म की स्थिति से भी अधिक घातक है । भारतीय दृष्टि से यहाँ दो राजनीतिक विचारधाराएँ प्रमुख है । एक गाँधीवादी और दूसरी साम्यवादी । महादेवीजी ने गाँधीवाद का समर्थन अवश्य किया है क्योंकि यह बाह्य दृष्टि से राष्ट्र का संयुक्त मोर्चा तथा आंतरिक दृष्टि से भारतीय संस्कृति का पुनर्जागरण था । साम्यवाद को तो भारतीय भूमि पर अपरिचित एवं अनावश्यक ही मानती हैं । उनके शब्दों में - "उनकी स्थिति ऐसी ही है जैसी पैराशूट से इस धरती पर उत्तर आने वाले रूसी की हो सकती थी, जिसकी मित्रता में विश्वास करके भी हम, जिसके इस देश संबंधी ज्ञान में संदेह करेंगे, जिसने अपनी संस्कृति और जीवन का मूल्य समझने का प्रयत्न करेंगे और न समझने पर खीझ उठेंगे ।"[26]

गांधीवादी विचारधारा का समर्थन करते हुए वह 'ध्वज-गीत' में लिखती है -

"श्वेताभा में सत्य अहिंसा
एक संग है,
हरिताभा में व्यक्त
भावना की उमंग है ।[27]

कृष्णदत्त पालीवाल महादेवीजी की राजनीतिक सोच पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते है - "सत्याग्रह युग के गांधी-स्पर्शने महादेवी की काव्यानुभूति में आत्म-बलिदान, आत्म-समर्पण, एकाग्र चिन्तन के तत्वों को स्थान दिया । गाँधीजी के जागरण को बड़ी तड़प और लालसा से महादेवीने ऊँचाई तक पहुँचाया है ।"[28] तत्‌युगीन स्थिति एवं इस वक्त की राजनीति में जमीन - आसमान का फर्क दिखाई देता है । विश्व की भाँति राजनीति भी एक पहेली बन गई है जो सायद कभी भी सुलझ नहीं सकेगी ।

महादेवी की दृष्टि न तो मध्यकालीन विश्वासों के घेरे में आबद्ध है और न ही आधुनिक युग चेतना व व्यक्ति चेतना से असंपुक्त है । युग एवं व्यक्ति विकास के संदर्भ में उनका चिंतन प्रत्येक दृष्टि से संतुलित एवं सूक्ष्म है । अतीत और भविष्य की व्यापक परिधियों के परिप्रेक्ष्य में देखती हुई अपनी दूरदर्शिता का भी परिचय देती हैं, उनकी दृष्टि सामयिकता के धूंधले वातावरण तक ही सीमित नहीं है, अपितु वह उससे आगे और पीछे के दृश्यों को भी देख पाने की क्षमता से युक्त है । इसीलिए उन्होंने आधुनिक समाज, धर्म, अर्थ, शिक्षा, राजनीति, ज्ञान-विज्ञान तथा साहित्यिक आदि सभी परिवेशों का सूक्ष्म

विश्लेषण करते हुए युगीन विषमताओं एवं समस्याओं का निदान एवं समाधान पूर्ण आत्मविश्वास के साथ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है । महादेवीने इस विश्वास को अपने शब्दों में व्यक्त किया है - " हमारा युग दुर्बलताओं और ध्वंश का युग है और दुर्बलता तथा ध्वंश जितने प्रसारगामी होते हैं, शक्ति और निर्माण उतने नहीं हो सकते । शक्ति और गुण मनुष्य को असाधारणता देते हैं, अतः उन्हें दूसरे तक अनायास पहुँचा देना संभव नहीं । दूसरे व्यक्ति यदि इस असाधारणता के प्रति श्रद्धालु हैं तो यह पूजा की वस्तुमात्र रह जाएगी और यदि ईर्ष्यालु हैं तो यहाँ इसका विकृत कायाकल्प हो जाएगा ।"[29] कहना न होगा कि महादेवी में काव्यानुभूति बनाम जीवनानुभूति रागात्मिकावृत और बुद्धि का वह संश्लेष है जिसमें युग-यथार्थ का चेहरा झलकता है । वर्तमान युगीन पीढ़ी एक अत्यंत लंबी और अंधकारमय गुफा के बीच से गुजर रही है । इसे जराभी चिंता नहीं कि वह कब, कहाँ, किस चट्टान से टकराकर घायल होगी ।

3. काव्य-विषय वस्तु :

यद्यपि सभी विषयों पर कविता लिखी जा सकती है फिर भी कवि अपनी रूचि, प्रकृति, प्रवृति एवं धारणा के अनुसार ही विषय-वस्तु का चयन करता है । कवि का विषय-वस्तु सम्बन्धी दृष्टिकोण न केवल उसकी काव्य-वस्तु की सीमाएँ निर्धारित करता है अपितु उसके समस्त काव्य-व्यक्ति एवं कवि-कर्म की अनेक विशेषताओं एवं प्रकृतियों का भी प्रेरक सिद्ध होता है ।

काव्य भावानुभूतियों की अभिव्यक्ति का अन्यतम साधन है । वह मनुष्य के अंतर का विस्तार करने के साथ - साथ उसकी संवेदना और भाव-बोध का परिष्कार भी करता है । छायावाद में जिस स्वानुभूति की व्यंजना हुई है वह सहानुभूति और संवेदना से संवलित है व्यक्तिनिष्ठ होते हुए भी समष्टिगत चेतना से युक्त है । उस वैशिष्टय को रेखांकित करती हुई महादेवी लिखती है : ''छायावादने कोई रूढ़िगत अध्यात्म या वर्गगत सिद्धान्तों का संचय न देकर हमें केवल समष्टिगत चेतना और सूक्ष्मगत सौन्दर्य-सत्ता की ओर जागरूक कर दिया ।''[30] वे सिद्धान्त रूप में किसी भी विषय को काव्य के लिए अनुपयुक्त घोषित नहीं करतीं, अपितु वे हर विषय में काव्यत्व के स्फूरण की क्षमता स्वीकार करती है । उन्होंने एक स्थल पर स्पष्ट किया है -'' काव्य की उत्कृष्टता किसी विशेष विषय पर निर्भर नहीं, उसके लिए हमारे हृदय को ऐसा पारस होना चाहिए जो सबको अपने स्पर्श-मात्र से सोना कर दे ।''[31] काव्य और अन्य कलाओं में महत्व विषय का नही किन्तु कलाकार की उस संवेदना-शक्ति का है जिसके बल पर वह निर्जीव को सजीव में, सूक्ष्म को स्थूल में एवं तथ्य को भाव में परिणत कर देता हैं । महादेवी भी अपनी संवेदनाओं को निरूपित करती है -

''जो ले कम्पित लौ की तरणी
तम-सागर में अनजान बहा,
हँस पुलक, मरण का प्यार सहा,
मैं सस्मित बुझते दीपक में
सपनों का लोक बसा जाती !''[32]

काव्य के संबंध में महादेवी की एक विशिष्ट धारणा है । काव्य को अन्य कलाओं में सर्वोपरि मानते हुए वे सत्य को काव्य का साध्य स्वीकार करती है : ''काव्य में कला का उत्कर्ष एक ऐसे बिन्दु तक पहुँच गया, जहाँ से वह ज्ञान को भी सहायता दे सका क्योंकि सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य उसका साधन है ।''[33] इससे स्पष्ट है कि काव्य और कलाएँ सौन्दर्य (भावना और अनुभूति) के माध्यम से ही सत्य तक पहुँचती है । सत्य ज्ञान का परिचायक है और ज्ञान विचार-बुद्धि से संबंध रखता है । अतः यह स्पष्ट है कि विचार और अनुभूति का सामंजस्य साहित्य और कला दोनों के लिए आवश्यक है । कविता हृदय को स्पर्श करती है इसलिए उसमें अनुभूतियों की प्रधानता होती है और विचार गौण हो जाते हैं ।

महादेवी के विचार से कविता के लिए किसी विशेष पर बल देना अनाव्यश्यक है । साथ ही वे यह भी स्पष्ट करती हैं कि मानव हृदय की मूल प्रेरणा सर्वत्र एक ही है, अतः जो भी विषय मानव-हृदय से उच्छवासित होगा वह सभी मनुष्यों के हृदय को छू सकेगा । ''कितनी ही भिन्न परिस्थितियों के होने पर भी हम हृदय से एक ही है : यही कारण है कि दो मनुष्यों के देश, काल, समाज आदि में समुद्र के तटों जैसा अन्तर होने पर भी वे एक-दूसरे के हृदयगत भावों को समझने में समर्थ हो सकते हैं । जीवन की एकता का यह छिपा हुआ सूत्र ही कविता का प्राण है ।''[34]

महादेवी का काव्य आत्मनिष्ठ है । प्रणय-विरह जन्य-वेदना और पीड़ा की अनुभूति ही उनके काव्य का प्रतिपाद्य है ।

"दु:ख का युग हूँ या सुख का पल,
करूणा का धन या मरू निर्जल;
जीवन क्या है मिला कहाँ
सुधि भूली आज समूल !"[35]

पीड़ा का साम्राज्य बसाकर प्रियतम के अभाव का अनुभव करना उन्हें इसलिए प्रिय है क्योंकि वह उन्हें समस्त संसार से जोड़े रखता है । यह पीड़ा ही मानवता, करूणा, संवेदना आदि उदात भावों की संचालिका है ।[36] भावप्रवणता उनके काव्य की विशेषता है ।

काव्यगत विषय - वस्तु के संबंध में महादेवी का दृष्टिकोण अत्यंत उदार और व्यापक है:" काव्य की उत्कृष्टता किसी विशेष विषय पर निर्भर नहीं, उसके लिए हमारे हृदय को ऐसा पारस होना चाहिए जो सबको अपने स्पर्श मात्र से सोना कर दे ।"[37] हृदय की सच्ची अनुभूति ही काव्य की प्रेरक है । महादेवी के सर्जन व्यक्तितत्व में कवि का हृदय, कलाकार की कल्पना और विचारक का मस्तिष्क है । काव्य में भावना और कल्पना के आधिक्य से विचार को विशेष प्रश्रय नहीं मिल पाता । विचाराधिक्य से काव्य बोझिल हो जाता है और उसकी तरलता मधुरता नष्ट हो जाती है । प्रातिभ कवयित्री महादेवी का काव्य प्रणय, वेदना, करूणा, मानवता जैसे सांवेदिक भावों से ओतप्रोत है । विचारों का प्रकाशन यत्र-तत्र ही हुआ, किन्तु वह भी भाव की सरसता से युक्त है ।

4. चिंतनात्मकता :

महादेवी एक सौन्दर्य-चेतना कलाकार और प्रबुद्ध चिंतक है । उनका चिंतक मौलिक है, भावलोक स्वनिर्मित है, कल्पनाएँ नई हैं, अनुभूतियाँ वैयक्तिक है और इन सब की अभिव्यक्ति का विधान विशेष है । प्राचीन परम्पराओं में उनकी आस्था है, अंधविश्वास नहीं नवीनता का आग्रह उन्हें स्वीकार है, किन्तु किसी सीमा तक । अपने युग का प्रतिनिधित्व वह आज भी कर रही हैं । पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन उन्हें मान्य है, परंतु उसका अंधानुकरण नहीं । वैदिक और बौद्धिक दर्शनों में उनकी गहरी आस्था है, किन्तु केवल उन्हीं सिद्धान्तों में जो उनके सर्ववादी या सर्वात्मवादी आस्तिक जीवन-दर्शन से मेल खाते है । महादेवी का यह चिंतन अथवा 'काव्य-दर्शन' उनकी कठोर बौद्धिकता और कोमल भावनाओं के सामंजस्य से अस्तित्व में आया है । इसलिए उसमें न तो नास्तिक दर्शनों के संदेहवाद या अनास्थापूर्ण कृत्यों की छाया है न अतिविश्वासी भाग्य या ईश्वरवादियों जैसी आत्महीनता का रंग । जीवन-मरण, स्वर्ग-अपवर्ग, सुख-दुःख, काव्य-कला और जीवन का संबंध, जीवन में इनकी उपयोगिता और प्रयोजन, आदर्श और यथार्थ, छायावाद, रहस्यवाद अथवा उपयोगितावाद उनकी मौलिक विचारणाएँ हैं । इनके प्रति उनकी स्वतंत्र मान्यताएँ और निजी धारणाएँ है, जिनका प्रकटीकरण उन्होंने अपने सारे कृतित्व में जहाँ-तहाँ किया है । उनके इन्हीं विचारों की जानकारी ही महादेवी के महानत्व को समझने में उपयोगी है ।

4.1 जीवन-मरण :

जीवन-मरण सबन्धी उनकी विचारणा है कि -

''मृत्यु जीवन का परम विकास...''[38]

बात विलक्षण लगती है, किन्तु है यह अटल सत्य । जीवन की गतिशीलता 'कर्म' में और उसे नवीनता प्रदान करने की शक्ति परिवर्तन में है । संसार का सबसे बड़ा परिवर्तन है 'मरण' क्योंकि वह मानव को नया चोला बदलने की सुविधा देता है । यौन कर्मो की निरंतरता, जिससे जीवन का विकास होता है । हिन्दुधर्म में पुर्नजन्म अथवा आवागमन की कल्पना इसी विकास अथवा 'कर्मनैरन्तर्य' की ओर संकेत करती है । किन्तु महादेवी की प्रसन्नता का कारण केवल यह नहीं कि मृत्यु से नया जीवन जन्म लेता है, बल्कि उन्हें इसी की प्रसन्नता है कि यह मृत्यु या 'मिटने की शक्ति' ही उन्हें असंख्य जीवनों को जन्म देने का श्रेय प्राप्त करा सकती है । 'एक मिटने में सौ वरदान' से उनका यह अभिप्राय स्पष्ट होता है ।

''स्निग्ध अपना जीवन कर क्षार
दीप करता आलोक- प्रसार;
गला कर मृत्पिण्डों में प्राण
बीज करता असंख्य निर्माण ।
सृष्टि का है यह अमित विधान
एक मिटने में सौ वरदान,''[39]

इस प्रकार बलिदान अथवा 'आत्मदान' को ही वह जीवन की सार्थकता और उसका चरम विकास मानती हैं । अत: मिटना या मरण उनके उल्लास का कारण है ।

4.2 स्वर्ग-अपवर्ग और अमरत्व :

स्वर्ग-अपवर्ग और अमरत्व के विषय में भी उनकी अपनी मौलिक मान्यता है 'स्वर्ग' के अस्तित्व को स्वीकार करके भी उनके 'अति-सुखवाद' के कारण उसकी प्राप्ति अस्वीकार है, क्योंकि -

''जलना जाना नहीं, नहीं -
जिसने जाना मिटने का स्वाद !''[40]

यदि ऐसे संवेदनाहीन सुख-भोगी जीवों का आवास है स्वर्ग तो फिर उन्हें यह कल्पना भी आतंकित करती हैं -

''क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करूणा का उपहार ?
रहने दो देव ! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार !''[41]

और अपने इस 'मिटने के अधिकार पर उन्हें गर्व है । अपनी नश्वरता का अभिमान और लघुता की उल्लासमयी अनुभूति हैं ।

''जब असीम से हो जाएगा
मेरी लघु सीमा का मेल,

देखोगे तुम ! अमरता
खेलेगी मिटने का खेल !''[42]

x x x

भिक्षुक से फिर जाओगे
जब लेकर अपना यह धन,
करूणामय तब समझोगे
इन प्राणों का मंहगापन !''[43]

इस प्रकार जहाँ भक्त कवियों ने अपनी 'नश्वरता' को अभाग्य अथवा 'हीनता' कहकर अपने आराध्य के आगे अपने दैन्य की अभिव्यक्ति की है, वहाँ महादेवी उसी का अभिमान लिए हुए हैं । मोक्ष की जगह कर्मठ जीवन या संघर्षमय 'आत्मवाद' की कामना और 'स्वर्ग' के बदले अपने सुख-दु:खमय जगत का वास ही उन्हें काम्य है । जीवन की क्षण-भंगुरता और जगत की नश्वरता उनकी करूणा और संवेदना को तो जगती है, विरक्ति को नहीं । संसार की नश्वरता पर उन्हें वैराग्य नहीं विवेक की उजागरता प्राप्त होती है । हाँ संसारियों की स्वार्थपरता की शिकायत उन्हें अवश्य हैं, किन्तु उसका प्रतिकार विद्रोह से नहीं सहनशिलता से करने की प्रेरणा वे देती है ।

4.3 सुख-दु:ख :

सुख-दु:ख सम्बन्धी उनका चिंतन भी सामान्य धरातल पर नहीं हुआ । ''व्यक्तिगत सुख विश्ववेदना में घुल कर जीवन को सार्थकता प्रदान करता हैं और व्यक्तिगत दु:ख विश्व के सुख में घुल कर जीवन

को अमरत्व ।''[44] व्यक्तिगत जीवन में 'दु:ख' उनके उस अवाचित सुख सम्मान की प्रतिकृति है जो उन्हें जीवन में भरपूर मिला है । समष्टि जीवन में उन्हें दु:ख के दो रूप दिखाई दिए हैं । एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बन्धन में बान्ध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है । इनमें से पहला प्रकार उनके गद्य में और दूसरा उनके गीतों में अभिव्यक्त हुआ है । सिद्धान्त रूप में दु:ख उनके निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो संसार को एक-सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है । इस प्रकार जो 'दु:ख' जन-साधारण के लिए क्लेश और 'आतंक' का कारण है, वही महादेवी के लिए आनन्ददायी है -

''जिसकी विशाल छाया में
जग बालक सा सोता है,
मेरी आँखों में वह दु:ख,
आँसू बन कर खोता है !''[45]

इस प्रकार दु:ख या वेदना अथवा पीड़ा उनका काव्यमय जीवन या उनका जीवन-काव्य है ।

4.4 आँसू :

आँसू उनके काव्य की व्याख्या है । वे आँसू को सरसता का 'शक्तिपुंज' समझती है । उनका विश्वास है कि - ''हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें, किन्तु हमारा

एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता ।''[46] इसीलिए वह 'आँसू' को अपनी निधि समझती है -

''आँखें मोतीयों का देश...''[47]

अपने 'प्रिय-मिलन' का 'प्रतीक' अथवा स्मृति-चित्र समझती हैं-

''कैसे कहती हो सकना है
अलि ! उस मूक मिलन की बात ?
मरे हुए अब तक फूलों में
मेरे आँसु उनके हास !''[48]

इस प्रकार वेदना और 'आँसू' उनके जीवन का मूल भाव और उनके काव्य की मूल प्रेरणा है । उनकी पीड़ा चाहे अपने जन्मकाल में 'वैयक्तिक' है, किन्तु आज उसका रूप सर्व व्यापी है, इसलिए अब उन्हें -

''सब आँखों के आँसू उलझे, सबके सपनों में सत्य पला !''[49]

दिखाई देते हैं महादेवी का 'वेदनादर्शन' जैसे अखिल मानवता का जीवन दर्पण है ।

4.5 प्रणय :

प्रणय समबन्धी धारणा भी महादेवी की अनोखी है । उनकी प्रणयाभिव्यक्ति स्वकीया भाव की है, किन्तु वह कृष्ण-भक्ति के सखी-सम्प्रदाय अथवा रीतिकाल के नायिका भेद की परम्परा में नहीं

आती। उनकी विरह-वेदना अपार है, पर वह 'मीरा' का प्रतिबिंब मात्र नहीं। उनमें रहस्य साधकों जैसी अरूप और अज्ञात के प्रति तड़प है, किन्तु वह सूफी 'प्रेमपीर' अथवा ज्ञान मार्गियों के 'विरह बान' की कसक नहीं। श्रृंगार-मंडन की ललक और उसका आडम्बर - आयोजन उनके काव्य में भी दिखाई देता है, किन्तु वह रीतिकाल की 'नख-शिख' परम्परा में नहीं आता। इनके सबके सम्मिलित रूप पर उनके अपने वैयक्तिक सुहाग का रंग चढ़ा हुआ है जिस पर नारी-सुलभ संयम, शालीनता और गोपन की प्रवृति के गंभीर रंग (सोबर-कलर) झिलमिलाते है। स्वयं उन्होंने अपने इस अनोखे स्नेह - संबंध के विषय में कहा है - ''परा विद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अध्ययन की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक - प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य - सूत्र में बाँधकर एक निराले स्नेह-सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली जो मनुष्य के लक्ष्य को अवलम्ब दे सका। उसे पार्थिव-प्रेम से उपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय कर सका।''[50]

अस्तु ! स्पष्ट है कि महादेवी की प्रणयानुभूति में, 'प्रेमावेश' अथवा विरह उद्वेग नहीं। वह एक संयत प्रणयनी का अपने उस अज्ञात 'प्रिय' के प्रति वह 'प्रणय-निवेदन' है जो 'वैयक्तिक' उपालम्भ से ऊपर उठकर समष्टि 'आत्माओं' की 'पुकार' बन गया है।

''प्रथम प्रणय की सुषमा सा
यह कलियों की चितवन में कौन ?

कहता है, मैंने सीखा उनकी –

आँखों सके सस्मित मौन ।''[51]

उसमें एकात्मकता और आत्म-निवेदन एक साथ समाहित है ।

4.6 काव्य क्या है ? :

काव्य क्या है ? इसके उत्तर में महादेवी ने कहा है – ''काव्य में तो जीवन का निरन्तर स्पर्श और उसकी मार्मिक अनुभूति सबसे अधिक अपेक्षित है ।''[52] इस विचार की पूर्ति उनकी इन पंक्तियों में होती है –

''पूछता क्या दीप है आलोक का आवास ?

सिन्धु को कब खोजने लहरे उड़ी आकाश !''[53]

सत्य को वे काव्य का साध्य मानती है ओर सौन्दर्य के उस सत्य को प्रतिपादन का साधन । काव्य-कला का विवेचन करते हुए उन्होंने उसमें बुद्धि और भावना, स्वप्न और यथार्थ, भौतिक और अध्यात्म तथा उपयोगिता और संस्कारिता के सामंजस्य की आवश्यकता समझी है ।

4.7 आदर्श और यथार्थ :

आदर्श और यथार्थ सम्बन्धी उनकी विचारणा है कि – ''चरम सीमा पर यथार्थ जैसे विक्षिप्त गतिशील है वैसे ही आदर्श निष्क्रियता में स्थिर हो जाता है । एक विविध उपकरणों का बवंडर है और दूसरा पूर्ण निर्मित पर अचल मूर्ति । साधारणतः जीवन में एक ही व्यक्ति यथार्थदर्शी भी है और आदर्शस्रष्टा भी, चाहे उसका यथार्थ कितना ही अपूर्ण हो

और आदर्श कितना ही संकीर्ण । जीवन की ऐसी स्थिति की कल्पना तो पशु जगत की कल्पना होगी जिसमें बाह्य संसार का ज्ञान मनुष्य के अन्तर्जगत में किसी सम्भाव्य संसार की छाया नहीं आँकता । जो है, उसके साथ हमारे सक्रिय सहयोग के लिए यह कल्पना आवश्यक है कि इसे कैसा होना चाहिए ।

''कब सागर उर पाषाण हुआ, कब गिरि ने निर्मर तन बदला ?''[54]

इस प्रकार साहित्य में आदर्श और यथार्थ के समन्वय के लिए महादेवी का उग्र आग्रह है । साहित्य में इन दोनों की स्थिति 'तन-प्राण' की सी बताकर उन्होंने दोनों की अनिवार्यता सिद्ध कर दी है ।

4.8 कला और सौंदर्य :

कला और सौन्दर्य सम्बन्धी उनके विचार भी अपने ही है । उनका कहना है कि कला जीवन की विविधता समेटते हुए आगे बढ़ती है । जीवन की विशिष्टताओं, विविधताओं को अभिव्यक्ति देना ही कला है । इसे स्पष्ट करते हुए वे कहती हैं - ''व्यष्टि और समष्टि में समान रूप से व्याप्त जीवन के हर्ष-शोक, आशा-निराशा, सुख-दुःख आदि की संख्यातीत विविधता को स्वीकृति देने के लिए ही कला - सृजन होता है ।''[55] कला हर हंमेश सौन्दर्यात्मक ही होती है - ''प्रत्येक सौन्दर्य या प्रत्येक सामज्जस्य की अनुभूति भी रहस्यानुभूति है ।''[56] इसी सौन्दर्य का परिचय देते हुए वह काव्य-कला और जीवन को अखंडित संबंध में बाँध देती है - ''सौन्दर्य से हमारा वह परिचय है जो

अनन्त जलराशि में एक लहर का दूसरी लहर से होता है ।''[57] मानस में छिपे सौंदर्य को काव्य-कला शाब्दिक अभिव्यक्ति देती है -

''छिपे मानस में पवि नवनीत,
निमिष की गति निर्झर के गीत,
अश्रु की उर्म्मि हास का वात,
कुहू का तम माधव का प्रात !''[58]

❁ **निष्कर्ष :**

इस प्रकार महादेवी आज की एक युग द्रष्टा कलाकार हैं, जो युग-दर्शन और आत्म-दर्शन का समन्वित रूप अपने कृतित्त्व में संजोए चल रही है । उनके कला-जीवन की सबसे बड़ी शक्ति है उनकी अनुभूति जिसे वे 'मधुर' मानती हैं । उनकी दृष्टि में 'सत्य शुष्क होता है' जिसे अनुभूति ही मधुर और आनन्दमय बनाती है । इन वैयक्तिक प्रवृत्तियों की तरह साहित्य, कला, सौन्दर्य तथा छायावाद रहस्यवाद आदि साहित्य-प्रवृत्तियों के लिए भी उनकी अपनी मौलिक धारणाएँ हैं ।

🕮 संदर्भ ग्रंथ सूचि :

1. 'यामा' महादेवी वर्मा, पृ.157
2. वही, पृ.190
3. वही, पृ.82
4. वही, पृ.239
5. 'दीपशिखा' वही, पृ.109
6. 'यामा' वही, पृ.88
7. वही, पृ.63
8. वही, पृ.29-30
9. वही, पृ.30
10. वही, पृ.101-102
11. वही, पृ.154-155
12. 'दीपशिखा' वही, पृ.70
13. 'यामा' वही, पृ.156
14. वही, पृ.149
15. वही, (अपनी बात) पृ.5
16. 'दीपशिखा' वही, पृ.74
17. वही, पृ.198
18. 'आधुनिक कवि भाग-1 महादेवी वर्मा', (अपने दृष्टिकोण से), पृ.6
19. 'नीहार', महादेवी वर्मा, पृ.40
20. 'महादेवी नया मूल्यांकन', गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ.98
21. 'रंग-प्रसंग' (त्रैमासिक पत्रिका - वर्ष-9 अंक-5, जनवरी, मार्च - 2007) कृष्ण दत्त पालीवाल, पृ.100

22. वही, पृ.99
23. 'महादेवी साहित्य समग्र-1' (सांध्यगीत), सं. निर्मला जैन, पृ.285
24. 'साहित्य-प्रभा' (पत्रिका-डॉ. कमलेश रानी अग्रवाल, अप्रैल-जून-2007, वर्ष-6 अंक-2 पृ.42
25. 'महादेवी साहित्य समग्र-1' (सांध्यगीत), सं. निर्मला जैन, पृ.285
26. 'महादेवी : नया मूल्यांकन', डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ.100
27. 'महादेवी साहित्य समग्र-1', (सांध्यगीत), सं. निर्मला जैन, पृ.468
28. 'रंग-प्रसंग'(पत्रिका) जनवरी-मार्च-2007, कृष्णदत्त पालीवाल, पृ.96
29. 'महादेवी साहित्य समग्र-1', (दीपशिखा-भूमिका) सं. निर्मला जैन, पृ.590
30. 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध', महादेवी वर्मा, पृ.71
31. 'महादेवी : नया मूल्यांकन', डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ.35
32. 'दीप-शिखा', महादेवी वर्मा, पृ.135
33. 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध', महादेवी वर्मा, पृ.30
34. 'महादेवी : नया मूल्यांकन', डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ.42
35. 'रश्मि', महादेवी वर्मा, पृ.63
36. 'यामा' वही, पृ.11 (अपनी बात)
37. 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध', महादेवी वर्मा पृ.53
38. 'महादेवी साहित्य समग्र-1' ('रश्मि') सं. निर्मला जैन, पृ.115
39. वही, पृ.116
40. 'नीहार' महादेवी वर्मा, पृ.17
41. वही, पृ.17
42. वही, पृ.14

43. वही, पृ.27

44. 'रश्मि' वही, पृ.6

45. 'नीहार', वही, पृ.28

46. 'रश्मि' (अपनी बात), वही, पृ.6

47. 'दीपशिखा' वही, पृ.119

48. 'नीहार', वही, पृ.12

49. 'दीपशिखा' महादेवी वर्मा, पृ.111

50. 'महादेवी व्यक्तित्व और कृतित्व', गोपीनाथ 'व्यथित', पृ.88

51. 'नीहार', महादेवी वर्मा,पृ.77

52. 'दीपशिखा' वही, पृ.44

53. 'रश्मि' वही पृ.39

54. 'दीपशिखा' वही, पृ.111

55. वही पृ.18

56. वही पृ.27

57. वही पृ.28

58. 'रश्मि' वही, पृ.28

पंचम अध्याय

पँचम अध्याय
''महादेवी के काव्यों में आध्यात्मिक-चेतना''

❋ **प्रस्तावना :**

1. **लौकिक प्रेमाभिव्यंजना :**

2. **अलौकिक प्रियतम :**

3. **रहस्य भावना :**

3.1 जिज्ञासा

3.2 आस्था

3.3 प्रणयानुभूति और मिलनाकांक्षा

3.4 विरह-वेदना

3.5 अभिन्नता बोध

4. **करूणा एवं दु:ख :**

4.1 करूणाभाव :

4.2 दु:खवाद :

4.2.1 दु:खवाद के मूलाधार :

4.2.1.1 व्यक्तिगत सुख की प्रतिक्रिया

4.2.1.2 बौद्ध का प्रभाव

4.2.1.3 पूर्वजन्म के संस्कार,

4.2.1.4 मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक - दृष्टि से दु:ख का महत्त्व

4.2.2 दु:ख सम्बन्धी विभिन्न भावात्मक प्रवृत्तियाँ :

4.2.2.1 प्रवृत्ति में दु:ख का प्रत्यक्षीकरण,

4.2.2.2 सुख और दुःख में द्वन्द्व, दुःख की साधन-रूप में स्वीकृति,

4.2.2.3 दुःख साध्य रूप में

5. दर्शन अध्यात्म :

5.1 ब्रह्म, 5.2 जीव, 5.3 माया, 5.4 जगत्, 5.5 मुक्ति

6. रस-निरूपण :

6.1 स्थायी भाव :

6.1.1 श्रृंगार :

6.1.1.1 संयोग श्रृंगार, 6.1.1.2 विप्रलंभ श्रृंगार

6.1.2 अद्भूत रस :

6.1.3 भयानक रस :

6.1.4 भक्ति रस :

6.2 संचारी भाव :

(6.2.1) चपलता, (6.2.2) औत्सुकता, (6.2.3) आवेग, (6.2.4) हर्ष, (6.2.5) व्रीड़ा, (6.2.6) गर्व, (6.2.7) मद, (6.2.8) श्रम, (6.2.9) मति, (6.2.10) स्मृति, (6.2.11) धृति, (6.2.12)चिंता, (6.2.13) विषाद, (6.2.14) दैन्य, (6.2.15) जड़ता, (6.2.16) व्याधि, (6.2.17) उन्माद, (6.2.18) त्रास, (6.2.19) मरण

7. प्रकृति-प्रेम :

8. राष्ट्र-प्रेम :

9. मानवतावादी भावना :

❁ निष्कर्ष :

पँचम अध्याय

''महादेवी के काव्यों में आध्यात्मिक-चेतना''

❁ प्रस्तावना :

मानव जीवन अनुभूतियों की संसृति है और कविता भाव अथवा संवेदनों की कथा है । कवि अपनी सुंदर भावानुभूति की अभिव्यक्ति सौन्दर्यपूर्ण विधान से करता है, अर्थात् ''काव्य वास्तव में मनुष्य के सुख-दु:खात्मक संवेदनों की ऐसी कथा है, जो उक्त संवेदनों को संपूर्ण परिवेश के साथ दूसरों की अनुभूति का विषय बना देती है''[1] अत: किसी कवि के काव्य सौन्दर्य के विवेचनार्थ उस कवि द्वारा अभिव्यंजित भावानुभूतियों का विश्लेषण अपेक्षित होता है । महादेवी की कविता में उनकी भावानुभूतियों की सुंदर व्यंजना हुई है ।

अभिव्यक्ति पक्ष से भी अधिक प्रभावित उसका प्रभावित उसका अनुभूति पक्ष रहा है । कोई भी काव्य हो तो उसके श्रोता या पाठक के लिए यह आवश्यक बन जाता है कि वह सहृदय हो । नीरस वैज्ञानिक और ठूंठ वैयकरणों के सिद्धांतों में जब कविता को आबद्ध करने की जबरन कोशिष की जाय तो उसके अनुभूति पक्ष का गला दबोचने जैसी बात होती होगी । सरस्वती ने भी ब्रह्मा से यही निवेदन किया -''अरसिकेषु कविता - निवेदन शिरषि मालिख मा लिख । जो सीमा में बंधा असीम असुंदर भी सुंदर और दु:खद भी सुखद हो जाता है । कवि की जो अनुभूति शक्ति है वही पाठक या श्रोता की भी अनुभूति

रहे तभी काव्य की श्रेष्ठता एवं सार्थकता का परिणाम देखने को मिलता है ।

यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि प्रेम अनुभूति जन्य होता है । प्रेम के विभिन्न रूप सूक्ष्मता के आधार पर प्रकट होते हैं । प्रणय-भावना में व्यापकता और गंभीरता सर्वाधिक मुखरित होने के कारण इस रूप में प्रेम की संप्रेषण क्षमता अन्य रूपों की तुलना में अधिक होती हैं । महादेवी ने जिन भावों को केन्द्र बनाकर कविता का सृजन किया है, वे मूलभूत भाव प्रेम, वेदना, रहस्य तथा दर्शन-अध्यात्म के हैं । ये मूलभूत भाव कवयित्री की मनोदशाओं की सृष्टि करते हैं । इन भावजन्य मनोविकारों के दर्शन उनकी कविता में होते हैं और उनसे अनेक प्रकार की भाव भंगिमाओं का रूपांकन प्राप्त होता है । इनकी कविता में व्यंजित चकित, अलसित, पुलकित, स्मित, करूण, सलज्ज आदि भाव-मुद्राएँ इसके प्रमाण है ।

महादेवी की कविता के अनुभूति पक्ष को निम्नांकित विशेषताओं के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है ।

1. **लौकिक प्रेमाभिव्यंजना :**

जब प्रणय का आलंबन कोई सांसारिक प्राणी होता है तो प्रणय भावना लौकिक कही जाती है । लौकिक प्रणय-भावना के भी दो रूप माने जा सकते है -

(1) शारीरिक

(2) आत्मिक

''शारीरिक लौकिक प्रणय-भावना के मूल में कामवासना निहित रहती है, जबकि आत्मिक प्रणय-भावना में काम-वासना का स्थान नहीं होता, मात्र प्रणय की पुनीत और सर्वशक्तिमान सत्ता के प्रति अनुराग भावना परिलक्षित होती है । अतः यहा हमे आत्मिक प्रेम की व्यंजना लौकिक धरातल पर भी संभव दिखाई देती है । प्रणय की ऐसी विकसित अवस्था में काम, अहं एवं स्वार्थ का विगलन हो जाता है और प्रेमी के रोम-रोम से दैन्य, समर्पण एवं बलिदान की भावना व्यंजित होने लगती है ।''[2] यह प्रणयानुभूति सात्विकता से ओत-प्रोत होती है । कामवासना से परे एकनिष्ठ और स्थायित्व लिए होती है ।

महादेवी की आरंभिक रचनाओं में प्रमुखतः 'रश्मि' और 'नीहार' में लौकिक प्रणयानुभूति की अभिव्यक्ति हुई है । इन रचनाओं में महादेवी ने लौकिक प्रणयानुभूति की सात्विकता के समन्वय से उदात्त और उत्कृष्टतम् रूप प्रदान किया है । महादेवी की प्रणय-भावना में असंयम कहीं नहीं परिलक्षित होता जबकि अन्य कवियों की प्रणय भावना में असंयम स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । महादेवी के गीतों में अदृश्य सत्ता की अनुगूँज स्पष्ट ध्वनित होती हैं । यही कारण है कि उनकी लौकिक प्रणयानुभूति में अलौकिक की छाप सर्वत्र दृष्टिगत होती है, जो प्रणयानुभूति की लौकिकता को अलौकिकता में परिवर्तित कर

देती है । उनकी प्रणयानुभूति में आराधना, उपासना और अनुराग स्पष्ट परिलक्षित है । उनकी प्रेम भावना एक स्थूल शारीरिक आकर्षण मात्र तक सीमित नहीं बल्कि उससे आत्मा के अहं का विसर्जन एवं समर्पण का उत्कर्ष है ।

द्रष्टव्य है कतिपय पंक्तियाँ जिसमें लौकिक प्रणयानुभूति मुखरित हुई हैं तथा जो विगत को प्रणय कालीन स्मृतियों के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है –

"उस सूने पथ में अपने
पैरों की चाप छिपाये,
मेरे नीरव मानस में
वे धीरे-धीरे आये ![3]

तथा –

"झटक जाता था पागल बात
धूल में तुहिकणों के हार,
सिखाने जीवन का संगीत
तभी तुम आये थे इस पार ।"[4]

इस प्रकार के भाव लौकिकता के आवरण में आवेष्ठित अवश्य हैं किन्तु यह निर्विवाद रूप से कोई नहीं कह सकता कि यह प्रणय – भावना मात्र लौकिक है । यह महादेवी की कुशलता है कि उन्होंने लौकिक प्रणय-भावना में अलौकिकता का समावेश कर लौकिकता को

उदात्त उत्कर्ष प्रदान किया । अन्य छायावादी कवियों में इस प्रकार की अभिव्यक्ति परिलक्षित नहीं होती है । महादेवी के इसी कौशल का दर्शन कराने वाला एक अन्य उद्धरण प्रस्तुत है –

''तुम्हें बाँध पाती सपने में
तो चिर जीवन प्यास बुझा
लेती उस छोटे क्षण अपने में ।''[5]

कतिपय आलोचक इन गीतों में विफल प्रेम के दर्शन करते है तथा कुछ विशुद्ध आत्मिक संगीत से ओत-प्रोत मानते हैं । कवि पर जीवन के व्यापारों का प्रभाव पड़ना सहज और स्वाभाविक है । महादेवी के मन में भी जीवन के प्रति संवेदनशील होना स्वाभाविक है । नारी होने के कारण प्रिय के प्रति भावों की अभिव्यक्ति का मुखरित होना भी अस्वाभाविक नहीं है ।

''महादेवी के काव्य में स्थूल सौन्दर्य के प्रति विकर्षण का भाव सब से अधिक है । इसके दो कारण है, एक यह कि इनकी अनुभूति आत्मनिष्ठा और प्रवृति अंतर्मुखी है । साथ ही नारी होने के कारण आलंबन के प्रति इनके सौन्दर्यानुप्राणित संवेगों का मर्यादित होना सर्वथा स्वाभाविक है । दूसरा कारण यह है कि इनके काव्य का संपूर्ण वातावरण विरह से आच्छन्न है । विरह काव्य विशेषकर, जिसकी आभ्यंतर चेतना का धरातल कुछ उन्नत और सूक्ष्म रहता है, संस्मरणात्मक तथा सुधि विहवल हुआ करता है । साथ ही आलंबन मनसा प्रत्यक्षों और चक्षुषा अप्रत्यक्ष रहने के कारण आश्‍चर्य की अधिकांश स्थूल दूर्बलताएँ

सूक्ष्म हो जाती है । फलस्वरूप ऐसी अवस्था में आश्रय या कवि के मनोलोक में सूक्ष्म और सौम्य भावों का ही उदय अधिकतर हुआ करता है ।''[6]

महादेवी के गीतों में मांसलता या वासना जनित आवेगों की अभिव्यक्ति कहीं नहीं दिखाई देती । लौकिक प्रणय भावना के अंतर्गत रचे गये गीत महादेवी की अन्यतम कुशलता के परिचायक हैं । प्रेम-भावना के संयमित और मर्यादित स्वरूप को विकसित करना महादेवी के ही बस की बात थीं ।

इस प्रकार निर्विवाद रूप से स्वीकारा जा सकता है कि महादेवीने लौकिक प्रणय-भावना में अलौकिकता के संस्पर्श से ऐसी उदात्त और उत्कृष्ट सर्जना की है जो अन्य कवियों के लिए अनुकरणीय होगी । उनकी लौकिक प्रणय-भावना चरम उत्कर्ष को प्राप्त करने में सक्षम रही है ।

महादेवी अपने अलौकिक आत्मसमर्पण के संबंध में कहती है कि ''अलौकिक आत्मसमर्पण को समझने के लिए लौकिक का सहारा लेना होगा । स्वभाव से मनुष्य अपूर्ण भी है और अपनी अपूर्णता के प्रति सजग भी । अतः किसी उच्चतम आदर्श, भव्यतम सौन्दर्य या पूर्ण व्यक्तित्व के प्रति आत्मसमर्पण द्वारा पूर्णता की इच्छा स्वाभाविक हो जाती है ।''[7] फलतः कह सकते है कि उनकी कविता में दिव्य अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति लौकिक, प्रेम के आधार को लेकर ही हुई है । चूँकि उन्होंने अपनी अलौकिक प्रेम-व्यंजना के लिए लौकिक, प्रेम-संकेतों

को ही आधार के रूप में लिया है, अतः उनकी कविता में प्रेम-भावना की विविध दशाओं तथा मुद्राओं का सुंदर रूपांकन मिलता है ।

2. अलौकिक प्रियतम :

जब प्रणय का आलंबन विश्व नियामक, अनंत, अगोचर और परम सत्ता होती है तो प्रणय भावना अलौकिक कही जाती है । अखिल ब्रह्मांड रहस्यवादी कवियों के निर्मित प्रिय भी है और आराध्य भी । रहस्यवादी कवि उस परम शक्ति के प्रति अपनी अनुरागी भावना अभिव्यक्ति कर अपना सर्वस्व अपने प्रिय पर न्यौच्छावर कर देना चाहता है । "मैं" भाव के अर्पण में कवि चरमपरिणति समझता है । निजता को खोकर कवि एक अव्यक्त आनंद की अनुभूति करता है । कवि आत्मा और परमात्मा के भेद को मिटा देना चाहता हैं । अपनी संपूर्णता का सर्वस्व समर्पण केवल प्रेयसी और प्रिय के माध्यम से ही संभव है । महादेवी उस परम शक्ति की अनन्य उपासिका है । महादेवी ने उस ब्रह्म की प्रिया के रूप में अपने अस्तित्व की संपूर्ण निजता को अपनी अनुराग भावना की अनुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान की है । महादेवीने चराचर जगत के प्रतीकों के माध्यम से उस नियामक सत्ता के प्रति अपनी प्रणय भावना व्यंजित की है । "उनकी काव्य वेदना आध्यात्मिक है । उसमें आत्मा का परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय निवेदन है । कवि की आत्मा मानो विश्व में बिछड़ी हुई प्रेयसी की भाँति अपने प्रियतम का स्मरण करती है ।"[8]

प्रेम की अनुपम शक्ति में महादेवी की पूर्ण आस्था है । महादेवी स्वीकार करती है कि मात्र प्रेम का आलंबन लेकर अपने इच्छित गंतव्य तक पहुँचा जा सकता है । उन्हें पूरा विश्वास है कि उनकी साधना व्यर्थ नहीं जायेगा और प्रेम का संकल्प पूरी आस्था के साथ साधिका को प्रिय की प्राप्ति अवश्यमेव होगी । उसकी यही सोच प्रियतम की सहृदयता और निज की पीड़ा मुक्ति का संकेत भी देती है -

''इस असीम तम में मिलकर
मुझको पल भर सो जाने दो,
बुझ जाने दो देव ! आज
मेरा दीपक बुझ जाने दो ।''[9]

x x x

मेरी लघुता पर आती
जिस दिव्य लोक को व्रीडा,
उसके प्राणों से पूछो,
वे पाल सकेंगे पीड़ा ?''[10]

इतना अनुपम और अनूठा प्रिय पाकर कौन प्रिया अपना सर्वस्व अर्पित करने को उत्सुक न हो उठेगी ? परम् चिरंतन और शाश्वत सत्य सा प्रिय पाकर प्रेयसी स्वयं अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव करने लगती है । उनमे मानस में किसी प्रकार का कोई भ्रम शेष नहीं रह जाता है । महादेवी के गीतों में प्रिय की अमर सुहागिनी की अपूर्व आस्था परिलक्षित होती है । महादेवी के गीत पावनता और उदातता का संदेश संप्रेषित

करते हैं जिनमें लौकिकता का अलौकिकता में अनूठा पर्यवसन व्यंजित होता है । उनके गीतों में मांसल आसक्ति की अभिव्यक्ति नहीं वरन् उत्सर्ग भावना से युक्त समर्पण परिलक्षित होता है । दिव्यता और पावनता से युक्त अस्तित्व समर्पण और निजता के संपूर्ण विलीनीकरण की भावना ने उनके गीतों को शाश्वत और अमर बना दिया है । उनकी वेदना में बच्चन जैसी शारीरिक आसक्ति नहीं दिखाई देती । वस्तुतः प्रेम और विरह की ऐसी अनुपम अभिव्यक्ति अन्यत्र मिलना दुर्लभ ही है । महादेवी के गीतों में सर्वत्र दिव्यता के और केवल दिव्यता के ही दर्शन होते है ।

महादेवी कहीं अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करती है तो कहीं मुग्धा नायिका की शाँति अपने हृदय की भावना व्यक्त करती है । प्रस्तुत है उपर्युक्त भावों को व्यंजित करनेवाले दो चित्र -

"वह सपना बन-बन आता
जाग्रत में जाता लौट,
मेरे श्रवण आज बैठे हैं,
इन पलकों की ओट ।"[11]

"सीखने क्यों चंचल गति भूल
भरे मेधों की धीमी चाल,
तृषित कन-कन को क्यों अति-चूम,
अरूण आभा सी देते ढाल ?
सजल चितवन में क्यों है ह्रास
अधर में क्यों सस्मित निःश्वास ?"[12]

''वे अपने अलौकिक प्रियतम की अपूर्व रूप-माधुरी से आकृष्ट है और उस चिरसुंदर के दर्शन मात्र से उनके हृदय में प्रेम रस का संचार होने लगता है ।''[13] कवयित्री प्रिया के सहज स्वभावानुकूल अपने परम् सुंदर प्रिय को आमंत्रण देती है जो कभी रश्मि बनकर चुपचाप मधुमय गान सुनाने आता है और सहसा ही हृदय में व्यथा शर का संधान कर अनंत में लुप्त हो जाता है -

''रश्मि बनकर आये चुपचाप,
सिखाने अपने मधुमय गान;
अचानक हीं वे पलकें खोल,
हृदय में वेध व्यथा का बाण -
हुए फिर पल में अन्तर्धान !''[14]

महादेवी की अनुराग भावना स्थूल रूप सौंदर्य के प्रति केन्द्रित न होकर परम सत्ता तथा चिर सुंदर के प्रति केन्द्रित रही हैं इसीलिए उनकी कोई भी अनुभूति उस दिव्यातिदिव्य की परिघि के परे दृष्टिगत नहीं होती । महादेवी के संपूर्ण काव्य का धरातल संयम और मर्यादा पर आधारित है । उनकी समर्पित आस्था का स्वर उनके समूचे काव्य में मुखरित होता है । कृष्णदत्त पालीवाल उनकी इस अनुराग भावना को दिव्यानुभूति का पर्याय मानते हैं - ''महादेवी आधुनिक कविता की प्रथम रहस्यवादी कवयित्री है, जिन्होंने अज्ञेय को ज्ञेय बनाने का भगीरथ प्रयास किया है । ब्रह्म चाहे उनमें समाये या न समाये वे ब्रह्म में समा गई हैं । उनकी अनुभूति में दिव्यता साकार हो गई है ।.... इस प्रणयानुभूति को दिव्यानुभूति का पर्याय मानना ही अधिक सार्थक लगता है ।''[15]

मिलन की मधुर अनुभूति न जाने कितने मधुर परिवर्तनों का संकेत देती है । प्रेयसी का आंतर्मन पुलक उठता है, शरीर में रोमांच भर जाता है, रोम-रोम में अनुभूति स्पष्ट महसूस होने लगती है । प्रिय का साक्षात्कार प्रिया के मानस में एक हलचल उत्पन्न कर देता है । प्रिया न जाने कितनी मधुर कल्पनाओं को वास्तविकता और यथार्थ के रंग में साकार करने लगती है । अधर फड़कने लगते हैं और प्रेयसी प्रिय पर अपना सब कुछ उत्सर्ग करने को तत्पर जान पड़ती है । ऐसी मधुर और मोहक रागानुभूति की अभिव्यक्ति का चित्र महादेवी की तुलिका ही अंकित कर सकती है -

"नयन श्रवणमय, श्रवण नयनमय,
आज हो रही कैसी उलझन;
रोम-रोम में होती री सखि,
एक नया उर का सा स्पन्दन ।"[16]

रागानुभूति के इन चित्रों में कवयित्री की मौलिकता स्पष्ट परिलक्षित होती है और वह है मांसलता के अंकन से विरक्ति । महादेवी के समूचे काव्य में शारीरिक आसक्ति की अभिव्यक्ति को पूर्ण रूप से नकारा गया है ।

महादेवी की रागानुभूति में व्याप्त अपार करूणा का स्वर प्रिय के प्रति उनके अनन्य अनुराग का सूचक है । महादेवी कभी अपनी मनोव्यथा से ही व्यग्र मालूम पड़ती हैं । पीड़ा और वेदनानुभूति की जितनी

मार्मिक अभिव्यक्ति पूर्ण तन्मयता के साथ महादेवी के काव्य में मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है -

"पुलक - पुलक उर सिहर सिहर तन,
आज नयन आते क्यों भर-भर ?"[17]

महादेवी के काव्य में भारतीय आदर्श नारी का गरिमामय व्यक्तित्व साकार हुआ है । उनके गीतों में प्रिय में अपनी संपूर्ण निजता का लय करने वाली आस्थावान नारी का रूप मुखरित हुआ है । अपनेपन के कारण यद्यपि महादेवी ने उस अज्ञात प्रिय के लिए, निष्ठुर तथा असीम आदि अवसरानुकुल रागानुभूति की अभिव्यक्ति में सहायक ही सिद्ध हुए है । "क्या पूजा क्या अर्चन रे" गीत में महादेवी ने स्वयं को प्रेयसी की भाँति अपने प्रिय की अर्चना में आरती की दिव्य ज्योति की तरह विश्व को आलोकित करने का संदेश प्रेषित किया है । महादेवी ने उस परम प्रिय के चरणों को अपने करूणाश्रुओं से प्रक्षलित कर उसकी भव्य और अनुपम वंदना की है ।

कुरूप से कुरूप व्यक्ति उसकी पत्नी के लिए उसका सर्वस्व होता है और वह अपने सर्वस्व पर अपना पूर्ण अस्तित्व निछावर करने को तत्पर रहती है फिर महादेवी का अज्ञात प्रियतम तो परम सुंदर और अलौकिक है अपने प्रणयी पर गर्व होना नारी के लिए सहज स्वाभावानुकूल है । महादेवी को अपने अज्ञात प्रिय पर भरोसा है तभी तो वे गर्व से यह कहने में नहीं चूकती -

''तेरे वैभव की भिक्षुक
या कहलाऊँगी रानी ।''[18]

महादेवी की आस्था और अनुराग ने आत्मा और परमात्मा के भेद को तिरोहित कर दिया है द्वैत से अद्वैत भाव में परिणति का चित्र अंकित करते हुए वह कहती है -

''एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ,
दूर तुमसे हूँ अखंड सुहागिनी भी हूँ ।''[19]

आलैकिकता से परिपूर्ण उस अज्ञात प्रियतम के प्रति आस्था और अनुराग की अभिव्यक्ति में प्रतिकों की सुंदर योजना प्रस्तुत की है । महादेवी की समूची रागानुभूति में प्रतिकों का प्राचुर्य मिलता है जिसके माध्यम से उन्होंने उस अज्ञात और चिर सुंदर प्रिय के प्रति अपनी रागानुभूति को मुखरित किया है ।

''तुम हो मधु के बिम्ब, और में
मुग्ध दश्मि अनजात
तुम अनंत जलराशि उर्मि मैं
चंचल सी अवदात ।''[20]

महादेवी के काव्य में भारतीय नारी की आत्म दृढ़ता सम्यक् रूपेण मुखरित हुई है । उनके गीतों में अभिव्यक्त सनातन, चिरंतन और शाश्वत है । अपनी आस्था और आत्म दृढ़ता के कारण ही तो महादेवी कह सकी हैं -

"क्या हार बनेगा वह जिसने
सीखा न हृदय को बिधवाना ।"[21]

अलौकिक प्रणयानुभूति के दोनों रूप 'दीपशिखा' में स्पष्ट देखे जा सकते हैं - अलौकिक आलंबन के प्रति आत्मा का अनुराग भाव तथा उसी अलौकिक आलंबन के प्रति आत्मा की आनंद विह्वलता । महादेवी के गीतों में अपूर्व आस्था, असीम धैर्य, दृढ़ संकल्प तथा एकनिष्ठता पूर्ण रूप से उभरी है जो भारतीय नारी के गरिमामय स्वरूप का उद्धाटन करती है । सात्विकता से ओत-प्रोत तथा मर्यादा के धरातल पर रचे गये गीत महादेवी के व्यक्तितत्व को पूर्णरूपेण प्रकाशित करते हैं -

"मधुर-मधुर मेरे दिपक जल !
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर !"[22]

प्रियतम के पथ को आलोकित करने की मंगल कामना उस परम प्रिय के प्रति कवयित्री की चरम आस्था और परम निष्ठा की परिचायक है ।

स्पष्ट है कि महादेवी की प्रणयानुभूति आनंद, व्यथा, आशा, समर्पित आस्था और एकनिष्ठता और पावनता की उज्जवल प्रतीक है । "महादेवी के गीत उज्जवल प्रेम के गीत हैं जिनमें काम का उन्नयन, परिष्करण तथा उदातीकरण हुआ है । महादेवी संत नहीं सामाजिक है, उनके सामाजिक रूप का समाजीकरण भी इस विराट ब्रह्म की आराधना में

निहित है । अपने आँसुओं से संसार को आप्लावित करने की कामना तथा समस्त मानव का कल्याण ही उनका इष्ट है ।"[23]

'नीहार' से 'दीपशिखा' तक के गीतों का सूक्ष्म अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि महादेवी की प्रणयानुभूति एक स्वकीया नारी की भाँति मर्यादा और संयम के धरातल पर अवस्थित है । महादेवी के गीतों के विवेचन में फ्रायड आदि के पूर्वग्रह से मुक्त होना बहुत जरूरी है । उनकी रागानुभूति को मात्र पार्थिव रूप में मान लेना महादेवी की उपासना का निरादर करना है । यह माना जा सकता है कि उनके प्रारंभिक गीतों में लौकिकता परिलक्षित होती है जिसने 'दीपशिखा' तक पहुँचते - पहुँचते आध्यात्मिक उत्कर्ष को प्राप्त कर लिया है । उनकी प्रणयानुभूति ने अलौकिकता को प्राप्त करने में एक अनवरत साधना और उपासना की है जिसे नकारना सर्वथा अनुपयुक्त है । एक लंबी यात्रा के पश्चात् महादेवी आध्यात्मिकता के अलौकिक लक्ष्य को पा सकी हैं जो एक कवयित्री की प्रिय के प्रति आस्था और एकनिष्ठ अर्चना की द्योतक है ।

महादेवी के प्रिय के प्रति अपनी रागानुभूति को कहीं-कहीं बहुत सहजता से अभिव्यक्त किया है । एक सामान्य मानिनी प्रेयसी की तरह प्रिय के प्रति स्वानुभूति प्रदर्शन से उसे उच्चता प्रदान करने में महादेवी पूर्ण सफल हुई हैं । प्रणय में मान होना स्वाभाविक है । यह सकारण होता है, और कभी अकारण भी । महादेवी प्रेयसी की भाँति मान करती हुई अत्यंत दर्प से अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति करती हुई

कहती हैं कि अगर वह उससे इतना अधिक अनुराग न करती तो कोई उसे पूछने वाला भी न था । आत्म सम्मान से युक्त कवयित्री की अनुभूति कुछ यों मुखर हो उठती हैं -

"उनसे कैसे छोटा है,
यह मेरा भिक्षुक जीवन ।"[24]

x x x

"हो जायेगा तेरा ही,
पीड़ा का राज्य अंधेरा ।"[25]

सुश्री शांति अग्रवाल उनके काव्य के संबंध में अपने विचार यों प्रस्तुत करती हैं - "उनके व्यक्तित्व को पार्थिव बंधन कभी नहीं बाँध सके । लौकिक वैभव उन्हें भी आकर्षित नहीं कर सका । यदि कोई लौकिक अभाव कभी उन्हें अखरा भी होगा तो उसकी लौकिकता भी काव्य में आते-आते अलौकिक बन गई ।"[26] आचार्य शुक्लने भी काव्य में 'रहस्यवाद' नामक अपने निबंध में कवि के अलौकिक प्रिय के संबंध में विश्वास व्यक्त किया है । महादेवी ने इन सभी मताभिमतों के संबंध में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए कहा है "यह तो पाठक की अपनी बात है । वह अपने मन में इस मान्यता को लेकर चलता है कि इस युग में कोई भी ऐसी स्त्री नहीं हो सकती जिसमें वासना और विलास की बात न हो ।... किसी व्यक्ति के प्रति यह मन झुका ही नहीं तो कोई बात थोड़े ही थी । मैं संबंधों के प्रति अनुदार नहीं हूँ । यदि किसी से ऐसे संबंध की बात जगी होती तो मैं उसे अपना साथी बना ही लेती । समाज मे या किसी से डर की बात नहीं थी ।"[27]

महादेवी के उपर्युक्त अभिमत से उन पर आलोचकों द्वारा लगाये गये आरोपों प्रत्यारोपों का स्वत: ही समाधान हो जाता है । सभी मानवीय संबंधों में स्त्री-पुरूष का दाम्पत्य संबंध ही सबसे उत्कृष्ट और सरसतम संबंध है जिसमें प्रणयानुभूति की निष्कलुषता, पावनता, एकनिष्ठता और एक दूसरे में लय हो जाने की समर्पित आस्था तथा अनुराग की मधुरता समाहित रहती है । प्रिय और प्रेयसी की प्रणयानुभूति अंकन में कवि को अति विस्तृत क्षेत्र मिलता है, जिसमें वह नाना प्रकार की अभिव्यक्ति का चित्रांकन तन्मयता के साथ करने का प्रयास करता है । कबीर, जायसी आदि ने इसी संबंध की प्रतिष्ठा कर उस चरम प्रिय के प्रति प्रेयसी की भाँति अपनी कोमलतम भावनाओं को मुखरित किया है ।

महादेवी ने उसी चिर सुंदर को अपना अभीष्ट प्रिय स्वीकार कर अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया है चिर सुंदर को अपना प्रियतम स्वीकार करने का कारण महादेवी यों स्पष्ट करती है - ''क्योंकि मानवीय संबंधों में जब तक अनुराग जनित आत्मविसर्जन का भाव नहीं घुल जाता, तब तक वे सरस नहीं हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नहीं हो पाती, तब तक हृदय का अभाव दूर नहीं होता ।''[28]

महादेवीजी भी शाश्वत सुख की खोज में थी । किन्तु ऐसा सुख अलौकिक प्रियतम से ही प्राप्त हो सकता है । सीमित व क्षणिक सुख में उन्हें संतोष नहीं है । वे कहती हैं -

''तू जीवन में छिपा वेणु में ज्यों - ज्वाला का वास,
तुझ में मिल जाना ही है जीवन का चरम विकास ।''[29]

अतः महादेवी की प्रणयानुभूति में अभिव्यक्त अलौकिक और चिरसुंदर के प्रति उनकी प्रणयिनी सम अनुभूति को मात्र काल्पनिक और कृत्रिमता से युक्त मानना न केवल अनुपयुक्त होगा अपितु उस साधिका की एकनिष्ठ उपासना का भी निरादर करना होगा । जिसे किसी भी दशा में उपर्युक्त नहीं कहा जा सकता । महादेवी का काव्य उनकी अंतरात्मा की अभिव्यक्ति है और अंतरात्मा की अभिव्यक्ति का अलौकिक होना महादेवी की एकाग्रचितता और समर्पित आस्था को प्रकाशित करता है ।

3. रहस्य-भावना :

रहस्य का सामान्य अर्थ है - अज्ञेय, गोपनीय । साधारण मनुष्य की चिंतना से परे जो गंभीर, अनिश्चित और दिव्य है उसी ब्रह्म की विशिष्ट अनुभूति रहस्यानुभूति है । यह आध्यात्मिक प्रेम की अन्तः स्फुरित अपरोक्षानुभूति है जो उस परमतत्व ईश्वर के प्रति स्वयं को पूर्णतः समर्पित कर देती है । काव्य में इसी अनुभूतिपूर्ण उपासना को 'रहस्यवाद' नाम दिया गया ।

'रहस्यवाद' काव्य की एक विशेष धारा है । इसका लक्ष्य आत्मा और परमात्मा की एकता की अनुभूति प्राप्त करना है । महादेवी के शब्दों में - ''रहस्योपासक का आत्मसमर्पण हृदय की ऐसी आवश्यकता है जिसमें हृदय की सीमा, एक असीमता में अपनी ही अभिव्यक्ति

चाहती है और हृदय के अनेक रागात्मक सम्बन्धों में माधुर्यभावमूलक प्रेम ही उस सामज्जस्य तक पहुँच सकता है, जो सब रेखाओं मैं रंग भर सके, सब रूपों को सजीवता दे सके और आत्मनिवेदक को इष्ट के साथ समता के धरातल पर खड़ा कर सके ।"[30]

सांसारिक संबंधों में प्रिया-प्रियतम का संबंध अन्यतम् है । उसी माधुर्यमूलक संबंध को स्वीकार कर महादेवी ने अपने अलौकिक आलंबन के प्रति भावाभिव्यक्ति की है । सगुण-निराकार के रहस्यमय व्यक्तितत्व के कारण कवयित्री की प्रणयानुभूति भी रहस्यमय है । उनके आध्यात्मिक और सात्विक प्रेम में वासना का कोई दंश नहीं है ।

महादेवी की रहस्यानुभूति में केवल भावनाओं के आवेग का प्रकाशन नहीं वरन् उनके अनवरत चिंतन का प्रतिफलन भी है । एक सुनिश्चित आधार पर अवलंबित उनकी रहस्य-भावना में भावात्मक हृदय और विचारशील बुद्धि का अद्‌भूत समन्वय है । इस समन्वय से दोनों का संतुलन बना रहता है । भारतीय रहस्य -भावना मूलतः बुद्धि और हृदय की संधि में स्थिति रखती है । एक से यह सूक्ष्म तत्व की व्यापकता नापती है और दूसरे से व्यक्त जगत् की गहराई की थाह लेती है । यह समन्वय उसके भावावेग को बुद्धि की सीमा नहीं तोड़ने देता और बुद्धि को भाव की असीमता रोकने के लिए तट नहीं बाँधने देता । रहस्यानुभूति भावावेश की आंधी नहीं वरन् ज्ञान के अनंत आकाश के नीचे अजस्र प्रवाहमयी त्रिवेणी है, उसी से हमारे तत्त्वदर्शक बौद्धिक तथ्य को हृदय का सत्य बना सके । इस पर महादेवी कहती है - "अखण्ड चेतना से

तादात्म्य का रूप केवल बौद्धिक भी हो सकता है, पर रहस्यानुभूति में बुद्धि का ज्ञेय ही हृदय का प्रेय हो जाता है । इस प्रकार रहस्यवादी का आत्मसमर्पण बुद्धि की सूक्ष्म व्यापकता से सौन्दर्य की प्रत्यक्ष विविधता तक फैल जाने की क्षमता रखता है अतः उसमें सत् और चित् की एकता में आनन्द सहज सम्भव रहेगा ।"[31]

आत्मा - परमात्मा का रहस्य - व्यापार जीव की उत्पत्ति से ही आरंभ हो जाता है । जीवन और जगत् का बोध होते ही मन में जिज्ञासा जन्म लेती है । जिज्ञासा की शांति होते ही एक निश्चत दृष्टिकोण आस्था या विश्वास को प्रकट करता हैं । उस रहस्यमय में विश्वास होते ही मन उससे मिलने के लिए आतुर हो जाता है और आकांक्षा की आपूर्ति विरह-वेदना का कारण बन जाती है । तत्पश्चात् एक स्थिति ऐसी आती है जब साधक आत्मा को यह आभास हो जाता है कि साधक और साध्य तत्त्वतः एक ही हैं । यही अभिन्नताबोध अथवा अद्वैत-भावना है ।

इससे यह स्पष्ट है कि जिज्ञासा, आस्था या विश्वास, मिलनाकांक्षा, विरह-वेदना आदि मानसिक दशाओं से संक्रमित होता हुआ साधक प्रियतममय होकर अभिन्नता की प्रतीति करता है महादेवी के काव्य में रहस्यानुभूति की इन क्रमिक अवस्थाओं की अभिव्यक्ति हुई है ।

3.1 जिज्ञासा :

विविध रूपात्मक प्रकृति की परिवर्तनशीलता को लक्ष्य कर संवेदनशील हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न होती है । यह जिज्ञासा रहस्यानुभूति

की प्रारंभिक अवस्था है । इससे प्रेरित हृदय कुतूहल शांति के लिए जानना चाहता है कि प्रकृति को अनुपम सौन्दर्य देने वाला कौन है, विभिन्न परिवर्तनों का मूल कारण क्या हैं, इस चराचर जगत् का संचालन करने वाला कौन है ? ये सभी प्रश्न जिज्ञासा की स्थिति में हृदय को आलोकित करते हैं । महादेवी भी सृष्टि के नैसर्गिक सौन्दर्य से अभिभूत होकर उसके रचयिता को जानने की आकांक्षा करती है –

''कनक से दिन मोती सी रात,
सुनहली साँस गुलाबी प्रात,
मिटाता रँगता बारंबार,
कौन जग का यह चित्राधार ?''[32]

x x x

''अवनि-अम्बर की रूपहली सीप में
तरल मोती सा जलधि जब काँपता,
तैरते घन मृदुल हिम के पुंज से
ज्योत्सना के रजत पारावार में,
सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे,
नींद के उच्छ्वास सा वह कौन है ?''[33]

3.2 आस्था :

ज्ञान का उदय होते ही जिज्ञासा समाप्त होने लगती है और इस संसार के स्रष्टा के प्रति विश्वास जागृत होने लगता है । परमब्रह्म में आस्था की स्थिति रहस्यानुभूति का द्वितीय चरण है । महादेवी के हृदय

में ब्रह्म के प्रति अडिग आस्था है । प्रकृति को अनंत रूप देने वाला सर्वशक्तिमान् ही उसके परिवर्तन का मूल कारण है । ईश्वर की सत्ता में आस्था होने पर भी कवयित्री के हृदय-पटल पर उसका कोई निश्चित स्वरूप अंकित नहीं है । वह तो प्रकृति की दिव्य छटा में ही उस रहस्यमय के अनुपम सौन्दर्य का आभास पा लेती है । अलौकिक ब्रह्म सौन्दर्य का अक्षय भंडार है । उसकी आभा और सुषमा के कण मात्र से अनंत आकाश में आगणित नक्षत्र सूर्य और चन्द्र जगमगा उठतें हैं । राशि-शशि फूलों के वन खिल जाते हैं । जहाँ वह अपार आनंद देता है वहीं मात्र अपने भ्रू-संचालन से पल में प्रलय भी मचा देता है । उसके विलक्षण क्रिया-कलाप साधारण जन की समझ से परे हैं । यह निश्चित है कि समस्त गतिविधियों में उस अलिख ब्रह्म की सत्ता है । क्षण में प्रतिकूल होकर जो शत-शत झंझावात उत्पन्न कर देता है, वही तप्त जगती के दग्ध हृदय को शीतल करने के लिए करूणा की धारा बहाता हुआ चला आता है :

"राजतरश्मियों की छाया में धूमिल धन सा वह आता;
इस निदाध से मानस में करूणा के स्रोत बहा जाता ।
उसमें मर्म छिपा जीवन का,
एक तार आगणित कम्पन का,
एक सूत्र सबके बंधन का,
संसृति के सूने पृष्ठों में करूण काव्य वह लिख जाता ।"[34]

3.3 प्रणयानुभूति और मिलनाकांक्षा :

यह रहस्यानुभूति का तृतीय सोपान है । प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से परम ब्रह्म के अलौकिक स्वरूप के प्रति आस्था होते ही रहस्यवादी कवयित्री का मुग्ध हृदय उससे प्रणय-व्यापार आरंभ कर देता है । दिव्य प्रेम का संचार होते ही उसके मन में कोमल भावनायें हिलोरें लेने लगती हैं । निशा और राकेश, कली और मुधुमास की प्रणय-लीला के मधुमय वातावरण में कवयित्री को यह आभास होता है कि उसका प्रिय उसे जीवन-संगीत सिखाने आया है :

"निशा की, घो देता राकेश
चाँदनी में जब अलकें खोल,
कली से कहता था मधुमास
'बता दो मधु मदिरा का मोल';

झटक जाता था पागल बात
धूल में तुहिनकणों के हार,
सिखाने जीवन का संगीत
तभी तुम आये थे इस पार ।"[35]

प्रिय-'दरस' की अनुभूति प्रिया को कई बार हुई है । उसका सुकुमार हृदय जब स्वप्न-चित्रों को रंगने में व्यस्त था तब वह प्रियतम, अनिल बन कर सौ-सौ बार दुलार और मनुहार करके प्रिया के अन्तर द्वार खुलवाकर हृदय में प्रवेश कर गया -

"रँग रही थी सपनों के चित्र,
हृदय - कलिका मधु से सुकुमार,
अनिल बन सौ-सौ बार दुलार,
तुम्हीं ने खुलवाये उर द्वार ।"[36]

प्रिय के साथ-साथ प्रियतम भी प्रणय-भावनाओं का अनुभव करता है । इसीलिए वह मधुमय तान सुनाने जब-तब आ जाता है; किन्तु उसका प्रणय मूक है । वह स्वयं अपने प्रेम को प्रकट नहीं करता, केवल प्रेम की मधुर कसक देकर जाता है :

"मूक प्रणय से मधुर व्यथा से,
स्वप्नलोक के से आह्वान,
वे आये चुपचाप सुनाने
तब मधुमय मुरली की तान !"[37]

कवयित्री का विद्ध हृदय इस आँख-मिचौली से संतुष्ट नहीं हो पाता । वह मिलनाकांक्षा से पीड़ित हो जाती है । अनंत करूणा और संदेश लिए वह चंचल प्रिय से फिर एक बार मलय-अनिल बनकर आने की प्रार्थना करती है -

"जो तुम आ जाते एक बार !
कितनी करूणा, कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग,"[38]

x x x

एक बार आओ इस पथ से
मलय अनिल बन है चिर चंचल ।"[39]

प्रिय की खोज में कवयित्री अपने प्रथम प्रणय की अनुभूति करती है । प्रिय मिलन और उसकी सोच से जो आँतरिक सुखानुभूति होती है वह इस प्रकार व्यक्त हुई है –

"प्रथम प्रणय की सुषमा सा
यह कलियों की चितवन में कौन ?
कहता है 'मैंने सीखा उनकी –
आँखों सके सस्मित मौन ।"[40]

प्रिया की मनोहर, अनुनय – विनय सब व्यर्थ गयी । वह निष्ठुर नहीं आया । उसके निरंतर दर्शन की अभिलाषा प्रेमिका को आकुल कर देती है । वह चंचल प्रिय स्वप्न में तो आता है, किन्तु क्षणिक निद्रा के क्षणिक स्वप्न से प्रिया की तृप्ति नहीं होती । वह उसे सपने में बांध लेना चाहती है अथवा अपनी निद्रा को चिरनिद्रा में परिणत कर देना चाहती है :

"तुम्हें बांध पाती सपने में
तो चिरजीवन-प्यास बुझा
लेती उस छोटे क्षण अपने में ।"[41]

x x x

"मेरे जीवन की जागृति
देखो फिर भूल न जाना,
जो वे सपना बन आवें
तुम चिर निद्रा बन जाना ।"[42]

3.4 विरह-वेदना :

प्रिय-मिलन की कामना की पूर्ति न हो पाने पर प्रिया का कोमल हृदय-वेदना-व्यथित हो जाता है । रहस्यानुभूति के इस चतुर्थ चरण में विरहिणी के मधुर प्रणय-भाव छिन्न-भिन्न होकर बिखर जाते हैं । विकल हृदय से निकले निश्वास शून्य को छूकर लौट आते हैं । सारी अभिलाषाएँ चूर-चूर होकर पीड़ा में मिल गयी हैं :

"हुए हैं कितने अन्तर्धान
छिन्न होकर भावों के हार,
घिरे घन से कितने उच्छ्वास
उड़े है नभ में होकर क्षार ।
शून्य को छूकर आये लौट
मूक होकर मेरे निश्वास,
बिखरती है पीड़ा के साथ
पूर होकर मेरी अभिलाष ।"[43]

अपने पीड़ा के साम्राज्य में नीरव रोदन करती हुई विरहिणी निरंतर प्रिय की प्रतीक्षा करती रही । प्रिय की स्मृति का आसव पीकर, प्राणों

में अवसाद को सुलाकर किंतु स्वयं सजग रहकर वह राह देखती रहती थी;

''सजग लखती थी तेरी राह
सुला कर प्राणों में अवसाद,
पलक प्यालों से पी - पी देव ।
मधुर आसव - सी तेरी याद !''[44]

विरह - वेदना सहते - सहते कवयित्री का जीवन विरह का जलजात हो गया है । वेदना और करूणा से युक्त हृदय आँसुओं का कोष और आँखें आँसुओं की टकसाल बन गयी है :

''विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात ।
वेदना में जन्म करूणा में मिला आवास;
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात ।...
आँसुओं का कोष उर, दृग अश्रु की टकसाल;
तरल जलकण से बने घन सा क्षणिक मृदुगात ।''[43]

विरह-दग्ध अंतर में कभी-कभी क्षीण आशा भी झलक उठती है । वह सोचती है कि कभी न कभी तो उसके विरह का भी अवसान होगा । उसकी कल्पना-मात्र से उल्लसित हृदय को प्रकृति भी पुलकित दिखाई देती है :

''मुस्काता संकेत भरा नभ,
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?

पुलकों से भर फूल बन गये
जितने प्राणों के छाले हैं ।"[46]

प्रियतम रहस्यमय ही बना रहा । विरहिणी ने अपनी आशाओं और उमंगों को हृदय में ही दबा लिया । निराशा, दुःख और आँसुओं को वह अपनी नियति मान लेती है । एक दुःख भरी बदली के समान हृदय में उमड़ते भाव लिये वह आई थी और आँसुओं के माध्यम से उन भावनाओं को बहाकर निहाल हो गयी :

"मैं नीर भरी दुःख की बदली
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली ।"[47]

3.5 अभिन्नता बोध :

यह रहस्यानुभूति की अंतिम अवस्था है । साधना में तन्मय साधक उस परम तत्त्व से अभिन्नता का बोध करने लगता है । उसका अस्तित्व विस्मृत हो जाता है । प्रियतममय होकर कवयित्री अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव करने लगती है । अबतक उनमें जो भिन्नता दिखायी देती थी वह असीम प्रिय और ससीमप्रिय का अभिनय था :

"तुम मुझमें प्रिय ! फिर परिचय क्या !
चित्रित तू मैं हूँ रेखा - क्रम,

मधुर राग तू मैं स्वर - संगम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम
काया-छाया में रहस्यमय ।
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या !"[48]

चरमसीमा पर पहुँचकर वियोग की व्याकुलता तन्मयता में परिवर्तित हो जाती है । विरह की आराधना करते - करते विरहिणी भी आराध्यमय हो गयी -

"हो गयी आराध्यमय मैं विरह की आराधना ले ।"[49]

उनके मध्य कोई अंतर या कोई बाधा नहीं रह गयी -

"आकुलता ही आज हो गयी तन्मय राधा,
विरह बना आराध्य, द्वैत क्या कैसी बाधा ।"[50]

निरंतर साधना-रत साधिका के लिए दुःख-सुख समान हो गये हैं । विरह की घड़ियाँ जिसे मिलन-यामिनी-सी मधुर प्रतीत होती हों उसे इस बात की कोई चिंता नहीं कि विरह-निशा कितनी बीत गयी या कितनी शेष है । वह तो तिल-तिल मिटकर प्रिय के लिए एक अमिट संदेश लिखती है :

"मैं क्यों पूछूँ यह विरह-निशा,
कितनी बीती क्या शेष रही ?....
क्षण गूँजे औ' यह पल गावें,

जब वे इस पथ उन्मन आवें;
उनके हित मिट-मिट कर लिखती
मैं एक अमिट संदेश रही ।"[51]

अज्ञात के प्रति जिज्ञासा और लालसा महादेवी में जन्मजात है । माता-पिता के संस्कार, भारतीय दर्शन, संतों की अनुभूति तथा रविन्द्रनाथ और 'प्रसाद' के प्रभाव से उनकी आध्यात्मिकता और अधिक पुष्ट हुई है । सबके सम्मिलित प्रभाव के अतिरिक्त महादेवी की रहस्यानुभूति का निजी वैशिष्ट्य है । पूर्वकालिक रहस्यवादियों ने उस परमतत्त्व के प्रति जो दीनता प्रकट की है वह महादेवी में नहीं हैं । एक प्रणयिनी के अनुरूप उनमें आत्मसम्मान ओर प्रेम की गरिमा है । कवयित्री ने अपने गीतों में उस अनंत के स्वरूप को अमायिकत के साथ अपनी सीमा में प्रतिभासित किया है । उस रहस्यमय को ज्ञान द्वारा समझने की अपेक्षा उसे सहज स्वाभाविक प्रेम द्वारा हृदय में बसाना श्रेयस्कर समझा है । उनके अलौकिक प्रेम ने लौकिक रूपकों का आश्रय लेकर भावाभिव्यक्ति को लालित्य प्रदान किया हैं ।"

4. करूणा एवं दु:ख :

महादेवी के काव्य में करूणा और दु:ख की भी अभिव्यक्ति अत्यन्त सघनरूप में हुई है जिसे महादेवी अपने शब्दों में व्यक्त करती है - "दु:ख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है ।.... मुझे दु:ख के दोनों ही रूप प्रिय हैं - एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से

एक अविच्छिन्न बन्धन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है ।"[52]

यद्यपि दोनों प्रवृत्तियाँ कवयित्री के भावात्मक जीवन के भिन्न-भिन्न पक्षों एवं स्त्रोतों से सम्बद्ध है । महादेवी की वेदना और शोकानुभूति पर विभिन्न आलोचकों द्वारा उपहास, व्यंग्य एवं आक्षेपों की भी बौछार हुई है, जिसका मूल कारण इन प्रवृतियों को भली-भाँति न समझ पाना है । स्थूल दृष्टि से ये दोनों प्रवृत्तियाँ एक जैसी ही दृष्टिगोचर होती है किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होगा कि इन दोनों के न केवल स्वरूप में अपितु आलम्बन में भी गहरा अन्तर हैं । करूणा का आलम्बन दु:खी संसार और दु:ख का निजी जीवन या व्यक्तिगत जीवन है । करूणा से उनका हृदय सदा उद्दीप्त रहता है और दु:ख को वे जानबूझ कर अपनाये हुए हैं । इस प्रकार ये दोनों भाव सहानुभूति एवं विरक्ति के विकसित रूप हैं जो उनके काव्य में समानान्तर रूप में प्रवाहित होते है ।

4.1 करूणा भाव :

करूणा भाव से हमारा आशय करूणा की भावना या सहानुभूति और संवेदना की भावात्मकता अनुभूति से है । "करूणाशील व्यक्तित्व भी संसार में करूणा का जल लेकर आता है, अपने आंसुओं के द्वारा उसे संतप्त हृदयों पर बरसाता है ।"[53] बाल्यकाल में छोटे-छोटे पौधों और पशु-पक्षियों तक के दु:ख की कल्पना-मात्र से महादेवीका हृदय द्रवित हो जाया करता था, जो उनकी अतिशय करूणा का सूचक है ।

आगे चलकर बौद्ध-साहित्य के अनुशीलन से उनकी यह करूण भावना अपेक्षाकृत सूक्ष्म एवं संतुलित हो गयी, क्योंकि बौद्ध दर्शन के अनुसार दु:ख इस जगत् का अनिवार्य तत्त्व है - अत: दु:ख से, चाहे वह अपना हो या पराया, ग्रस्त होना अज्ञान का सूचक है । यही कारण है कि उनकी प्रारंभिक रचनाओं में करूणा का स्वर अधिक आर्द्र है जो क्रमश: परवर्ती रचनाओं में शुष्क एवं शान्त निर्वेद में परिणत हो गया है ।

महादेवी की करूण भावना का आलम्बन मुख्यत: पुष्प है । पुष्प उस भोले-भाले व्यक्ति का प्रतीक है जिसके हृदय में कोई कपट नहीं और बाहरी रीतियों से जो परिचित नहीं । वह भरसक अपनी हँसी और सुवास से दूसरों को सुख पहुँचाता है पर निष्ठुर और कृतध्न जगत् उसे बदले में अपमान और दु:ख की ही कड़वी घूँट पिलाता है ! पुष्प की इस वचनापूर्ण कहानी को कवयित्री ने बार-बार सहानुभूतिपूर्ण शब्दों में प्रस्तुत किया है; यथा :

मधुरिमा के मधु के अवतार
सुधा से, सुषमा से, छविमान
आँसुओं से सहम अभिराम
तारकों से हे मूक अजान ।
सीख कर मुस्काने की बान
कहाँ आये हो कोमल प्राण !''[54]

यहाँ पुष्प के उस कोमल, मधुर एवं आकर्षक व्यक्तित्व का निरूपण किया गया है जो सहज ही किसी सहृदय की भावनाओं का केन्द्र बन

सकता है; इसके अनन्तर उसके क्रिया-कलापों में किसी बाल-शिशु के भोलेरूप का दिग्दर्शन करवाती हुई कवयित्री कहती है :

उषा के छू आरक्त कपोल
किलक पड़ता तेरा उन्माद,
देख तारों के बुझते प्राण
न जाने क्या आजात याद !
हैरती है सौरभ की हाट
कहो, किस निर्मोही की बाट !"[55]

और अन्त में वे पूछती है :

कौन वह है सम्मोहन राग
खींच लाया तुमको सुकुमार ?
तुम्हें भेजा जिसने इस देश
कौन वह है निष्ठुर कर्तार !"[56]

जैसे किसी भारी भीड़ में फँसे हुए, राह भुले हुए किसी अजान शिशु को देख कर सहृदय व्यक्ति पूछ बैठता है - इसके माँ-बाप कैसे निष्ठुर है जो इस भीड़ में इसे अकेला छोड़ गये ! - कुछ इसी प्रकार महादेवी फूल को देखकर पूछती हैं - कौन वह है निष्ठर कर्तार ?"

इस कविता में पुष्प के प्रति वात्सल्यपूर्ण सहानुभूति व्यक्त की गयी है जिसमें भावना की कोमलता और मधुरता तो है पर गंभीरता नहीं; करूणा इतनी तीव्र नहीं है कि वह हमारे हृदय को आलोकित कर

दे । यह कह सकते है कि यहाँ पुष्प का कोमल व्यक्तित्व वस्तुतः स्वयं कवयित्री के ही व्यक्तित्व का प्रतिनिधि है ! पुष्प भी इस काँटों भरी दुनिया के लिए अनजान है, अयोग्य है, कवयित्री भी आज के भौतिकतावादी संसार में अपने-आपको परदेशिनी ही अनुभव करती है ! पुष्प के माध्यम से वह अपनी स्थिति का साक्षात्कार करती हुई अन्त में इस निष्कर्ष को स्वीकार करती है :

''हँसो पहनो काँटों के हार
मधुर भोलेपन के संसार''[57]

इस अंतिम सत्य के कारण करूणा की धारा यहाँ नियंत्रित एवं संतुलित सीमित रूप में प्रवाहित हुई है ।

निष्ठुर संसार के हाथों पीड़ित पुष्प के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए एक अन्य कविता में भी कहा गया है :

''देकर सौरभ दान पवन से
कहते जब मुरझाये फूल,
जिसके पथ में बिछे वही,
क्यों भरता इन आँखों में धूल ?'
'अब इनमें क्या सार' मधुर जब गाती भौरों की गुञ्जार;
मर्मर का रोदन कहता है कितना निष्ठुर है संसार !''[58]

यहाँ भी मुरझाये फूलों की दयनीय स्थिति का बोध मार्मिक शब्दों में प्रस्तुत किया गया है पर फिर भी उसमें करूणा की अपेक्षा संसार की

निष्ठुरता पर अधिक बल है; एक प्रकार से पुष्पों की करूण परिणति सांसारिक विरक्ति की पोषक है – अतः कहा जा सकता है कि यहाँ भी करूण भाव संचारी रूप में ही है, स्थायी रूप में नहीं ।

पर 'मुर्झाया फूल' कविता में यह करूण भाव अपेक्षाकृत अधिक गंभीर रूप में व्यक्त हुआ है :

था कली के रूप शौशव –
में अहो सूखे सुमन,
मुस्कराता था, खिलाती
अंक में तुझको पवन !
खिल गया जब पूर्ण तू –
मंजुल सुकोमल पुष्पवर,
लुब्ध मधु के हेतु मँडराते
लगे आने भ्रमर !''[59]

x x x

कर रहा अठखेलियाँ
इतरा सदा उद्यान में,
अन्त का यह दृश्य आया –
था कभी क्या ध्यान में,
सो रहा अब तू धरा पर –
शुष्क विखराया हुआ,

गन्ध कोमलता नहीं
मुख मंजु मुरझाता हुआ !"[60]

x x x

कर दिया मधु और सौरभ
दान सारा एक दिन
किन्तु रोता कौन है
तेरे लिये दानी सुमन ?
मत व्यथित हो फूल किसको
सुख दिया संसार ने
स्वार्थमय सबको बनाया -
है यहाँ करताद ने !"[61]

यद्यपि यहाँ भी अन्त में संसार की स्वार्थपरता पर ही बल दिया गया है, पर फिर भी पुष्प की यौवनकालीन सुखद स्थिति से उसकी अन्तिम दुःखद परिणति की तुलना करते हुए उसके प्रति करूण भाव की भी अभिव्यक्ति गंभीर रूप में हुई है । कवयित्री का व्यक्तित्व दार्शनिक तथ्यों एवं सत्यों से सदा इस प्रकार अनुप्राणित रहता है कि उसकी कोई भी भावना शुद्ध भावना के रूप में कद्‌ाचित कभी व्यक्त नहीं होती, बौद्धिकता का आधार या आवरण उसके ऊपर-नीचे कहीं अवश्य विद्यमान रहता है - अतः इस कविता में भी पुष्प की उदारता एवं संसार की स्वार्थपरता का बोध विद्यमान है पर फिर भी करूण भावन की इससे कोई क्षति नहीं हुई है । महादेवी स्वयं कहती है - "कुछ संस्कार और

कुछ अनुभूति चिंतन के सम्मिलित प्रभाव से प्राप्त जीवन दृष्टि के कारण करूणा मेरे व्यक्तित्व का मूलभाव है । हर व्यक्ति को संश्लिष्ट रखने वाला कोई न कोई मूलभाव रहता ही है, जो उसके जीवन को विशेष दिशा की ओर प्रेरित करने की क्षमता रखता है ।"[62] जहाँ तक हमें पता है, करूण भाव की अभिव्यक्ति की दृष्टि से महादेवी की यह सर्वश्रेष्ठ कविता है - करूणा का उद्रेक इससे अधिक गंभीर रूप में उनके किसी भी अन्य गीत में उपलब्ध नहीं होता ।

अनेक बार महादेवी के काव्य में करूणा का आलम्बन यथार्थ न होकर काल्पनिक होता है; प्रकृति के नाना रूपों में करूण रूप को ही देखना उनकी निजी कल्पना का ही परिणाम कहा जा सकता है । आसमान के बादल उन्हें प्रायः दुःख भरे श्वास लेते हुए, रूदन करते हुए या आँसू बहाते हुए ही दृष्टिगोचर हो तो इसे वास्तविकता मानें या कवयित्री की अपनी कल्पना ? यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

(1) "तरल हृदय की उच्छ्वासें जब
भोले मेघ लुटा जाते,"[63]

(2) शून्य नभ पर उमड़ जब दुःखभार सी
नैश तम में, सघन छा जाती घटा,
बिखर जाती जुगनुओं की पाँति भी
जब सुनहले आँसुओं के हार सी;
तब चमक जो लोचनों को मूँदता
तड़ित् की मुस्कान में वह कौन है ?"[64]

(3) "कहाँ से आये बादल काले ?
कजरारे मतलाले ?

x x x

आँसू का तन, विद्युत् का मन,
प्राणों में वरदानों का प्रण,
धीर पदों से छोड़ चले घर,
दु:ख-पाथेय सँभाले !"[65]

उपर्युक्त तीनों अंशों में ही मेधों के दु:खपूर्ण रूप का चित्रण किया गया है फिर भी कवयित्री के मन में करूणाजन्य गंभीर वेदना या संवेदना का अभाव है । वह उनके दु:ख को सहानुभूति की दृष्टि से नहीं अपितु प्रशंसा की दृष्टि से देखती है क्योंकि उसका लक्ष्य दु:ख को सहन करने की क्षमता प्राप्त करना है ।

इस प्रकार कवयित्री क्रमशः करूणा से दु:ख और निर्वेद की ओर अग्रसर हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप वह स्वयं को और दूसरों को अधिक से अधिक दु:ख सहन करने की प्रेरणा देती हैं । वस्तुतः यह दृष्टिकोण उनकी करूण भावना के तीव्र भावात्मक विकास में बाधक सिद्ध होता है, इससे उनकी भावनाओं का प्रवाह संयमित, संतुलित एवं शमित होकर बौद्धिक शान्ति में परिणत हो जाता है । अतः कह सकते हैं कि उनके काव्य में करूणा स्थायी भाव न होकर एक सबल संचारी के रूप में ही व्यक्त हुई है ।

4.2 दु:खवाद :

'दु:खवाद' से अभिप्राय दु:ख की अभिव्यक्ति नहीं, अपितु दु:ख की स्वीकृति है । सामान्यत: लोग दु:ख से दूर भागते हैं जबकि कवयित्री महादेवी अपने काव्य में दु:ख को स्वीकार करती हुई तथा उसका गुण-गान करती हुई दृष्टिगोचर होती हैं - इसी वैचित्र्य के कारण उनके इस दृष्टिकोण को व्यंग्यात्मक रूप में 'दु:खवाद' के नाम से पुकारा जाता है ।

4.2.1 दु:खवाद के मूलाधार :

महादेवी को दु:ख इतना प्रिय क्यों है - इस प्रश्न पर न केवल आलोचकों ने अपितु स्वयं कवयित्री ने भी सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया है - ''बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके संसार को दु:खात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया था ।

अवश्य ही इस दु:खवाद को मेरे हृदय में एक नया जन्म लेना पड़ा, परन्तु आज तक उसमें पहले जन्म के कुछ संस्कार विद्यमान हैं जिनसे मैं उसे पहचानने में भूल नहीं कर पाती -

''दु:ख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है । हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढी तक भी न पहुँचा सकें, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना

नहीं गिर सकता । मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है परन्तु दु:ख सबको बाँटकर - विश्वजीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना में अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जलबिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है ।''[66]

महादेवी के उपर्युक्त वक्तव्य का विश्लेषण करने पर उनके दु:खवाद के सम्बन्ध में चार तथ्यों का संकेत मिलता है - (1) व्यक्तिगत जीवन में उन्हें अतिशय सुख मिला है, कदाचित् उसी की प्रतिक्रिया दु:खवाद के रूप में हुई हो । (2) बौद्ध दर्शन का भी उन पर गहरा प्रभाव है । (3) उनके दु:खवाद के मूल में पूर्व जन्म के भी कुछ संस्कार हैं । (4) मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से दु:ख का जीवन और समाज में अधिक महत्त्व है ।

इन चार कारणों में से हम किसे स्वीकार करें और किसे नहीं - इसका निर्णय करने के लिए इन पर अपेक्षाकृत विस्तार से विचार किया जाता है ।

4.2.1.1 व्यक्तिगत सुख की प्रतिक्रिया :

अपने दु:खवाद के सम्बन्ध में सबसे पहले कारण की संभावना करते हुए कवयित्री ने उसे व्यक्तिगत सुख की प्रतिक्रिया माना है । पर साथ ही 'कदाचित्' शब्द का प्रयोग यह भी सूचित करता है यह मान्यता निश्चित नहीं है - उस पर उन्हें संदेह भी है । महादेवी के इन शब्दों से यह स्पष्ट होता हैं -

''सुख और दु:ख के धूपछाँही डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दु:ख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है । इस क्यों का उत्तर दे सकना मेरे लिए किसी समस्या के सलुझा डालने से कम नहीं है । संसार साधारणत: जिसे दु:ख और अभाव के नाम से जानता है । वह मेरे पास नहीं है । जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है; उस पर पार्थिव दु:ख की छाया नहीं पड़ी । कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है ।''[67]

महादेवी का यह उद्धरण इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि भले ही भौतिक सुख-साधनों एवं बाह्य समृद्धि की दृष्टि से कवयित्री को सभी-कुछ प्राप्त हो किन्तु भावात्मकता के स्तर पर उनके जीवन में भी अभाव की सूक्ष्म अनुभूति अवश्य रही है । वह अभाव है - एक समान विचार-धारा वाले मित्र या प्रिय व्यक्ति का जिसके साथ भावों का आदान-प्रदान किया जा सकता है । अवश्य ही उन्होंने अपने वैवाहिक जीवन को ठुकरा कर तथा आमरण वैराग्य का व्रत लेकर जानबूझकर ही इस अभाव को अपनाया है, फिर भी अभाव तो है ही । यदि हम जानबूझकर ही कंटकों के पथ पर चलें तो भी काँटे चुभते ही है, कष्ट भी होता ही है - यह दूसरी बात है कि उस स्थिति में हम किसी और को दोष न देते हुए स्वयं को ही उत्तरदायी मानते हुए सहिष्णुता एवं धैर्य के साथ उस चुभन को सहन कर लेंगे । महादेवी की भी यही स्थिति है ।

दूसरे, लौकिक प्रणय के अभाव की पूर्ति उन्होंने अलौकिक प्रणय द्वारा या प्रेम के उदात्तीकरण द्वारा करली है, पर उनका अलौकिक प्रेम भी विरह-प्रधान है - अतः वह भी उनकी व्यथा का स्थायी आधार है ।

ऐसी स्थिति में उनके दु:ख को केवल 'सुख की प्रतिक्रिया' के रूप में स्वीकार करना कठिन है । उनका 'कदाचित्' शब्द उपयुक्त ही है ।

4.2.1.2 बौद्ध दर्शन का प्रभाव :

बौद्ध दर्शन की विस्तृत चर्चा करते हुए अन्यत्र यह स्पष्ट किया जा चुका है कि दु:ख के सम्बन्ध में बुद्ध के चार आधारभूत सिद्धान्त ये हैं - (1) संसार दु:खों से परिपूर्ण है । (2) दु:ख के पीछे कारण है । (3) सांसारिक दु:खों से छुटकारा मिल सकता है । (4) दु:ख से छुटकारा पाने का उपाय भी है । इन्हीं चार सिद्धान्तों को बौद्ध मत में चार आर्य सत्यों के रूप में मान्यता दी गयी है ।

संक्षेप में बुद्ध के मतानुसार संसार के समस्त दु:ख का मूल कारण तृष्णा है - हम अपनी तृष्णाओं के कारण दु:खी होते हैं और यदि इन तृष्णाओं से मुक्ति पालें तो दु:ख से भी मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं । यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो तृष्णाओं से मुक्ति का अर्थ है सुख-प्राप्ति की कामनाओं का त्याग या दु:ख की स्वीकृति । अतः संक्षेप में दु:ख को जगत् का नित्यलक्षण मानते हुए उससे भागने की अपेक्षा उसे पूर्णतः स्वीकार कर लेना ही, उससे मुक्ति पाने का सर्वोत्कृष्ट

उपाय है । इसी मनःस्थिति को प्राप्त कर लेना निर्वाण है । महादेवी में भी दुःख के प्रति यह दृष्टिकोण प्रायः दृष्टिगोचर होता है; यथा :

सुख की चिर पूर्ति यही है
उस मधु से फिर जावे मन !

x x x

चिर ध्येय यही जलने का
ठंडी विभूति बन जाना ;
है पीड़ा की सीमा यह
दुःख का चिर सुख हो जाना !"[68]

x x x

यह चिर अतृप्ति हो जीवन
चिर तृष्णा हो मिट जाना !"[69]

यहाँ सुख की स्थायी प्राप्ति का साधन सुख या माधुर्य से विरक्ति को ही माना गया है । यदि तृष्णायें ही समाप्त हो जाए तो जीवन में दुःख स्वयं सुख में परिणत हो जाएगा - और यदि कोई, तृष्णा या इच्छा हो तो वह केवल 'मिट जाने' की ही हो तो उस स्थिति में दुःख कहाँ रहेगा ।

कवयित्री पर बौद्ध मत का गहरा प्रभाव है जिसके कारण वे दुःख का मूल कारण सुख-प्राप्ति की इच्छाओं को मानती हुई उनके शमन के

लिए तथा दु:ख को स्वीकार करने के लिए प्रयत्नशील रहती हैं । बौद्ध दर्शन की पृष्ठभूमि के आधार पर यदि विचार किया जाय तो कवयित्री का यह प्रयास अस्वाभाविक या विचित्र प्रतीत न होगा । जिस व्यक्ति ने जीवन के आरंभ में ही बौद्ध दर्शन को आत्मसात् कर लिया हो, वह यदि सुख के प्रति अरूचि एवं दु:ख के प्रति स्वीकृति का भाव व्यक्त करे तो नितान्त स्वाभाविक है । अत: हमें इस तथ्य को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है कि महादेवी के दु:खवादी दृष्टिकोण के पोषण में बौद्ध दर्शन के प्रभाव का गहरा योग है ।

अत: वह 'बुद्ध के प्रति' काव्य में लिखति है -

''अवतरित हुए तुम धरती पर
बहुजन हिताय बहुजन सुखाय !''[70]

महादेवीने 'बुद्ध-जन्म' काव्य में बुद्ध के जन्म को वह लोकहितार्थे के लिए मानती है, जो महादेवी का दु:ख है वह बुद्ध की तरह सामान्य जन के लिए ही है -

''बोद्ध हित है जन्म
भव-कल्याण मेरा लक्ष्य,
लोकहित अन्तिम हुआ
है जन्म यह प्रत्यक्ष !''[71]

4.2.1.3 पूर्वजन्म के संस्कार :

भारतीय अध्यात्मवादी चिन्तकों ने प्रायः यह स्वीकार किया है कि पूर्वजन्म के संस्कारों का अभाव अगले जन्मों में भी विद्यमान रहता है । पूनर्जन्म के सिद्धान्त के अनुसार पिछले जन्म में हमारी जैसी इच्छाएँ, भावनाएँ एवं आकांक्षाएँ होती हैं उन्हीं के अनुरूप हमारा अगला जन्म होता है । पूर्वजन्म की भावात्मक प्रवृत्तियाँ ही अगले जन्म में मूल वृत्तियों के रूप में विद्यमान रहती हैं । अतः महादेवी का यह कहना है कि उनके दुःखवाद के मूल में पूर्वजन्म के संस्कार हैं, इस बात का सूचक है कि दुःख की प्रवृति उनमें जन्म-जात है । आधुनिक मनोविश्लेषण के अनुसार कहा जा सकता है कि उनका दुःख-बोध केवल चेतन स्तर तक ही सीमित नहीं है अपितु अचेतन मन में भी उसका प्रभाव अंकित है । वस्तुतः महादेवी में जन्म से ही करूणा एवं सांसारिक सुखों से जैसी विरक्ति है - वह उनके पूर्व संस्कारों पर आधारित जन्मजात प्रवृति ही है । जो पुनर्जन्म को नहीं मानते, उनके लिए इसका इतना ही अर्थ है कि दुःख सम्बन्धी प्रवृतियाँ उनके अचेतन मन में जीवन के आरंभ से ही विद्यमान हैं । वस्तुतः जिन प्रवृतियों से हमारा जन्मजात सम्बन्ध होता है वे ही जीवन में स्थायी, गंभीर एवं व्यापक रूप में विकसित होती हैं जबकि परवर्ती आरोपित प्रवृतियाँ प्रायः अस्थिर सिद्ध होती हैं ।

4.2.1.4 मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से दुःख का महत्त्व :

प्रायः विभिन्न साधकों एवं कवियों ने यह स्वीकार किया है कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सुख की अपेक्षा दुःख का अधिक महत्त्व है ।

सुख जहाँ व्यक्ति के मन में संकीर्णता, स्वार्थपरता, अहंवादिता एवं अन्य तुच्छ भावों का संचार करता है, वहाँ दु:ख व्यक्ति के मन को कोमल, उदार, भाव-प्रवण, व्यापक एवं उदात्त बनाता है । महादेवी भी इस मान्यता को स्वीकार करती हैं; यथा -

''उसमें मर्म छिपा जीवन का,
एक तार अगणित कम्पन का,
एक सूत्र सबके बन्धन का,
संसृति के सूने पृष्ठों में करूणकाव्य वह लिख जाता !
वह उर में आता बन पाहुन
कहता मन से 'अब न कृपण बन'
मानस की निधियाँ लेता गिन
दृग-द्वारों को खोल विश्वभिक्षुक पर, हँस बरसा जाता !''[72]

इसके विपरित सुख व्यक्ति को कितना स्वार्थी, कृपण एवं अनुदार बना देता है; यह कवयित्री के शब्दों में द्रष्टव्य है :

मृग-मरीचिका के चिर पथ पर,
सुख आता प्यासों के पग धर,
रूद्ध हृदय के पट लेता कर,
गर्वित कहता 'मैं मधु हूँ मुझसे क्या पतझर का नाता ?''[73]

वस्तुत: रहस्यवादी कवि के लिए तो इस दु:खानुभूति का और भी अधिक महत्त्व है । वह तो भावनाओं के माध्यम से ही प्रिय का साक्षात्कार करता है, अत: उसकी भावनाएँ जितनी ही तीव्र और गंभीर

होगी उतनी ही उसे लक्ष्यपूर्ति में अधिक सफलता प्राप्त होगी । दूसरे, दु:ख से ही आत्म-विस्तार होता है जिससे ससीम और असीम में मेल संभव है; कवयित्री के शब्दों में -

"दु:ख के पद छू बहते झरझर,
कणकण से आँसू के निर्झर
हो उठता जीवन मृदु उर्वर,
लधु मानस में वह असीम जग को आमंत्रित कर लाता !"[74]

उपर्युक्त उद्धरणों से यह भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि महादेवी दु:ख को इतना अधिक क्यों चाहती है । वस्तुत: जन्मजात प्रवृत्तियों के कारण उनमें करूणा की भावना प्रबल रही, बौद्ध दर्शन के प्रभाव के कारण यह करूणा दु:ख की स्वीकृति में परिणत हो गयी, निजी जीवन की विरक्ति ने इस स्वीकृति को जीवन की यथार्थ अनुभूति का रूप दे दिया तो अन्त में अलौकिक प्रणय, रहस्यवादी साधना एवं आत्म-चिन्तन से उन्हें यह बोध हो गया है कि दु:ख ही जीवन का सार है, जिसकी गंभीरता में ही चरम लक्ष्य की पूर्ति निहित है । इस प्रकार महादेवी में दु:ख की भावना अनेक स्त्रोतों से क्रमश: विकसित होती हुई अन्त में एक ऐसे बोध में परिणत हो गयी है, जहाँ दु:ख दु:ख न रह कर अन्तरात्मा का अभीप्सित साध्य ही बन गया है - ऐसी स्थिति में यदि दु:ख उन्हें सुख ही प्रतीत हो तो क्या आश्चर्य है ।

4.2.2. दु:ख सम्बन्धी विभिन्न भावातम्क प्रवृतियाँ :

महादेवी के उपर्युक्त दु:ख बोध का विकास क्रमशः हुआ है, अतः उनमें दु:ख के प्रति विभिन्न भावात्मक प्रवृतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं यहाँ कुछ प्रवृतियों का उल्लेख किया जाता है ।

4.2.2.1 प्रकृति में दु:ख का प्रत्यक्षीकरण :

प्रारंभ में कवयित्री दु:ख के प्रति सहिष्णु कम, उससे विह्वल अधिक है, अतः वह प्रायः प्रकृति के क्रिया-कलापों में भी दु:ख का साक्षात्कार करती हैं; यथा -

''धीरे से सूने आँगन में
फैला जब जाती हैं रातें,
भर भरके ठंडी साँसों में
मोती से आँसू की पातें
उनकी सिहराई कम्पन में
किरणों के प्यासे चुम्बन में !''[75]

x x x

कन कन में बिखरा है निर्मम !
मेरे मानस का सूनापन !''[76]

यहाँ कवयित्री अपने ही सूनेपन को समस्त प्रकृति में देखती है, जिसमें दु:ख के प्रति कोई आकर्षण दिखाई नहीं पड़ता ।

4.2.2.2 सुख और दुःख में द्वन्द्व :

सृष्टि में सुख भी है और दुःख भी - ऐसी स्थिति में वह किसे देखे और किसे नहीं ? यह प्रश्न भी कई बार कवयित्री के मन में द्वन्द्व का कारण बन जाता है -

"कह दे माँ क्या अब देखूँ !

x x x

सौरभ पी पी कर बहता
देखूँ यह मन्द समीरण,
दुःख की घूँटे पीतीं या
ठंडी साँसो को देखूँ ।"[77]

जीवन और जगत् में दुःख की प्रधानता को देखकर कई बार कवयित्री निराशा और क्षोभ से भी ग्रस्त हो जाती है -

"दिया क्यों जीवन का वरदान ?

x x x

सिकता में अंकित रेखा सा,
वात-विकम्पित दीपशिखा सा;
काल-कपोलों पर आँसू सा
ढुल जाता हो म्लान ।"[78]

यहाँ जीवन की क्षणभंगुरता जन्य दुःख से कवयित्री दुःखी एवं संतप्त दिखाई पड़ती हैं - दुःख को स्वीकारने की अपेक्षा वह यह

चाहती है कि इस दु:खमय संसार में जीवन ही न धारण करना पड़े ।

4.2.2.3 दु:ख की साधन-रूप में स्वीकृति :

धीरे-धीरे कवयित्री को बोध होता है कि साध्य की उपलब्धि दु:ख रूपी साधन से ही संभव है, अत: वह दु:ख को अपनाने लगती हैं; इसीलिए वह कामना करती है :

> झरते नित लोचन मेरे हों !
>
> x x x
>
> वह सूनापन हो उनका,
> यह सुख-दु:ख मय स्पन्दन मेरे हों !"[79]

और इसीलिए वे प्रियतम को दु:ख के रूप में आमंत्रित करने लगती है :

> "तुम दु:ख बन इस पथ से आना !
> शूलों में नित मृदु पाटल सा,
> खिलने देना मेरा जीवन;
> क्या हार बनेगा वह जिसने
> सीखा न हृदय को बिंधवाना !"[80]

स्पष्ट ही यहाँ दु:ख दु:ख के लिए नहीं है अपितु इस लक्ष्य से है कि कदाचित् प्रिय भी दु:ख के रूपमें उन्हें प्राप्त हो जाये ! यहाँ हृदय का बिंधवाना केवल बिंधवाने के लिए नहीं है अपितु हार बनने के लिए है । अत: दु:ख साधन रूप में ही है - साध्य रूपमें नहीं ।

4.2.2.4 दु:ख साध्य रूप में :

पर आगे चलकर दु:ख साधन से साध्य बन जाता है । ऐसी स्थिति में उन्हें दु:ख ही सुखमय और सुख दु:खमय प्रतीत होने लगता है -

''दु:खमय सुख
सुख भरा दुख,
कौन लेता पूछ जो तुम
ज्वाल-जल का देश देते !''[81]

या -

विरह का युग आज दीखा,
मिलन के लघु पल सरीखा;
दु:ख सुख में कौन तीखा,
मैं न जानी औ न सीखा !''[82]

और अन्त में वह चिर व्यथा को ही अपनी स्थायी निधि के रूप में स्वीकार कर लेती है :

''प्राण हँस कर ले चला जब
चिर व्यथा का भार !

x x x

अब न लौटाने कहो
अभिशाप की वह पीर,

बन चुकी स्पन्दन हृदय में
वह नयन में नीर !
अमरता उसमें मनाती है मरण-त्योहार ![83]

अपनी साधना की चरम स्थिति में उन्हें बोध होता है कि खोज ही प्राप्ति है, साधना ही सिद्धि है और रूदन ही स्थायी सुख है :

"खोज ही चिर प्राप्ति का वर,
साधना ही सिद्धि सुन्दर,
रूदन में सुख की कथा है,
विरह मिलने की प्रथा है,
शलभ जलकर दीप बन जाता निशा के शेष में !
आँसुओं के देश में !"[84]

इस प्रकार कवयित्री अन्त में दुःख को अपने जीवन की साधना या अंतिम सिद्धि मानती हुई उसके साथ चिर स्थायी सम्बन्ध स्थापित कर लेती हैं । वस्तुतः दुःख के इस चिर स्थायी सम्बन्ध के मूल में सबसे बड़ा कारण आध्यात्मिकता ही है - अर्थात् अध्यात्मपथ की पथिक होने के कारण ही वे दुःख को अपना चिर संगी मानती हैं । ऐसी स्थिति में कहा जा सकता है कि महादेवी अनेक मानसिक उतार-चढ़ावों के अनन्तर दुःख के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेती हैं । 'नीहार' की रचना समय महादेवी की अनुभूतियाँ कुतूलहलमिश्रित, 'रश्मि' इसे आकार की प्राप्ति हुई, किन्तु 'नीरजा' एवं 'सांध्यगीत' तक आते आते उनके हृदयने सुख-दुःख के सामन्जस्य का अनुभव किया ।

महादेवी का यह बहुचर्चित दुःखवाद उनके हृदय के क्रमिक विकास एवं आत्मा के क्रमिक विस्तार पर आधारित है; उसे हम अपनी दृष्टि से देखकर भले ही चौंके, विस्मित हों और अन्त में अस्वाभाविक या असंभव घोषित करें, किन्तु कवयित्री के दृष्टिकोण से परखने पर वह उनके भावात्मक जीवन एवं आध्यात्मिक अनुभव का एक अनिवार्य अंग दिखाई पड़ता है । वह उनकी साधना का प्रारंभ में प्रेरक, मध्य में संबल और अन्त में लक्ष्य बन गया है । महादेवी स्वयं कहती है - ''समष्टि में अपने आप को लय कर देना ही मैं कवि की मुक्ति मानती हूँ । अपनी इस धारणा का उपयुक्त प्रतीक मैंने बादल को ही पाया है, जो धरती को हरा-भरा करके और हर चीज को विकास का वातावरण देकर स्वयं मिट जाता है । इस में दुःख किसी व्यक्तिगत अभाव का पर्याय न होकर एक संवेदनशील करूण भाव का ही प्रतीक है ।''[85]

यथा -

''मैं नीरभरी दुःख की बदली !

x x x

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली !''[86]

वस्तुतः महादेवी के काव्य का मूल भाव या स्थायी भाव जहाँ अलौकिक प्रणय एवं रहस्यानुभव है, वहाँ उसके सहचारी - संचारी नहीं, करूणा, निर्वेद और दुःख हैं । प्रारंभिक करूणा ही अन्त में सुख के प्रति निर्वेद एवं दुःख के प्रति अनुराग में परिणत होकर वैराग्य में परिणत हो गयी है । अध्यात्मपथ के पथिक के लिए जब राग का केन्द्र अलौकिक हो जाता है तो लौकि्क क्षेत्र का विराग से परिपूर्ण हो जाना स्वाभाविक है । अतः यदि हम उनके लौकिक वैराग्य - दुःख की स्वीकृति - को भी सहज स्वाभाविक मानने में संकोच न करना चाहिए । जैसा कि स्वयं कवयित्री ने कहा है, जब प्रेम का आलम्बन किसी और लोक का हो जाता है तो इस दुनिया का रूदन प्रहरी के रूप में और मृत्यु निर्वाण के तुल्य दृष्टिगोचर होने लगती है :

"पीड़ा का साम्राज्य बस गया
उस दिन दूर क्षितिज के पार,
मिटना था निर्वाण जहाँ
नीरव रोदन था पहरेदार !"[87]

फलतः हमारे विचार में उनकी प्रणय-वेदना, करूणा और दुःखवाद के मूल स्त्रोत एवं आधार भिन्न-भिन्न होते हुए भी अन्ततः वे एक दूसरे से पूरक एवं साधक ही हैं - अतः इनसे उनके काव्य में कोई असंगत या परस्पर - विरोधी स्थिति उत्पन्न नहीं होती - वे सब उन्हें किसी दूर देश की ओर अग्रसर करने में सहायक एवं गति वर्द्धक ही सिद्ध होते हैं ।

5. दर्शन–अध्यात्म :

मननशील मानव सामान्य जीवन में घटित होने वाली विविध घटनाओं और परिस्थितियों के विषय में भी अपनी धारणा बना लेता है । अनेकानेक संघर्षो का सामना करते हुए और समस्याओं का समाधान ढूँढ़तें हुए उसकी विचारशक्ति क्रियाशील रहती है । उसकी यही चिंतन – प्रणाली वैयक्तिक परिधि से निकल कर जीवन–जगत् की सार्थकता का अन्वेषण करने लगती है । अपने विवेक और विचार के आधार पर प्रत्येक मनुष्य जीवन के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण बना लेता है, जो उसका 'दर्शन' कहलाता है ।

'दर्शन' शब्द 'दृश्' धातु में 'ल्युट्' प्रत्यय लगाने से बना है, जिसका सामान्य अर्थ है – देखना, जानना, समझना आदि । विवेकी मनुष्य इस दृश्य जगत् से प्राप्त अनुभवों पर गंभीरता से विचार करता है उसकी चिंतन–प्रशंसा ही नहीं आध्यात्मिक जीवन की भी सार्थकता प्रमाणित होने लगती है । सूक्ष्म चिंतन से सत्य का अनुसंधान करते हुए अनेकानेक रहस्यों का साक्षात्कार करके अपनी धारणाओं के आधार पर उनका प्रकाशन करता है । दार्शनिक अपनी महती चिंतना से जीवात्मा और परमात्मा को अभिन्न मानने में सफल हो जाता है । 'दर्शन' का चिंतन बौद्धिक होते हुए भी आत्मसिद्धि होता है । उसमें निहित विश्लेषण प्रक्रिया भौतिक जगत् से संक्रमित होती हुई आध्यात्मिक जगत् तक पहुँचती है । आध्यात्मिकता के प्रति उन्मुख रहने के कारण दर्शन अंततोगत्वा अंतर्मुखी हो जाता है अर्थात् चिंतक (दार्शनिक) के अंतर्दृष्ट सत्य ही दर्शन की संज्ञा प्राप्त करते हैं ।

दर्शन का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है । सृष्टि-संबंधी समस्त जिज्ञासाओं और शंकाओं का समाधान 'दर्शन' ही करता है । आदर्श, यथार्थ, समाज, धर्म, नीति, सौन्दर्य आदि से संबंधित जो मान्यताएँ साहित्य में अभिव्यक्त होती हैं, वे दर्शन के अंतर्गत ही आती हैं । साहित्यकार और दार्शनिक दोनों ही सत्य का साक्षात्कार करके, उससे प्राप्त आनन्द की अनुभूति को सर्वव्यापी बनाने का प्रयत्न करते हैं । दोनों में अंतर मात्र यही है कि यहाँ दार्शनिक का सत्य तर्कसंगत, वैचारिक और नीरस होता है वहाँ साहित्यकार का सत्य संवेदना-संबंधित, कल्पना-मिश्रित और सरस होता है ।

इससे स्पष्ट है कि साहित्य और दर्शन में घनिष्ठ संबंध है । साहित्य में प्रवेश पाकर दर्शन की शुष्कता और नीरसता जहाँ कम हो जाती हैं वहीं दर्शन के संतुलित समावेश से साहित्य की गंभीरता और स्थिरता बढ़ जाती है । दर्शन सहज अनुभूत चेतना सिद्ध वैचारिक सत्य का युक्तियुक्त स्थापना करता है । वहाँ प्रमाण-सिद्ध तत्त्व-प्रतिपादन में कल्पना के लिए बहुत कम अवकाश रहता है । उस प्रक्रिया में उसका भावना - पक्ष गौण और बुद्धि पक्ष प्रबल हो जाता है । उसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि दर्शन अपने स्वतंत्र अस्तित्व में शुष्क रहता है । किन्तु जब वह साहित्य-निबद्ध भावानुभूति में प्रवाहमान होता है तब उसका स्वरूप सरस और सहृदय - संवेध हो जाता है । संवेदनशील साहित्यकार अपने सर्जन को वैचारिक दृष्टि से सक्षम और दीर्घजीवी बनाने के लिए दर्शन को स्वीकार करता है और पूरे कौशल के साथ उसकी हृदय-ग्राह्य रूप में प्रतिष्ठा करता है । जिस साहित्यकार का

दर्शन जितना उदत्ता और स्वस्थ्य होता है, उसकी कृति भी उतनी ही प्रभावशाली और समर्थ होती है ।

काव्य के आंतरिक सत्य भी जीवन के आंतरिक सत्यों की भाँति दर्शन तथा तत्त्व-चिंतन पर अवलंबित है । सत्य महादेवी के काव्य का साध्य है । किन्तु उसकी प्राप्ति का साधन सौन्दर्य है । सौन्दर्य साधन के कारण ही दर्शनशास्त्र का शुष्क एवं जटिल सत्य रंगरंजित और कोमल बन गया । नीरस दार्शनिक विचार कवयित्री की रागात्मक अनुभूतियों से सरस काव्यमयी रचना में ढ़ल गये ।

दर्शन का आधिक्य काव्य को बोझिल बना देता है । उसकी सहज गति को बनाये रखने के लिए बुद्धि और भावना का संतुलन अनिवार्य है । ''काव्य में बुद्धि ह्दय से अनुशासित रहकर ही सक्रियता पाती है, इसी से उसका दर्शन न बौद्धिक तर्क-प्रणाली है और न सूक्ष्म बिन्दु तक पहुँचाने वाली विशेष - विचार - पद्धति । वह तो जीवन को चेतन और अनुभूति के समस्त वैभव के साथ स्वीकार करता है ।''[86] महादेवी के काव्य में भावनाओं की कोमलता और चिंतन की सूक्ष्मता का अद्‌भुत समन्वय है । जीवन के जटिल और गूढ़ रहस्यों तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों के सरल प्रकाशन के लिए ऐसी प्रतीकात्मक और संकेतात्मक शैली अपेक्षित है जो लौकिक के द्वारा अलौकिक का स्थूल के द्वारा सूक्ष्म का और ज्ञात के द्वारा अज्ञात का अनुभव करा सके । ''दर्शन और काव्य की शैलियों में अंतर है, परन्तु यह अंतर रूपगत है, तत्त्वगत नहीं । इसी से एक जीवन के रहस्य का मूल और दूसरी शाखा -

पल्लव - फूल खोजती है ।''[89] महादेवी के दार्शनिक विचार प्रतीकों और संकेतों के माध्यम से व्यक्त हुए है । उनकी कल्पना के रंग और भावना के सौन्दर्य से बोझिल दार्शनिक विचार भी निखर गये हैं ।

महादेवी मुख्य रूप से वेदान्त दर्शन से प्रभावित हैं उसके मुख्य प्रतिपाद्य हैं - ब्रह्म, जीव, माया, जगत् और मुक्ति ।

5.1 ब्रह्म :

ईश्वरवादी भारतीय दर्शन में 'ब्रह्म' को सर्वव्यापी, सर्वातिशायी और सच्चिदानंद कहा गया है । वह इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारणभूत परमतत्त्व भी है ।[90] वह सर्वज्ञ, अंतर्यामी, सर्वभूतान्तरात्मा और सबका अधिपति है ।[91] महादेवी की भावानुभूतियों का आलंबन भी असीम, अनंत, सर्वव्यापक और करूणामय ब्रह्म है । उस अनंतशक्ति संपन्न अलौकिक पुरूष का सौन्दर्य प्रकृति के विभिन्न उपकरणों में प्रतिभासित है । प्राकृतिक उपादानों की भव्यता से कवयित्री के मानस-पटल पर असीम ब्रह्म का जो स्वरूप अंकित होता है वह इस प्रकार है -

चितवन तम - श्याम रंग,
इन्द्रधनुष भृकुटि-भंग,
विद्युत का अंगराग,
दीपित मृदु अंग-अंग
उड़ता नभ में अछोर तेरा नवनील चीर ।''[92]

उस दिव्य पुरूष के चरणों पर देव अपना अमर-लोक न्यौछावर करते हैं, उसके नख-चंदों की कांति के समक्ष नक्षत्रों और हीरकों के आलोक भी लज्जित हो जाते हैं यथा -

(i) ''जिन चरणों पर देव लुटते थे अपने अमरों के लोक,
नखचन्द्रों की क्रांति जल लजाती थी नक्षत्रों के आलोक;''[93]

(ii) 'जिन चरणों की नख-आभा के हीरक जाल लजाते थे;'[94]

जब वह अपनी करूणा का स्त्रोत प्रवाहित करता है तभी उसी उससे आप्लावित हो जाते हैं :

रजत रश्मियों की छाया में धूमिल धन सा वह आता;
इस निदाध से मानस में करूणा के स्त्रोत बहा जाता ।...

दुख के पद छू बहते झर-झर,
कण-कण से आँसु के निर्झर,
हो उठता जीवन मृदु उर्वर,
लधु मानस में वह असीम जग को आमंत्रित कर लाता !''[95]

अनंत और चिन्मय ब्रह्म की समस्त गतिविधियाँ नियमबद्ध है । दीपक की ज्वाला बनकर आलोक लुटाना, फूलों में मकरंद बनकर सौरभ बिखराना चंचल निर्झर की धारा बनकर भूधर को सिक्त करना और उदधि की उर्मि बनकर धरा को अभिषिक्त करना उसका अटल नियम है । दीपक जलना छोड़कर खिलता नहीं और फूल खिलना भूलकर जलता नहीं । उसी प्रकार न तरल सागर कभी पाषाण हुआ, न

ही कठिन पर्वतने कोमल रूप धारण किया । सभी अपनी नियमित क्रिया में संलग्न हैं :

"जिसने उसको ज्वाला सौंपी
उसने इसमें मकरंद भरा,
आलोक लुटाता वह धुल-धुल
देता झर यह सौरभ बिखरा ।

दोनों संगी पथ एक किन्तु कब दीप खिला कब फूल जला ?

वह अचल धरा को भेंट रहा
शत-शत निर्झर में हो चंचल
चिर परिधि बना भू को घेरे
इसका नित उर्म्मिल करूणा-जल !
कब सागर उर पाषाण हुआ, कब-गिरि ने निर्मम तन बदला ?"[96]

महादेवी की सर्ववादी चेतना प्रकृति के कण-कण में अपने देव के दर्शन करती है । ज्योति का असीम विस्तार लिये वह परम ब्रह्म अपनी आभा के एक कण से नभ में अगणित दीपक जला देता है, सूर्य को कनक-रश्मियों और चँद्रमा को रजत-रश्मियों से सँवार देता है, उसकी महिमामयी छवि की छाया मात्र छूकर समुद्र महान् हो जाता है और नील गगन अनंत विस्तार पा लेता है; उसकी सुषमा का एक कण राशि-राशि फूलों का वन खिला देता है और उसको एक भू-संचालन से शत-शत प्रलय का निर्माण हो जाता है यथा -

(i) 'तुम असीम विस्तार ज्योति के मैं तारक सुकुमार'[97]

(ii) 'तेरी आभा का कण नभ को, देता अगणित दीपक दान;
दिन को कनकराशि पहनाता, विधु को चाँदी का परिधान ।..
तेरी महिमा की छाया-छवि, छू होता वारीश अपार,
नील गगन पर लेता घन-सा, तम सा अंतहीन विस्तार
सुषमा का कण एक खिलाता, राशि-राशि फूलों के वन,
रात-रात झंझावत प्रलय बनता पल में भ्रू-संचालन ।''[98]

नवीन सुहागिनी प्रिया का प्रिय चिरंतन है । वह सर्वव्यापक उसकी कसक में माधुर्य भर देता है : उसके तृषित नयनों को सजल कर देता है और निद्रा के एकांत को स्वर्ण-स्वप्नों से सजा देता है :

(i) 'प्रिय चिरंतन हैं सजनि
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं ।''[99]

(ii) कौन तुम मेरे हृदय में ?
कौन मेरी कसक में नित
मधुरता भरता अलक्षित ?
कौन प्यासे लोचनों में
घुमड़ घिर झरता अपरिचित ?
स्वर्णस्वप्नों का चितेरा
नींद के सूने निलय में !''[100]

वेदान्त दर्शन को प्रभावित महादेवी की चिंतन-प्रक्रिया में ब्रह्म का जो स्वरूप उभरता है वह निराकार है । वह आदिद्रष्टा निर्विकार ब्रह्म ही समस्त परिवर्तनों का आधार है, सारा उसी में समाहित है :

"उसी नभ सा क्या वह अविकार
और परिवर्तन का आधार ?
पुलक से उठ - जिसमें सुकुमार,
लीन होतें असंख्य संसार !'[101]

उस आदि-अंतहीन, अनंतशक्ति-संपन्न, अपार ज्योति स्वरूप, परमतत्व की आराधना के लिए किसी बाह्य पूजन-अर्चन और मंदिर की आवश्यकता नहीं । उस असीम की मानसी पूजा के लिए कवयित्री को अपना तन-मन और जीवन ही उपयुक्त लगता है । लघु जीवन को आराध्य का सुन्दर मंदिर बनाकर अपनी श्वासों से प्रिय का अभिनन्दन करने वाली महादेवी ने साधना को एक नयी दिशा दी है । केवल मन ही नहीं अपितु उनका सवाँग प्रिय की अर्चना में सक्रिय हो उठता है :

क्या पूजा क्या अर्चन रे ?
उस असीम का सुन्दर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे ।
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे ।
प्रिय प्रिय जपते अधर, ताल देता पलकों का नर्तन रे ।[102]

'देवस्य पश्य काव्यं महित्वा'[103] कहकर वैदिक ऋषियोंने विश्व को काव्य और ब्रह्म हो उसका रचयिता स्वीकार किया है । महादेवी के ब्रह्म ने भी संस्कृति के सूने पृष्ठ पर करूण काव्य लिखा है यथा -

"संसृति के सूने पृष्ठों पर
करूण काव्य वह लिख जाता ।"[104]

कवि होने से यह सर्वसिद्ध है कि वह ज्ञाता और रचयिता होने के साथ ही सहृदय भी है, संवेदना - संवलित होकर प्रेम और विरह की अनुभूति भी करता है । वह केवल अमर संगीत का गायक ही नहीं, सम्मोहन मुरलीवादक भी है । इतना ही नहीं, कवयित्री ने प्रकृति के सुन्दर उपकरणों का आश्रय लेकर अप्सरा - नर्तकी की परिकल्पना की और उसे परम सत्ता पर आरोपित करके उसके भव्य और विराट् रूप का अंकन किया है :

"लय गीता मंदिर, गति ताल अमर,
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !
आलोक-तिमिर सित-असित चीर,
सागर-गर्जन रूपझुन मंजीर;
उड़ता झंझा में अलक-जाल,
मेघों में मुखरित किंकिण - स्वर ।"[105]

महादेवी के संपूर्ण काव्य में ब्रह्म का जो स्वरूप निर्मित है वह तो विशुद्ध सगुण साकार है, न ही निर्गुण - निराकार । उनका ब्रह्म सगुण-निराकार है । अनेकानेक अलौकिक गुणों से युक्त वह किसी आकार - विशेष से मुक्त है । वह निशीथ नीरवता में चुपचाप आता तो है किन्तु उसके 'पदचाप' निमिषों से भी नीरव है । आस्तिकमना कवयित्री पर वैदिक और औपनिषदिक प्रभाव सर्वत्र लक्षित होता है ।

परमब्रह्म की सत्ता स्वीकार करके वे बौद्ध धर्म के अनीश्वरवाद से सर्वथा मुक्त हैं । महादेवी की करूणा पर बौद्ध धर्म के दु:खवाद का प्रभाव अवेक्षणीय है ।

5.2 जीव :

उपनिषदों में जीवात्मा को चेतन, कर्ता, भोक्ता, कर्मफलानुसार उर्ध्व-अध: योनियों को प्राप्त होने वाला तथा अमरण-धर्मा कहा गया है । इन लक्षणों के अतिरिक्त ब्रह्म के साथ उनकी अभिन्नता और तादात्म्य की स्थापना भी हुई है । वह जीवात्मा अंगूठे के बराबर परिमाण, वाला सूर्य के समान प्रकाशवान, संकल्प एवं अहंकार से युक्त, बुद्धि एवं शरीर के गुणों से समन्वित और आरे की नोक की भाँति सूक्ष्म आकार का है । वह अनंत भावों से युक्त होने में समर्थ है किन्तु अहंता, ममता आदि गुणों से संश्लिष्ट रहने के कारण ही एकदेशीय बना रहता है । वह अपने वास्तविक रूप में लैंगिक दोषों से मुक्त है, वह न स्त्री है न पुरूष और न नपुंसक ही । जब जिस शरीर को ग्रहण करता है उस समय उससे संयुक्त होकर वैसा ही बन जाता है ।[106]

इससे स्पष्ट है कि जीव समस्त उपाधियों से रहित, सर्वभेद शून्य है । वह ईश्वर की सर्वोत्तम सृष्टि है । पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि इन महाभूतों के पंचीकरण से निर्मित शरीर मानव आदि प्राणियों का भोगायतन है ।[107] इस दार्शनिक मान्यता को महादेवी की चित्रात्मक शैलीने अनुपम रूप प्रदान किया है । पंचभूतों से रचित स्थूल शरीर में

जीव उसी प्रकार निवास करता है जैसे दीपक में प्रकाश और समुद्र में लहरें :

''धूलि के कण में उन्हें बंदी बना अभिराम ।
पूछते हो अब अपरिचित से उन्हीं का नाम ।
पूछता क्या दीप है आलोक का आवास ?
सिन्धु को कब खोजने लहरें उड़ीं आकाश ।''[108]

महादेवी की यह उक्ति अथर्ववेद के मंत्र से प्रभावित है जिसमें स्पष्ट है कि प्रकाशस्वरूप ब्रह्म जीवात्मा को प्रकाशित कर रहा है - जीवात्मा एक सुनहरे कोश में निवास करता है और यह कोश शरीर के एक भाग में है ।[109] जीव-सृष्टि ईश्वर की कामना का उत्कृष्ट परिणाम है । 'कामस्तदग्रे समवर्ताधि-मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।'[110] ऋग्वेद के इस विचार को महादेवी ने वीणा और उसके तारों की झंकार के प्रतीक से काव्यात्मक शैली मैं प्रस्तुत किया है -

''चाह की मृदु उँगलियों से छू हृदय के तार
जो तुम्हीं ने छेड़ दी मैं हूँ वही झंकार ।''[111]

वस्तुतः आत्मा परमात्मा का ही अंश है । काल और सीमासे विहीन उस रहस्य निधान ने अपने ही सूनेपन से व्यथित होकर, अपनी अमूर्त वेदना को प्राणरूपी मूर्त रूप दे दिया । यथा -

''काल सीमाहीन सूने में रहस्यविधान
मूर्तिमत् कर वेदना तुमने गढ़े जो प्राण ।''[113]

मानव-शरीर से निकला उच्छ्वास बाह्य वायुमंडल में विलीन होकर मानक का अपना नहीं रह जाता किन्तु श्वास द्वारा वह फिर मानव-शरीर में प्रवेश पा लेता है । प्रकृति की इस स्वाभाविक क्रिया के द्वारा महादेवी ने आत्मा और परमात्मा में द्वैताद्वैत का भाव स्पष्ट किया है -

"जन्म ही जिसको हुआ वियोग, तुम्हारा ही तो हूँ उच्छ्वास
चुरा लाया जो विश्व-समीर, वही पीड़ा की पहली साँस ।"[111]

परम ब्रह्म के उच्छ्वास से निर्मित जीव जगत मे जन्म लेकर वियोग झेल रहा है । विश्व-समीर की पहली साँस ही उसे वियोग व्यथित कर देती है ।

इस 'उलझनों के जाल' रूपी संसार में आकर जीव क्रीड़ामग्न हो जाता है और भ्रमित होकर वह अपने स्वरूप और मूल स्त्रोत को भूल जाता है -

"मेरी ही प्रतिध्वनि करती पल-पल मेरा उपहास;
मेरी पदध्वनि में होता नित औरों का आभास;
नहीं मुझ से मेरी पहचान !"[114]

अज्ञान के अंधकार मे जब चैतन्य प्रभु का प्रकाश विकीर्ण होता है तब उसे अपनी स्थिति का बोध होता है । अनंत प्रिय के आह्वान से आह्लादित आत्मा अपना खेल अधूरा छोड़कर प्रिय में विलीन हो जाती है -

"ओस धुले पथ में छिप तेरा, जब आता आह्वान ।
भूल अधूरा खेल, तुम्हीं में होती अन्तर्धान ।"[115]

आत्मा - परमात्मा की अभिन्नता वैसी ही है जैसी लहर और समुद्र की । समुद्र से बनी, क्षण भर के लिए अस्तित्व में आने वाली लहरें फिर समुद्र में ही लीन हो जाती हैं । परमात्मा का अंश जीव शरीर धारण कर उससे भिन्न हो जाता है, और शरीर के समाप्त होते ही क्षुद्र प्राण उसी परम तत्त्व में विलीन हो जाते है -

"सिंधु को क्या परिचय दे देव बिगड़ते बनते वीचि विलास
क्षुद्र है मेरे बुदबुद प्राण तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश ।"[116]

जीव-ब्रह्मैक्य - संबंधी धारणा वेद-वेदांत की चरम परिणति है । महादेवी ने इस दार्शनिक सत्य को विभिन्न रूपकों द्वारा अंकित किया है -

"तुम हो विधु के बिंब और मैं मुग्धारश्मि अजान,
जिसे खींच लाते अस्थिर कर, कौतूहल के बाण ।...
तुम अनंत जलराशि उर्म्मि मैं चंचल सी अवदात,
अनिल निपीड़ित जा गिरती जो फूलों पर अज्ञात;[117]

'ऋग्वेद' के एक मंत्र में ब्रह्म, जीव और प्रकृति तीनों का सांकेतिक उल्लेख मिलता है । दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा) मित्रता के साथ एक वृक्ष पर रहते हैं । इनमें से एक (जीवात्मा) सुस्वादु पिप्पल का भोग करता है और दूसरा (परमात्मा) साक्षी रूप से केवल द्रष्टा है ।

इस प्रकार जीवात्मा का चेतन ब्रह्म और जड़ जगत् दोनों से संबंध है । उसका आत्मतत्त्व ब्रह्म से और जड़ काया जगत् से जुड़ी है :

(i) चित्रित तू मैं हूँ रेखा-क्रम, मधुर राग तू मैं स्वर संगम;
तू असीम मैं सीमा का भ्रम, काया छाया में रहस्यमय ।
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या !''[118]

(ii) बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ ।
नीद थी मेरी अचल निस्पंद कण-कण में,
प्रथम जागृति थी जगत् के प्रथम स्पंदन में;
प्रलय में मेरा पता, पदचिह्न जीवन में,
शाप हूँ जो बन गया वरदान बंधन में...
दूर तुमसे हूँ अखंड सुहागिनी भी हूँ ।''[119]

आत्मा और परमात्मा का परस्पर घनिष्ठ संबंध ही नहीं है, अपितु वे एक-दूसरे के पूरक भी है -

''मेरी आँखों मे ढल कर छवि उसकी मोती बन आई;
उसके घन प्यालों में है, विद्युत सी मेरी परछाई;
नभ में उसके दीप, स्नेह जलता है पर मेरा उनमें
मेरा है यह प्राण, कहानी पर उसकी हर कंपन में ।''[120]

अलबेले प्रिय के आकर्षण में बँधी मतवाली प्रियतमा अपना अस्तित्व समाप्त कर उसी में समा जाना चाहती थी, किन्तु वह अभिमानी उसे मिट-मिटकर बनने का वेदनामय वर देकर चला गया -

चाहा था तुझमें मिटना भर, दे डाला बनना मिट-मिट कर,

यह अभिशाप दिया है या वर, ... बताता जो रे अभिमानी ।''[121]

आत्मतत्त्व शाश्वत है । केवल नश्वर और क्षणभंगुर काया उसे भी नश्वरता का आभास देती है । महादेवी के दिव्यलोकवासी सीमाहीन ब्रह्म को यदि आत्मा की लघुता पर लज्जा आती है तो उन्हें उसकी चिंता नहीं । उनकी लघु आत्मा ने जिस असीम पीड़ा को अपने में पाल रखा है उससे वह भी असीम हो गयी है -

''मेरी लघुता पर आती
जिस दिव्य लोक को व्रीड़ा,
उसके प्राणों से पूछो
वे पाल सकेंगे पीड़ा ?
उनसे कैसे छोटा है
मेरा यह भिक्षुक जीवन ?
उसमें अनंत करूणा है
इसमें असीम सूनापन !''[122]

वस्तुतः महादेवी की दृष्टि में जीवात्मा का विशेष महत्त्व है । जीव ही ब्रह्म और जगत् को बाँधने वाला सूत्र है । वह उदात और सार्थक हैं, क्योंकि वह करूणा का वाहक है ।

5.3 माया :

दार्शनिक और व्यावहारिक दोनों क्षेत्रों में 'माया' शब्द बहुप्रचलित है । वेद में यह शब्द कई अर्थो में गृहित है - जैसे धूर्तता, शठता

आश्चर्यजनक कार्यों तथा प्रेम आदि । उपनिषदों में 'माया' शब्द वेद की अपेक्षा एक विशेष दार्शनिक महत्त्व ग्रहण कर लेता है । प्रश्नोपनिषद् में 'माया' कुटिलता और झूठ का पर्याय है जो ब्रह्म प्राप्ति में बाधक है ।[123] श्वेताश्वतरोपनिषद् में मायिन् ब्रह्म को अपनी माया आदि शक्तियों से बहुरूपी जाल फैलाकर सांसारिक प्राणियों को उसमें फँसा लेने के कारण जालवान् भी कहा गया है ।[124] इस प्रकार माया शब्द अविद्या का पर्याय है । वह ब्रह्म की अनिर्वचनीय शक्ति है । अपनी उसी शक्ति से वह जीवात्मा को भ्रमित किये रहता है ।

अविद्या माया के कारण ही सांसारिक प्राणी इस नश्वर जगत् को अपना अमर राज्य मानकर अनंत आकांक्षाओं से युक्त हो जाता हैं । चकित जीव जगत् और उसके कार्य व्यापार को पूर्णतया समझ भी नहीं पाता कि माया उसे अपने जाल में उलझा देती है । अपनी सम्मोहक तान सुना कर, स्वप्नों का साम्राज्य दिखाकर और मोह-मदिरा का आस्वादन करा कर वह भोले-जीवन को अज्ञानी और उन्मत्त बना देती है -

"अलक्षित आ किसने चुपचाप
सुना अपनी सम्मोहन तान,
दिखा कर माया का साम्राज्य
बना डाला इसको ज्ञान ?
मोह-मदिरा का आस्वादन
किया क्यों हे भोले जीवन !"[125]

मदिरा-पान से उन्मत्त व्यक्ति जैसे अपना विवेक खो बैठता है, उसे उचित अनुचित का ध्यान नहीं रह जाता उसी प्रकार माया के वशीभूत जीव भी ब्रह्म के ध्यान से विमुख होकर दुःख प्राप्त करता है । इस यथार्थ को मदिरा के रूपक से महादेवी ने रमणीयता प्रदान की है ।

माया का आकर्षण अत्यंत प्रबल होता है । उस पर मुग्ध जीव सब कुछ भूल जाता है । आशा और निराशा के झूले में झूलता, मायावी संसार की उँगलियों पर नाचता और सुखद स्वप्नों पर प्रसन्न होता हुआ वह संजीवनी के भ्रम में विष का पान करता है -

"तुम्हें ठुकरा जाता नैराश्य
हँसा जाती है तुमको आश,
नचाता मायावी संसार
लुभा जाता सपनों का हास,
मानते विष को संजीवन,
मुग्ध मरे भूले जीवन ।"[126]

संजीवनी पीकर मनुष्य अमरत्व प्राप्त करता है और विष से मृत्यु । ईश्वर संजीवनी है । संसार के भ्रम-जाल में पड़ा मानव अपना हित-अहित नहीं पहचानता और ब्रह्म से विमुख होकर नाना प्रकार के दुःखों से घिर जाता है । चैतन्य मनुष्य कभी विष का सेवन नहीं करता । वह सांसारिक माया-जाल से परे रहकर ब्रह्म में लीन होने की कामना करता है ।

अनंत इच्छाओं, असंख्य सपनों और अधिकाधिक आशाओं को संचित कर अंततः जीव को असफलता ही मिलती है । बिखरी इच्छाओं, टूटे सपनों और निराशाओं का भार लिये-लिये वह थक जाता है, और एक स्थिति ऐसी भी आती है जब विस्मृति की छाया उसे घेर लेती है और वह अपना अस्तित्व भी भूल जाता है -

"अपने जर्जर अंचल में
भर कर सपनों की माया
इन थके हुए प्राणों पर
छाई विस्मृति की छाया ।"[127]

जीवात्मा को जब आत्मबोध होता है तब उसे इष्ट के सामीप्य का अनुभव होता है । उसे यह भी ज्ञात होता है कि यह सब छलना उस निष्ठुर ब्रह्म की ही है । उसकी निष्ठुरता के कारण ही यह मायामय संसार उसे भटका रहा है -

"यह कैसी छलना है निर्मम
कैसा तेरा निष्ठुर व्यापार ।
तुम मन में ही छिपे मुझे
भटकता है सारा संसार ।"[128]

साधना-पथ पर अग्रसर जीव-भ्रम-जाल से मुक्त होकर यथाथोन्मुख हो जाता है । उसे यह स्पष्ट हो जाता है कि माया के देश में सभी

क्षणभंगुर है । मोहवरण के कारण काँटे भी फूलों के से सजीले दिखाई देते हैं । यहाँ सभी का संबंध अस्थायी है -

सखे यह है माया का देश
क्षणिक है तेरा मेरा संग,
यहाँ मिलता काँटों में बंधु !
सजील सा फूलों का रंग,
तुम्हें करना विच्छेद सहन,
न भूलो हे प्यारे जीवन !"[129]

5.4 जगत् :

ऋग्वेद के नासदीप सूक्त में सृष्टि के निर्माण से पूर्व ब्रह्म की स्थिति की चर्चा की गयी है - उस समय न मृत्यु थी न अमरता । रात और दिन का भेद भी अज्ञात था । वायु के अभाव में अपने आत्मावलंबन से श्वास-प्रश्वास लेता हुआ केवल एक तत्त्व(ब्रह्म) था, उसके अतिरिक्त कुछ नहीं था ।[130] ऋग्वेद के इस चिंतन से प्रभावित महादेवी की दार्शनिक जिज्ञासा रहस्यवाद का आधार लेकर उनके कवित्व की प्रांजलता से निखर उठी है -

"न थे जब परिवर्तन दिनरात,
नहीं आलोक-तिमिर थे ज्ञात;
व्याप्त क्या सूने में सब ओर,
एक कंपन थी एक हिलोर ?
न जिसमें स्पंदन था न विकार,

न जिसका आदि न उपसंहार;
सृष्टि के आदि-आदि में मौन,
अकेला सोता था वह कौन ?"[131]

वह अकेला ब्रह्म जब अपने चारों ओर व्याप्त सूनेपन से व्याकुल हो उठा तब वह शिल्पी बनकर विश्व-प्रतिमा के निर्माण में लग गया -

"हुआ त्यों सूने पन का भान,
प्रथम किसके उर में अम्लान ?
और किस शिल्पी ने अनजान
विश्व प्रतिभा कर दी निर्माण ?"[132]

अपने एकाकीपन को दूर करने के लिए ब्रह्म ने अनेकविध होने की कामना की - 'एकोऽहं बहुस्याम प्रजायेयिति'[133] महादेवी के शब्दों में देखे तो -

"धरा की जड़ता उर्वर बन,
प्रकट करती अपार जीवन;
उसी में मिलते वे द्रुततर,
सींचने क्या नवीन अंकुर ?"[134]

जड़ धरा उर्वर बनकर अनेक प्रकार के प्राणियों को प्रकट करने लगी और वह परम ब्रह्म भी द्रुत गति से उन जीवों में शक्ति - संचार करने के लिए उन्हीं में मिल गया ।

यह संपूर्ण जगत् ब्रह्म की इच्छा का उत्कृष्ट परिणाम है । ब्रह्म से उत्पन्न और ब्रह्म में ही लीन हो जाने वाली सृष्टि मकड़ी के उस जाले के समान है जिसे मकड़ी स्वयं अपने अंतर से निकाले हुए सूत्र से रचती है और फिर स्वयं ही उसे अपने में संहृत कर लेती हैं । महादेवी उपनिषद् के इस दर्शन से प्रभावित हैं । उनके अनुसार विश्व-सर्जन की इच्छा होते ही ब्रह्म ने त्रिवर्णीय (सत्त्व, रजस्, तमस्) सूत्र से उसे सृष्टिरूप में साकार कर दिया -

''स्वर्णलूता सी कब सुकुमार,
हुई उसमें इच्छा साकार ?
उगल जिसने तिनरंगे तार,
बुन लिया अपना ही संसार ।''[135]

ब्रह्म को जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण बतलाने के लिए स्वर्णलूता का दृष्टांत अत्यंत सटीक और लालित्य-विधायक है ।

त्रिगुणात्मिका प्रकृति से प्रादुर्भूत यह जगत् परिवर्तनशील है । परमतत्त्व अपने कौतुक के लिए इसे बनाकर मिटाता है और फिर मिटाकर सुंदरतर बनाता है -

''श्यामांगिनी ! तेरे कौतुक को
बनता जग मिट-मिट सुन्दरतर ।''[136]

नियमित परिवर्तन के कारण इस जगत् में नाश सृजन की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है । नियति के हाथों घूमती इस सृष्टि को कभी

विश्राम नहीं । इन्द्रधनुष के रूपक से धरती की परिवर्तनशील और रंगमयता को महादेवीने मनोहर अभिव्यंजना प्रदान की है –

"बदलता इन्द्रधनुष सा रंग,
सदा वह रहा नियति के संग,
नहीं उसको विराम विश्राम,
एक बनने मिटने का काम !"[137]

विभिन्न रंगों से सज्जित यह सृष्टि एक दर्पण है जिसमें असंख्य जीवात्मा प्रतिबिंबित होते हैं । समष्टि और व्यष्टि शरीर में निवास करने के कारण वह अखिल ब्रह्म भी अपने ही बनाये दर्पणरूपी कारागार में बंदी हो जाता है । यथा –

"विविध रंगों के मुकुर सँवार,
जड़ा जिसने यह कारागार,
बना क्या बंदी वही अपार,
अखिल प्रतिबिंबों का आधार ?"[138]

परिवर्तनशील जगत् के प्रत्येक उपादान परिवर्तन के लिए बाध्य है । पल्लव के घूँघट-पट से झँकती कलियाँ सूर्य की मुस्कुराती किरणों का स्पर्श पाकर खिल उठती हैं । मादकता से भर कर वे अपना सम्पूर्ण सौरभ पवन को धरती पर गिरा उन्हें मुझाँने के लिए छोड़ जाता है । मधु के लालच में फूलों संसार की इस निष्ठुरता से करूणा – विगलित हो जाती है –

''हँस देता जब प्रात सुनहरे...

x x x

देकर सौरभदान पवन से

कहते जब मुरझाये फूल...

x x x

...मर्मर का रोदन कहता है कितना निष्ठुर है संसार ।[139]

दिवसावसान के पश्चात् नभ के आंगन में जब नक्षत्र-रूपी दीपक जल उठते है तब तिमिर का पारावार मतवाले संसार के अविवेक पर हँस उठता है ।

''स्वर्ण वर्ण से दिन लिख जाता, जब अपने जीवन की हार,
गोधूली नभ के आँगन में देती अगणित दीपक बार,
हँस कर तब उस पार तिमिर का कहता बढ़-बढ़ पारावार,
बीते युग, पर बना हुआ है अब तक मतवाला संसार ।''[140]

कवयित्री की चेतना यह स्वीकार करती है कि यह जगत् नश्वर हैं और इसमें स्थित प्रत्येक वस्तु क्षणभंगुर है । ब्रह्म से उत्पन्न जीव को प्राप्त यह मानव-शरीर भी स्वप्न के समान क्षणिक हैं । परन्तु जब पागल प्राण स्वयं को अमरता का प्रतीक मानकर गर्व करने लगते है, तब अज्ञात देश से आने वाली मृत्यु की करूण झंकार संसार के पागलपन की कथा सुना जाती है -

''स्वप्नलोक के फूलोंसे कर
अपने जीवन का निर्माण
'अमर हमारा राज्य' सोचते
हैं जब मेरे पागल प्राण,
आकर तब अज्ञात देश से जाने किसकी मृदु झंकार,
गा जाती है करूण स्वरों में कितना पागल है संसार ।''[141]

ब्रह्म स्वयं सच्चिदानंदस्वरूप है, किन्तु उसी के द्वारा निर्मित यह जगत् वेदना और पीड़ा का साम्राज्य है -

''पीड़ा का साम्राज्य बस गया
उस दिन दूर क्षितिज के पार,
मिटना था निर्वाण जहाँ
नीरव रोदन था पहेरदार !''[142]

इस दु:खमय संसार में आकर शरीरधारी जीव सदा व्याकुल ही रहता है । सिकता में अंकित रेखा के समान, वायु के झोंकों से काँपती लौं के समान तथा कपोलों पर ढुलक आये आँसू के समान क्षणभंगुर जीवन प्राप्त करके वह अपने नियति-नियंता को उपालंभ देता है कि जिस संसार में केवल व्यथाएँ ही है जहाँ आकर स्वप्न लोक की परियाँ (जीव) भी हँसना भूल गई वहाँ जन्म पाने का वरदान क्यों दिया -

''दिया क्यों जीवन का वरदान ?
इसमें है स्मृतियों का कंपन;

सुप्त व्यथाओं का उन्मीलन;
स्वप्नलोक की परियाँ इसमें
भूल गई मुस्कान !"[143]

महादेवी का यह दुःखवाद बौद्धदर्शन के दुःखवाद से प्रभावित है ।

भारतीय दर्शन के मान्यतानुसार जीव अनश्वर है । शरीर के नष्ट हो जाने पर भी वह नष्ट नहीं होता और अपने कर्मानुसार अन्य-अन्य योनियों में जन्म पाकर इस जगत् में कर्मफल का भोक्ता बनता है । इस धारणा को महादेवी ने भी जीवन का सत्य माना है और अतिशय मार्मिक तथा काव्यमयी शैली में उसे अभिव्यक्ति प्रदान की है –

तू धूल भरा ही आया !
ओ चंचल जीवन-बाल ! मृत्यु जननी ने अंक लगाया ।...
नूतन प्रभात में अक्षय गति का वर दे,
तन सजल घटा-सा तड़ित्-छटा-सा उर दे,
हँस तुझे खेलने फिर जग में पहुँचाया !
तू धूल भरा जब आया,
ओ चंचल जीवन-बाल ! मृत्यु जननी ने अंक लगाया !"[142]

जगत् नश्वर है, परिवर्तनशील है, दुःखमय और स्वार्थमय है । महादेवी इसके प्रत्येक तथ्य को स्वीकार करती हैं । इसीलिए वे दुःखी जगत् के प्राणियों को सुख देने के लिए स्वयं कभी दीप बनकर अंधकार को दूर करके सबको प्रकाश देने की और कभी घन बनकर जगत् के ताप को हरने की कामना करती है यथा –

(i) दीप मेरे जल अंकपित, धुल अचंचल ।...
पथ न भूले एक पग भी,
घर न खोये लघु विहग भी,
स्निग्ध लौ की तूलिका से
आँक सबकी छाँट उज्जवल !''[145]

(ii) घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय ! ...
नित घिरूँ झर-झर मिटूँ प्रिय ।
घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय !''[146]

मुक्ति :

दु:ख का आत्यंतिक विनाश, भवबंधन से निवृत्ति अथवा आत्मा का परमात्मा से मिलन ही जीव की मुक्ति है । मुण्डकोपनिषद् में मोक्ष की स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि मोक्षावस्था में मनुष्य की आत्मा ब्रह्म की समानता को प्राप्त कर लेती है ।[147] अविद्या का नाश होते ही ज्ञान का उदय होता है और मनुष्य अपनी कामनाओं पर विजय प्राप्त कर बंधन-मुक्त हो जाता है । महादेवी को मुक्ति की यह स्थिति स्वीकार्य नहीं । उन्हें जीवन-बंधन प्रिय ही नहीं अपितु उस पर गर्व भी है । यदि 'बन्धनों की स्वामिनी' का वश चलता, यदि वह चिर मुक्त परमब्रह्म का चित्र बनाने में समर्थ होती तो चित्रित कर दिखा देती कि ब्रह्म भी बंधन के लिए कितना विकल है -

''प्रिय मैं जो चित्र बना पाती ।...
चिरमुक्त तुम्हीं को जीवन के
बंधन हित विकल दिखा जाती ।''[148]

इस सृष्टि की चित्रमयता और रंगमयता कवयित्री को भा गयी है । जगत् की मनमोहक क्रीड़ा में वह लीन हो गयी है । यहाँ की क्रीड़ा को अधूरी छोड़ कर वह जाना नहीं चाहती । प्रिय-मिलन की कामना भी बलवती है । किन्तु वह जानती है कि प्रिय के आकर्षक हास और मृदु स्पर्श के वशीभूत होते ही उसका अस्तित्व घनसार-सा उड़ जाएगा । इसीलिए जब चेतन मन प्रिय दरस का हठ ठानता है तब वह अपनी पलकों को ही मूँदकर अज्ञान का अंधकार कर लेती है -

''रंगमय है देव दूरी !
छू तुम्हें रह जाएगी यह चित्रमय क्रीड़ा अधूरी ।
दूर रह कर खेलना पर मन न मेरा मानता है ।
वह सुनहला हास तेरा -
अंक भर धनसार सा उड़ जायेगा अस्तित्व मेरा !
मूँद पलकें रात करती जब हृदय ठानता है !''[149]

महादेवी संसार की वेदना से विचलित नहीं होती । मानव लोक की पीड़ा की अनुभूति उन्हें प्रिय है । यहाँ की वेदना, अवसाद और जलने - मिटने के स्वाद को छोड़कर, वे प्रिय की करूणा से प्राप्त 'अमर लोक' का 'उपहार' भी नहीं ग्रहण करना चाहतीं । वे अपने 'मिटने का अधिकार' ही सुरक्षित रखना श्रेयस्कर समझाती हैं -

ऐसा तेरा लोक वेदना, नहीं, जिसमें अवसाद;
जलना जाना नहीं, नहीं, जिसने जाना मिटने का स्वाद ।
क्या अमरों का लोक मिलेगा तेरी करूणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे यह मेरा मिटने का अधिकार ।"[150]

मिटने के पश्चात् ही नव-निर्माण संभव है । मेघ स्वयं को घुलाकर तप्त वायुमंडल को और संतप्त कण-कण को शीलता प्रदान करता है । महादेवी मेघ की इस प्रक्रिया पर अपने शत-शत निर्वाण न्यौच्छावर करने को आतुर है -

"जो नभ की जलती साँसों पर
हिमलोक बनाने को गलता,
कण-कण में आने को घुलता,
उस घन की हर कंपन पर मैं
शत-शत निर्वाण लुटा जाती !"[151]

कवयित्री को अपनी लघुता से लगाव है । अश्रु ही उसका स्वजन है । प्रतिदान में उसे किसी प्रकार के वरदान अथवा सम्मान की चाह नहीं है । यह युगयुगान्तर की पथिक, कभी प्रिय की छाँह भी पाले तो उसे दीपक बनाकर अपनी अँधेरी राह पर ही चल पड़ेगी । उसका संचरणशील जीवन मुक्ति का वरदान प्राप्त कर पंगु नहीं होना चाहता -

"चिर बटोही मैं, मुझे
चिर पंगुता का दान कैसा ।"[152]

जीवन-बंधनों में अनुरक्त कवयित्री मुक्ति की उपेक्षा इसलिए भी करती है कि उसे प्राप्त कर वह प्रिय-स्मृति की कसक और उस पीड़ा के दंश से सदा के लिए वंचित हो जाएगी -

''जिसमें कसक न सुधि का दंशन,
प्रिय में मिट जाने के साधन,
वे निर्माण - मुक्ति उनके,
जीवन के शत बंधन मेरे हों ।''[153]

वह अपनी अतृप्त कामनाओं को तृप्त कर अपने जीवन को निष्फल नहीं बनाना चाहती । प्रिय से मिलन हो जाने पर उसकी आकांक्षा भी समाप्त हो जायगी । इसीलिए रो रोकर वियोग के क्षण काटने वाली संयोग के समय छिप जाने की बात करती है । जिसके रोम-रोम में स्वर्ग की प्रसन्नता व्याप्त है, प्रत्येक श्वास में शत-शत जीवन है और प्रत्येक स्वप्न बनते और मिटते रहते हैं । उसके लिए स्वर्ग व्यर्थ है और मुक्ति निष्क्रिय । यथा -

''रोम-रोम में नंदन पुलकित,
साँस-साँस में जीवन शत-शत
स्वप्न-स्वप्न में विश्व अपरिचित,
मुझ में नित बनते मिटते प्रिय !
स्वर्ग मुझे क्या; निष्क्रिय लय क्या ?''[154]

महादेवी मुक्ति की अपेक्षा मृत्यु को स्तुत्य मानती हैं । उनके अनुसार 'अमरता जीवन का ह्रास और मृत्यु जीवन का चरम विकास'

है । विनाश के रूप में आनेवाली मृत्यु वस्तुतः अनंत विकास ही है -

"अंक में तब नाश को
लेने अनंत विकास आया ।"[155]

महादेवी की यह मृत्यु - संबंधी मान्यता 'गीता' से प्रभावित है । जीवात्मा अमर है । जिस प्रकार मनुष्य जीर्ण वस्त्र को त्याग कर नूतन वस्त्र ग्रहण करता है उसी प्रकार जीवात्मा जीर्ण शरीर को त्याग कर नवीन शरीर धारण करता है ।[156]

अन्य सांसारिकों की भाँति मृत्यु महादेवी के लिए भयार्त करने वाली नहीं है । वे तो उसे स्वागत योग्य प्रिय पाहुन मानती है, जिसे पारंपारिक रूप से कुछ देकर ही विदा किया जाता है । मृत्यु हिमवत् शीतल निःस्पंद और अंधकारमय है । कवयित्री उसे अपनी उष्मा, अपना स्पंदन और अपने जीवन-दीप का प्रकाश देकर विदा करना अपना कर्तव्य समझती है -

"प्राणों के अंतिम पाहुन ।
हिम से जड़ नीला अपना निस्पंद हृदय ले आना,
मेरा जीवन-दीपक घर उसकों सस्पन्द बनाना,
हिम होने देना यह तन !"[157]

मात्र कवयित्री ही नहीं यह संपूर्ण विश्व दान-भावना से ओतप्रोत है । अंजलि फैलाकर आई मृत्यु कभी खाली हाथों नहीं लौटती । यह विश्व जीवनरूपी सुधा-रस से उसकी अंजलि भर देता है -

"मृत्यु-अंजलि में दिया भर
विश्व ने जीवन-सुधा-रस"[158]

महादेवी ने जीवन को एक चंचल बालक और मृत्यु को वत्सला और स्नेहमयी माँ माना है । दिन-भर खेल - खेलकर बालक जब थका - हारा घर पहुँचता है तब उसकी क्लांति पर माँ करूणा से विगलित हो जाती है । अपनी गोद में लेकर, प्यार करके वह उसकी श्रांति हर लेती है । मां के ममत्व भरे अंक में मधुर चुंबन और कोमल थपकियों से विश्राम पाकर बालक फिर चैतन्य हो जाता है । माता एवं बालक के इस स्वाभाविक सांसारिक क्रिया के माध्यम से कवयित्री ने जन्म और मृत्यु का मार्मिक चित्रण किया है -

"तू धूल भरा ही आया ।
ओ चंचल जीवन-बाल ! मृत्यु जननी ने अंक लगाया !
जिस दिन लौटा तू चकित, थकित - सा - उन्मन
करूणा से उसके भरभर आये लोचन,
चितवन छाया में दृग-जल से नहलाया !
पलकों पर धर-धर अगणित शीतल - चुंबन
अपनी साँसों से पोंछ वेदना के क्षण,
हिम-स्निग्ध करों से बेसुध प्राण सुलाया ।
नूतन प्रभात में अक्षय गति का वर दे,
तन सजल घटा-सा तड़ित-छाटा-सा उर दे,
हँस तुझे खेलने फिर जग में पहुँचाया ।"[159]

ऐसी ममत्वमयी और करूणामयी माँ का आगमन किसे अरूचिकर लगेगा ? तभी महादेवी कह उठती है –

''इस मरण के पर्व को मैं आज दीपाली बना लूँ ।''[160]

महादेवी मृत्यु से कभी भयभीत नहीं होती । उनके लिए वह 'विश्व-जीवन का उपसंहार' है । मकरंद – सी चाह लिये पुष्प-रूपी जीवन मुरझाता भी है तो नव-शैशव प्राप्त करने के लिए । जीवन पतझर बनता है तो नव वसंत का संचार करने के लिए । यदि जीवन और मृत्यु, विनाश और विकास का खेल नहीं चलता तो यह प्रफुल्लित विश्व आँसूमय हो जाता, क्योंकि सौन्दर्य यदि स्थायित्व का वरदान पा लेता तो यह प्रतिभा के समान स्थिर हो जाता और प्राण कामनायें करते-करते थक कर प्रस्तर से जड़ हो जाते । यथा –

''विश्व जीवन के उपसंहार ! ...
पतझर बन जग में कर जाता
नव वसंत संचार !
मधु में भीने फूल प्राण में भर मदिरा सी चाह,
देख रहे अविराम तुम्हारे हिम अधरों की राह
मुरझाने के मिस देते तुम
नव शैशव का उपहार ।...
चिर यौवन पा सुषमा होती प्रतिमा सी अम्लान
चाह-चाह थक-थक कर हो जाते प्रस्तर से प्राण,
सपना होता विश्व हासमय
आँसूमय सुकुमार ![161]

6. रस–निरूपण :

बाह्य जगत् के विषयों का बोध और उनसे प्राप्त संवेदनाओं के कारण मन में उठने वाले विकार भाव कहलाते हैं । मानव–मन इन्हीं भावों से परिचालित होता रहता है । मानसिक अवस्थाओं का व्यंजक प्रदर्शन ही भाव है । धनंजय ने कहा है कि सहृदय को भावित (वासित) करने के कारण आश्रयगत सुख (शम), दु:ख (शोक) आदि चितवृत्तियाँ भाव कहलाती हैं ।[162]

काव्य में भावों की विवृत्ति होती है । ये भाव ही काव्य के विधायक तत्त्व माने गये हैं । कवि की संस्कारजन्य प्रतिभा ब्राह्य जीवन की परिस्थितियों के प्रभाव ग्रहण करती है । उन प्रभावों से उत्पन्न विभिन्न भाव अनुकुल अवसर पाकर वाणी के माध्यम से काव्य का निर्माण करते हैं । विभिन्न और अनेक होने पर भी इन भावों के मूलत: दो रूप होते हैं : सुखात्मक और दु:खात्मक । एक मन के अनुकूल अनुभूति है और दूसरी मन के प्रतिकूल ।

महादेवी काव्य को मानव के सुख–दु:खात्मक संवेदन की कथा मानते हुए कहती है : ''काव्य वास्तव में मानव के सुख–दु:खात्मक संवेदनों की ऐसी कथा है जो उक्त संवेदनों को सम्पूर्ण परिवेश के साथ दूसरे की अनुभूति का विषय बना देती है ।''[163]

इस प्रकार संवेदन ही भाव है और भावों का प्रत्यक्ष ज्ञान भावानुभूति है ।

काव्य में भावानुभूतियों की सरस अभिव्यक्ति होती है । काव्य-निबद्ध अनुभूति जीवन - सत्य पर आश्रित होती है, अतः उसका प्रभाव भी बहुआयामी होता है । उनमें परिवर्तनमयी नवीनता रहती है । कवि की संस्कार - संस्थित भावाभिव्यक्ति में अनेक तत्त्वों का समावेश होता है । काव्यशास्त्र ने उन तत्त्वों को स्थायी भाव, विभाव अनुभाव और संचारी भाव की संज्ञा दी है । स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से संयुक्त होकर सुन्दर अभिव्यक्ति प्राप्त करता है और उसका भाव न करके सहृदय आनंदित होता है । भावक की आनंदमयी अनुभूति ही 'रस' कहलाती है । 'रसदशा' में सहृदय अपने-पराये के भेद-भाव से मुक्त हो जाता है । सत्त्वोद्रेक का उदय होते ही उसका अंतर प्रकाशित हो जाता है । उसका वह आनंद लौकिक आनंद से भिन्न होता है, इसीलिए उसे लोकोत्तरचमत्कारप्राण और ब्रह्मानंद सहोदर कहा गया है ।

अनेकानेक रसों की निबंधना के लिए विभिन्न अनुभूतियों और विविध विषयों का विस्तृत आयाम अपेक्षित है । किन्तु प्रातिभ कवि अपनी वचन-वक्रता और चमत्कारपूर्ण शैली से किसी भी विभाव, अनुभाव अथवा संचारी भाव का प्रकाशन कर सहृदय को चमत्कृत कर सकता है । महादेवी, ऐसी ही प्रतिभासंपन्न कवयित्री है ।

6.1 स्थायी भाव :

हृदय में वासना रूप में संस्थित अन्य भावों द्वारा किसी प्रकार भी न दबने वाले प्रधान, विरोधी-अविरोधी भावों के अंतर्हित करके आत्म-भाव प्राप्त करा सकने वाले, चिरकाल के अथवा आप्रबंध स्थायी रहने वाले, आस्वाद-योग्य मनोभावों को स्थायी भाव कहते है ।

आचार्यों द्वारा ग्यारह स्थायीभाव मान्य हैं । मुक्तक काव्य होने के कारण महादेवी के काव्य में स्थायी भावों की संख्या अत्यंत सीमित है । गीति काव्य के अनुरूप कोमल भावों की विवृत्ति उनके काव्य की अन्यतम विशेषता है । उसमे वीर, रौद्र, वीभत्स आदि भावों की व्यंजना का अवकाश नहीं है ।

महादेवी ने अपने काव्य में प्रेम और करूणा जैसे कोमल - मधुर भावों को ही मुखरित किया है । अलौकिक प्रिय की आराधना में कहीं - कहीं भक्ति का स्वर उभरा है । रहस्यमय ब्रह्म के अद्‌भूत कार्यो के प्रति जिज्ञासा और विस्मय है । प्रकृति-चित्रण में एकाध स्थलों पर ही उसका भयंकर रूप व्यंजित हुआ है । महादेवी मुख्य रूप से प्रेम-गति की गायिका है । इसीलिए उनके प्रेम का अपना अलग वैशिष्ट्‌य है । उसमें एकांगिता, अलौकिक आलंबन और कल्पना-प्रधान अनुभूति की प्रधानता है ।

6.2 श्रृंगार रस :

स्त्री-पुरूष का परस्पर स्वाभाविक अनुराग कामरति है और यही रति श्रृंगार रस का स्थायीभाव है । यह समस्त प्राणियों की बलवतम प्रवृत्ति है । मानव की मधुरतम भूख होने के कारण विश्‍व साहित्य में

इसकी सर्वाधिक निबंधना हुई है । इसीलिए श्रृंगार रस को रसराज की उपाधि से विभूषित किया गया है । श्रृंगार रस के दो पक्ष है - संयोग और वियोग ।

6.1.1.1 संयोग श्रृंगार :

संयोग का अर्थ है नायक - नायिका का परस्पर दर्शन, स्पर्शन, आलिंगन तथा संताप आदि व्यवहार । श्रृंगार रस की सम्यक् निष्पति के लिए आदर्श प्रेम अर्थात् नायक-नायिका दोनों की समान अनुरक्ति परमावश्यक है ।

महादेवी का प्रेम एकांगी और अध्यात्मोन्मुख है । उन्हें उनके प्रेम का प्रतिदान प्राप्त हो रहा है, यह उनके, काव्य में कहीं भी लक्षित नहीं होता । विषयालंबन के अनुराग का उल्लेख न होकर सर्वत्र ही आश्रयालंबन कवयित्री की भावानुभूतियों की ही अभिव्यक्ति हुई है । उनके प्रेम का आलंबन अलौकिक है । वह निराकार किन्तु सगुण है । उस सर्वशक्तिमान् का कोई निश्चित रूप नहीं है । किन्तु प्रकृति के भव्य रूपों में वही आभासित होता है इसीलिए कवयित्री प्रकृति के मनोहर रूपों में प्रिय की कल्पना कर उन पर मुग्ध होती है और प्रिय से मधुर प्रणय-संबंध स्थापित करके आत्मसमर्पण करती है । माधुर्यमूलक प्रेम को प्रतिपादित करती हुई महादेवी कहती है : "हृदय के अनेक रागात्मक संबंधों में माधुर्यमूलक प्रेम ही उस सामंजस्य तक पहुँच सकता है जो सब रेखाओं में रंग भर सके, सब रूपों को सजीवता दे

सके और आत्मनिवेदन को इष्ट के साथ समता के धरातल पर खड़ा कर सके ।''[164]

महादेवी की प्रेम-व्यंजना में लौकिक प्रेम की सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं, किन्तु प्रियतम से उनका संयोग मात्र काल्पनिक अनुभूति है । अलौकिक प्रिय की रूप-माधुरी दर्शन प्राकृतिक उपकरणों के माध्यम से ही होता है । प्रिय की चंचल और मोहक चितवन प्रिया के हृदय को मादकता से भर देती है । उसकी मधुर मुस्कान के प्रकाश से प्रियतमा के नेत्रकमल खिल उठते हैं । महादेवी के प्रेम की तन्मयता निम्नांकित पंक्तियों में साकार हो उठी है :

''जब उनकी चितवन का निर्झर,
भर देता मधु से मानस सर,
स्मित से झरतीं किरणें झर-झर,
पीते दृग-जलजात ।''[165]

प्रिय मिलन की कल्पना ही रोमांचक होती है और जब प्रिय के आगमन का संदेश मिल जाये तब प्रिया की उत्कंठा और पुलक की कोई सीमा ही नहीं रहती । इन्द्रियों की सक्रियता द्विगुणित हो जाती है । आशा और उल्लास से स्पंदित होने वाला हृदय पुलकित और शरीर रोमांचित हो उठता है । प्रिय से मिलने के लिए आतुर प्रियतमा का यह चित्र अत्यंत प्रभावशाली और मनोहर है :

''नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय आज हो रहे, कैसी उलझन ।
रोम-रोम में होना री सखि एक नया उर का-सा स्पंदन ।''[166]

प्रिय-आगमन का संदेश सुनकर आह्लादित प्रिया का रूप स्वाभाविक रूप से मोहक हो जाता है । फिर भी अपने अनुपम प्रिय को और अधिक रिझाने के लिए वह असाधारण श्रृंगार करती है :

''शशि के दर्पण में देख-देख
मैंने सुलझाये तिमिर - केश,
गूंथे चुन तारक - पारिजात
अवगुष्ठन कर किरणें अशेष ।''[167]

शशि के दर्पण में देखकर तिमिर केशों को सुलझाकर और उनमें तारक पारिजात को गूँथ कर ही कवयित्री विराम नहीं लेती । वह तो शिख से लेकर नख तक सज्जित होने के लिए तत्पर है :

''रंजित कर दे यह शिथिल चरण ले नव अशोक का अरूण राग,
मेरे मण्डन को आज मधुर ला रजनीगंधा का पराग ।''[168]

महादेवी के काव्य में विशुद्ध संयोग के चित्र दुर्लभ हैं । उसमें संयोग-श्रृंगार के आधारभूत दर्शन, स्पर्शन, आलिंगन आदि कामरतिपरक चेष्टाओं का अभाव है । संयोग-कालीन मधुर स्मृति के मोहक चित्रों की झलक यत्र-तत्र मिल जाती है :

'अधरों से झरता स्मित - पराग,
प्राणों में गूँजा नेह - राग,
सुख का बहता मलयज-समीर ।

घुल घुल जाता यह हिम – दुराव,
गा – गा उठते चिर मूक भाव,
अलि सिहर – सिहर उठता शरीर !"[169]

6.1.1.2 विप्रलंभ – श्रृंगार :

प्रबल अनुराग के होते हुए भी प्रिय–संयोग में बाधा उत्पन्न होने पर प्रेमी–हृदय की व्याकुलता वियोग कहलाता है । वियोग–श्रृंगार में व्यथा की विवृत्ति होने के कारण इसका स्वरूप दुःखात्मक होता है । दुःख में हृदय की गति अत्यंत द्रुत हो जाती है । भावों का आरोहण प्रबल रहता है, इसीलिए काव्यों में वियोग श्रृंगार का अधिकाधिक वर्णन मिलता है । प्रिय से विमुख होते ही संयोगकालीन मधुर स्मृतियों के झोंके हृदय का मंथन करने लगते हैं । प्रकृति के मादक परिवेश में प्रिय सान्निध्य का अभाव व्याकुलता को और बढ़ा देता है । भावनाओं का ज्वार उमड़ पड़ता है और आँसुओं की वर्षा होने लगती है ।

महादेवी वेदना की गायिका हैं । उनके सम्पूर्ण काव्य में विरह–वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति है । वियोग–श्रृंगार के विविध पक्षों का मनोहारी चित्रण उनके काव्य की अन्यतम विशेषता है ।

कल्पना–जगत् में संयोग का अनुभव करने वाली कवयित्री को प्रियतम की विमुखता कातर कर देती है । प्रिय के दर्शनों के लिए लालायित पलकें लज्जा के आवरण से इतनी झुकी थीं कि प्रियतम को अच्छी तरह देख भी नहीं पाई और वह अपनी चितवन से प्रिया को पीड़ा का साम्राज्य देकर चला गया –

''इन ललचाई पलकों पर
पहरा जब था ब्रीड़ा का
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ा का ।''[170]

उसका करूणापूर्ण कटाक्ष मनोहर कल्पनाओं के पाश में अब आबद्ध कर देती है । उसकी मोहक मुस्कान का प्रभाव अद्‌भूत है, तज्जनित वेदना भी मधुमयी है :

''बिछाती थी सपनों के जाल
तुम्हारी वह करूणा की कोर,
गयी वह अधरों की मुस्कान
मुझे मधुमय पीड़ा में बोर ।''[171]

प्रेम की अतिशयता पीड़ा की अतिशयता बन जाती है । प्रियपात्र प्रतिकूल होकर जब प्रिया के प्रेम को अवहेलना कर देता है तब वेदना में और वृद्धि हो जाती है । फिर भी प्रेमाकुल प्रिया उसकी अवहेलना की चोट सहती हुई, हँसते ओठों और छलकती आँखों को उसके पथ में बिछाये प्रतीक्षा करती रहती हैं :

''हृदय पर अंकित कर सुकमार,
तुम्हारी अवहेलना की चोट,
बिछाती हूँ पथ में करूणेश
झलकती आँखें हँसते ओठ ''[172]

प्रेयसी की घनीभूत पीड़ा के प्रभाव से बाह्य प्रकृति भी समानुभूति करती हुई दृष्टिगोचर होती है । प्रिय-वियोग में मात्र विरहिणी ही व्यथित नहीं है उसे प्रतीत होता है कि उसका सम्पूर्ण परिवेश ही विषादमय हो गया है । प्रकृति को गुंजरित करने वाले भ्रमर, मयूर, कोयल और वानीर-वन स्तब्ध से है -

''भ्रमर-नृपुर-रव गया थम
मूर्च्छिता भू-किन्नरी है,
मूक-पिक की बंसरी है,
आज तो वानीर-वन के भी गये निश्वास सो रे !''[173]

काव्यशास्त्रियों द्वारा स्वीकृत विप्रलंभ के चार भेदों-पूर्वानुराग, माना, प्रवास एवं करूण का चित्रण महादेवी के काव्य में रूढिबद्ध रूप में नहीं है । पूर्वानुराग की कही चर्चा नहीं है । उनका मान भी सामान्य नायिकाओं की भाँति ईर्ष्यायुक्त न होकर गर्वयुक्त है । संभवतः कवयित्री को यह आभास है कि उसकी लघुता पर उसके दिव्य प्रिय को लज्जा आती है । प्रिया को इसकी चिंता नहीं वह अपने को घट कर नहीं मानती । उसे इस बात का अभिमान है कि उसके लघु प्राणों ने अनंत पीड़ा को पाल रखा है । उसका जीवन, जो केवल प्रणय - भिक्षा चाहता है, प्रिय से किसी प्रकार भी तुच्छ नहीं है । प्रिय के पास अनंत करूणा है, तो प्रिया के पास असीम सूनापन । गर्विता को अमरता के रूप में प्रिय की करूणा का उपहार भी स्वीकार्य नहीं है । उसकी मान्यता है कि अमरत्व के उपहार की तुलना में 'मिटने का अधिकार'

कहीं श्रेष्ठ है । यथा -

"क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करूणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार ।"[174]

वियोगिनी की समस्त इच्छाएँ अपूर्ण रह गयीं । उसके स्वप्नों की तस्वीर बिखर गयी, प्राणों का संदेश अधूरा रह गया । हृदय की प्यासी साधों को लेकर प्रिय प्रवासी हो गया है :

"बिखरते स्वप्नों की तस्वीर
अधूरा प्राणों का संदेश,
हृदय की लेकर प्यासी साध
बसाया है अब कौन विदेश ?"[175]

प्रियतम की प्रतीक्षा करते-करते प्रियतमा का जीवन निष्फल हो गया । विरहिणी की हृदयगत कामनाएँ जलकर क्षार हो गयीं । प्राण-दीपक बुझने का उपक्रम कर रहा है । निष्ठुर प्रिय के आने की कोई संभावना दृष्टिगत नहीं होती । यथा -

"जिसके निष्फल जीवन ने
जल-जल कर देखी राहें,
निर्वाण हुआ है देखो
वह दीप लुटा कर चाहें ।"[176]

महादेवी के काव्य में विरह की विभिन्न काम-दशाओं का वर्णन मिलता है । विरहिणी के प्रेम-विह्वल अंतर का मार्मिक-चित्र प्रस्तुत करने में कवयित्री को पर्याप्त सफलता मिली है ।

प्रिय - मिलन की उत्कृट अभिलाषा सर्वत्र मुखर है । वह उससे एक बार आ जाने के लिए बिनती करती है । यदि वह एक बार, केवल एक बार, केवल एक बार आ जाता तो न जाने कितनी करूणा, कितने संदेश पथ में पराग बनकर बिछ जाते । प्राणों का प्रत्येक तार अनुराग, भरा राग छेड़ देता और आँखों से निरंतर बहने वाले आँसू उसका पद-प्रक्षालन कर लेते -

"जो तुम आ जाते एक बार ।
कितनी करूणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग,
गाता प्राणों का तार-तार,
अनुराग भरा उन्माद राग,
आँसू लेते वे पद पखार ।"[177]

प्रत्यक्ष आना तो दूर, वह निर्मोही सपने में भी नहीं आता । यदि वह स्वप्न में भी अपनी झलक दिखा देता तो उस क्षणिकदर्शन से ही वियोगिनी अपने जीवन की अनंत प्यास को बुझा लेती -

"तुम्हें बाँध पाती सपने में
तो चिर-जीवन प्यास बुझा
लेती उस छोटे क्षण अपने में ।"[178]

विरह-व्यथित कवयित्री को प्रिय-मिलन के उपायों की खोज है । उसी चिंता में दिन-रात घुलती रहकर वह अपनी समस्या का समाधान ढूँढ़ती है । अंततः निराश होकर सखी से पूछ बैठती है -

"अलि कैसे उनको पाऊँ ? ....
वे स्मृति बनकर मानस में,
खटका करते हैं निशिदिन,
उनकी इस निष्ठुरता को
जिसमें मैं भूल न जाऊँ ।"[179]

प्रिय प्राप्ति का जब और कोई साधन नहीं मिलता तो उसके सान्निध्य में व्यतीत हुए क्षणों की स्मृति ही वर्तमान की व्यथा से छूटकारा दिलाती है -

"अलि अब सपने की बात -
हो गया है वह मधु का प्रात ।
जब मुरली का मृदु पंचम स्वर,
कर जाता मन पुलकित अस्थिर,
कम्पित हो उठता सुख से भर,
नव लतिका सा गात !"[180]

प्रिय की विशेषताओं की चर्चा करके, उसके गुणों की प्रशंसा करके वियोगिनी अपना व्यथा-भार हल्का करना चाहती है । महादेवी का अनंत और असमी प्रिय करूणा का अथाह सागर है । उसका 'गिरि सा

गुरू अंतर' प्रिया की प्रत्येक भूल को क्षमा कर, उसे प्यार से सराबोर कर देता था –

''भूलती थी मैं सीखे राग, बिछलते थे कर बारम्बार
तुम्हें तब आता था करूणेश ! उन्हीं मेरी भूलों पर प्यार !''[181]

प्रिय के गुणकथन से भी प्रिया को कल नहीं पड़ती । उसकी आकुलता निरंतर बढ़ती ही जाती है । अपूर्ण अभिलाषाएँ उसका उद्वैग बढ़ा देती है । उसका विक्षुब्ध हृदय पुकार उठता है –

''फिर विकल हैं प्राण मेरे !
तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है ?
जा रहे जिस पंथ से युग कल्प उसका छोर क्या है ?
क्यों मुझे प्राचीर बनकर
आज मेरे श्वास घेरे ?''[182]

अतिशय दु:ख से हृदय का संयम छूट जाता है और वह प्रलाप करने लगती है –

''क्यों जग कहता मतवाली ?
क्यों न शलभपर लुट-लुट जाऊँ,
झुलसे पंखों को चुन लाऊँ
उन पर दीपशिखा अँकवाऊँ
अलि मैंने जलने ही मैं जब जीवन की निधि पाली ।''[183]

वेदना की तीव्रतमता से चित का संतुलन खो जाता है । उन्मादग्रस्त हृदय अस्थिर हो उठता है । ऐसी स्थिति में विक्षिप्त विरहिणी को किसी चीज की सुधि नहीं रहती –

''जीवन है उन्माद तभी से निधियाँ प्राणों के छाले
माँग रहा है विपुल वेदना के मन प्याले पर प्याले ।''[184]

जीवन की लंबी यात्रा में दुःख सहते – सहते वियोगिनी तन-मन से शिथिल हो गयी है । 'व्याधि' की अवस्था में उसके व्यथित मन से लिपटी पीड़ा उससे अभिन्न हो गयी है –

''पीड़ा मेरे मानस से, भीगे पट-सी लिपटी है,
डूबी सी यह निश्वासें, ओठों में आ सिमटी हैं । ''[185]

अपार दुःख से, कवयित्री जड़ता की स्थिति तक पहुँच गयी है । इन्द्रियाँ गति हीन हो गयी हैं और हृदय स्पंदनशून्य विरहाग्नि में उसकी चेतना गल कर कुंठित हो गयी है –

''चल पलक हैं निनिमेषी,
कल्प पल सब तिमिर वेषी,
आज स्पंदन भी हुई उर के लिए अज्ञात देशी ।
चेतना का स्वर्ण, जलती ।
वेदना में गल चुका है ।''[186]

विरहदग्ध नेत्र विकल हो जाते हैं, शरीर शिथिल पड़ जाता है । मरणासन्न अवस्था में प्रिय की अभिलाषा भी धुंधली पड़ जाती है । पीड़ा संज्ञाहीन हो जाती है और हृदयोद्‌गार भी निस्तब्ध हो जाते हैं । वियोगिनी को लगता है कि उसका जीवन दीप बुझने ही वाला है । यथा -

"पड़ी है पीड़ा संज्ञाहीन, साधना में डूबा उद्‌गार,
ज्वाल' में बैठा हो निस्तब्ध स्वर्ण बनता जाता है प्यार ;
चिता है तेरी प्यारी मीत ...
वियोगी मेरे बुझते दीप ।"[187]

इस प्रकार महादेवी के गीतों में अभिलाषा, चिंता, स्मृति, गुण, कथन, उद्वेग, प्रलापी, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण आदि विरह की काम-दशाओं का मार्मिक और मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है ।

6.1.2 अदभूत रस :

अलौकिक वस्तु के प्रत्यक्ष से दीप्त चित का विस्तार विस्मय कहलाता है । विस्मय ही अद्‌भूत रस का स्थायी भाव है । रस लोकोत्तर चमत्कार प्राण है; इसलिए चमत्कार या विस्मय की स्थिति प्रत्येक रस में अनिवार्य मानी गयी है ।

महादेवी के काव्य में अद्‌भूत या चमत्कारपूर्ण वस्तु व्यापार की अभिव्यंजना कम ही हुई है । परिवर्तनशील जगत् की रहस्यमयी गत्यात्मकता और अपार सुन्दरता को देखकर कवयित्री विस्मय -विमुग्ध

होती है । स्वाभाविक जिज्ञासा उसे प्रश्न करने के लिए विवश कर देती है -

''कनक से दिन, मोती सी रात
सुनहली साँस गुलाबी प्रात,
मिटाता रँगता बारम्बार,
कौन जग का यह चित्राधार ?''[188]

6.1.3 भयानक रस :

भयानक रस का स्थायी भाव भय है । यह मनोविकार विपत्ति, अपराध आदि भी आशंका से उत्पन्न होती है । भय में अनिष्ठ की भी आशंका विद्यमान रहती है ।

महादेवी के काव्य में कोमल-मधुर भाव व्यंजित है । केवल एकाध स्थलों पर प्रकृति के भयंकर रूप का चित्रण मिलता है । निम्नांकित पंक्तियों में प्रकृति के भयंकर रूप का प्रभावशाली वर्णन हुआ है -

''तरंगे उठी पर्वताकार, भयंकर करती हाहाकार,
अरे उनके फेनिल उच्छ्वास, तरीका करते हैं उपहास',
हाथ से गयी छूट पतवार, कौन पहुँचा देगा उस पार ?
ग्रास करने तरणी स्वच्छंद, धूमते फिरते जलचर बृन्द
देख कर काला सिन्धु अनंत, हो गया हा साहस का अंत ।
तरंगे है उताल अपार, कौन पहुँचा देगा उस पार ?''[189]

6.1.4 भक्तिरस :

ईश्वर विषयक प्रेम ही भक्ति है और भक्ति - व्यंजक काव्य के भावन से अद्भूत आनंद भक्ति रस । भक्तिरस का स्थायी भाव भक्ति अर्थात् परमानंदमय भगवान् के महात्म्य से उत्पन्न हर्ष के कारण द्रुत चित की भगवद् विषयक शुद्ध सात्त्विकी रति है ।

महादेवी की भक्ति काव्यशास्त्रियों द्वारा निर्धारित भक्ति से कुछ भिन्न है । उनके काव्य में कांत-कांता-भाव की सात्विक रति का आलंबन सगुण-निराकार ब्रह्म है । प्रकृति के कण-कण में व्याप्त उस अशरीरी आराध्य की आराधिका उसकी प्राणयिनी बन अपनी भक्तिभावात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करती है -

''तुम हो विधु को बिम्ब और मैं
मुग्धा रश्मि अजान,
जिसे खींच लाते अस्थिर कर
कौतूहल के बाण !''[190]

भक्ति तत्त्वतः एक मानसिक वृत्ति है । उसके लिए पूजन, अर्चन आदि बाह्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं । आकुल अंतर की विह्वल पुकार मन्दिर की चारदीवारी तक ही सीमित नहीं रह जाती । अलौकिक सगुण निराकार की आराधना के लिए तो उसका जीवन-मंदिर ही उपर्युक्त है । मन के दीपक, रोम के अक्षत और पीड़ा के चंदन से प्रियतम की आराधना करने वाली कवयित्री अपने स्पंदन को धूप बनकर उड़ने के लिए प्रेरित करती है -

''क्या पूजन क्या अर्चन रे ।
उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लधुतम जीवन रे ।
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनंदन रे ।
पदरज को धोने उमड़े आते लोचन में जलकण रे ।
अक्षत पुलकित रोम, मधुर मेरी पीड़ा का चंदन रे ।
स्नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक - मन रे ।
मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे ।
धूप बने उड़ते जाते हैं प्रतिफल मेरे स्पंदन रे ।
प्रिय-प्रिय जपते अधर ताल देता पलकों का नर्तन रे ।''[191]

6.2 संचारी भाव :

संस्कार - रूप में स्थित स्थायी भावों की पुष्टि के लिए तत्पर संचरणशील भाव संचारी कहलाते हैं । समुद्र में उठने गिरने वाली लहरों के समान ये भी स्थायी भाव के ही अन्तर्गत आदिर्भूत और तिरोहित होते हैं । ये संख्या में 33 माने गये हैं ।

महादेवी के काव्य में निबंधित संचार भावों की संख्या अधिक नहीं है । किन्तु जिन स्थलों पर उनकी योजना हुई वहाँ उनका स्वरूप मर्मस्पर्शी है ।

6.2.1 चपलता :

चित्त की अस्थिरता चपलता है । राग, द्वेषादि के कारण उच्छृंखल आचरण, कठोर वचन आदि इसके अनुभाव है । भ्रमर की रस-लोलुपता

और चपलता जगत्-प्रसिद्ध है । उसकी अस्थिर चित-वृत्तियों का महादेवी ने सवैया छंद के माध्यम से चिताकर्षक चित्रण किया है -

''पथ में नित स्वर्ण पराग बिछा,
तुझे देख जो फूली समाती नहीं;
पलकों से दलों में घुला मकरंद,
पिलाती कभी अनखाती नहीं;
किरणों में जुँथी मुक्तावलियाँ,
पहनाती रही, सकुचाती नहीं;
अब भूल गुलाब में पंकज की,
अलि कैसे तुझे सुधि आती नहीं ।''[192]

6.2.2 औत्सुक्य :

अभीष्ट - सिद्धि में समय के विलंब से असहिष्णु हो जाना 'औत्सुक्य' है । प्रिय-प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा सभी को आकुल कर देती है ।

जीवन जल-कण-सा क्षणिक है । रंगभरी अनंत इच्छाओं की पूर्ति इस धूमिल जग मे असंभव है । चिरनूतन और पुलकित प्रिय अपनी आभा से जीवन प्रकाशित कर पाने में सक्षम है । प्रिया उसका आह्वान करती है और उत्सुकता के कारण उसके नयन भर-भर कर आते हैं -

''जीवन, जल कण से निर्मित सा,
चाह - इन्द्रधनु से चित्रित सा;

सजल मेध सा धूमिल है जग;
चिर नूतन सकरूण पुलकित सा;
तुम विद्युत् बन, आओ पाहुन !
मेरी पलकों में पग धर-धर !
आज नयन आते क्यों भर - भर ?''[193]

''विद्युत् बन आओ पाहुन'' से तात्पर्य है विद्युत् की - सी तीव्र गति से प्रिय का आगमन, क्योंकि विलंब प्रिया को असह्य है ।

6.2.3 आवेग :

हर्ष, आशंका आदि से उत्प्रेरित चिंता की आतुर दशा 'आवेग' है । इस स्थिति में भ्रमित मन विक्षुब्ध होकर समय और स्थान का ज्ञान भूल जाता है । महादेवी का विरही हृदय प्रिय की विमुखता से क्षुब्ध हो गया है । प्रिय की वीणा की मधुर कंपन जहाँ हृदय में नव-स्पंदन भर देती है वही उसकी निष्ठुरता उसे दिग्भ्रमित कर देती है -

''प्रिय सुधि भूले री मैं पथ भूली ।
उनकी वीणा की नव कंपन,
डाल गयी री मुझ में जीवन;
खोज न पाई उसका पथ मैं
प्रतिध्वनि सी सूने में झूली !''[194]

6.2.4 हर्ष :

अभीप्सित वस्तु की प्राप्ति हृदय को जिस आनंद से अभिभूत कर देती है उसे ''हर्ष'' कहते है । जीवन का सर्वस्व आनंद में ही निहित है । चित की प्रसन्नता में सम्पूर्ण जगत् हर्षमय हो जाता है ।

महादेवी के काव्य में कहीं भी प्रिय-मिलन का आह्लाद दृष्टिगत नहीं होता । केवल प्रिया का प्रणयी हृदय प्रिय के अनुराग में मग्न है । वह अपने आह्लादित हृदय का प्रतिबिम्ब प्रकृति के प्रसन्न उपकरणों में देखती है -

''चुभते ही तेरा अरूण बान !
बहते कन-कन से फूट-फूट
मधु के निर्झर से सजल गान !
इन कनक रश्मियों में अथाह, लेता हिलोर तमसिंधु जाग;
बनती प्रवाल का मृदुल कूल, जो क्षितिज रेख थी कुहर-म्लान ।''[195]

6.2.5 व्रीड़ा :

स्त्रियों में पुरूष का मुखावलोकन आदि से तथा पुरूषों में प्रतिज्ञाभंग, पराजय आदि से उत्पन्न चित्तवृति 'व्रीड़ा' है । लज्जा नारी का स्वाभाविक गुण है । कैशोर्य का आगमन होते ही सरल उन्मुक्त बालिका अपनी समस्त उन्मुक्तता भूलकर लाजवंती बन जाती है । शैशव का अकारण हास न जाने कैसे लानभीनी मृदु मुस्कान में बदल जाता है । तरंगों की

- सी चंचल चाल भूलकर उसके पद मेध की गंभीर गति सीखने लगते हैं । निम्नांकित पंक्तियों में स्त्री-सुलभ व्रीड़ा की स्वाभाविक व्यंजना निस्संदेह रमणीय है -

"सरल तेरा मृदु हास ।
अकारण वह शैशव का हास -
बन गया कब कैसे चुपचाप,
लाजभीनी सी मृदु मुस्कान !
तड़ित सी जो अधरों की ओट,
झाँक हो जाती अंतर्धान ।
सजनि वे पद सुकुमार ।
तरंगों से द्रुत पद सुकुमार -
सीखते क्यों चंचल गति भूल,
भरे मेधों की धीमी चाल ?"[196]

6.2.6 गर्व :

रूप, प्रभाव, सत्ता आदि से अपने उत्कर्ष का ज्ञान प्राप्त कर, दूसरे को हेय मानने की वृत्ति गर्व है । इसकी गणना क्षुद्र भावों के अंतर्गत की जाती हैं, क्योंकि इस भावना से अभिभूत प्राणी स्वयं को श्रेष्ठ मानकर दूसरों का तिरस्कार करने से नहीं चूकता । महादेवी के काव्य में गर्व संचारी की उद्भावना स्वाभिमान के रूप में हुई है । कवयित्री को अपनी विरह - वेदना प्रिय है । उसके लिए वियोग का कल्प भी निमिष-समान है । विरह-व्यथा से व्यथित न होकर वह उसी को

निर्वाण, वरदान और मिलनोत्सव मानती है । उसे इस बात का गर्व है कि अभिसार के अभाव को भी उसने अपना अतृप्त भावों से पूरित कर लिया -

''निमिषा से मेरे विरह के कल्प बीते ।
पंथ को निर्वाण माना
शूल को वरदान जाना
जानते यह चरण कण - कण
छू मिलन उत्सव मनाना ।
प्यास ही से भर लिये अभिसार रीते ।''[197]

6.2.7 मद :

मद्य आदि मादक वस्तुओं के सेवन के सम्मोह और आनन्द-उल्लास को व्यक्त करने वाली चित्तवृत्ति 'मद' है । महादेवी को अपना एकांत प्रिय है । वसंत ऋतु की मादकता भरी रागिनी उनके सोते प्राणों की प्यास न जगा दे, अपने सौरभ में उन्माद मिलाकर, वातावरण को नशीला बनाकर कहीं उनहें सम्मोहित न कर दें, इसीलिए वे मुग्ध वसंत से अनुनय करती है । यथा -

''विजन वन में बिखरा कर राग
जगा सोते प्राणों की प्यास,
डाल कर सौरभ में उन्माद,
नशीली फैलाकर निश्वास,
लुभाओ इसे न मुग्ध वसंत ।
विरागी है मेरा एकांत ।''[198]

6.2.8 श्रम :

अत्यधिक शारीरिक कार्य के परिणामस्वरूप शिथिल मन का खेद ''श्रम है । महादेवी के काव्य मे निरंतर प्रतीक्षा-रत विरहिणी की शिथिलता का मर्मस्पर्शी चित्रण मिलता है । अनवरत प्रतीक्षा से वियोगिनी का केवल तन ही शिथिल नहीं हुआ, अपितु उसका हृदय भी स्पंदनहीन - सा हो रहा है -

''शिथिल-शिथिल तन थकित हुए कर
स्पंदन भी भूला जाता उर
मधुर कसक सा आज हृदय में
आन समाया कौन ?''[199]

6.2.9 मति :

नीति-मार्ग का अनुसरण करते हुए उचित निर्णय लेने वाली चित्तवृत्ति मति है । प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अनिष्ट की चिंता न करके अपने लक्ष्य-पथ पर निभ्रांत और निर्भय चलने वाली कवयित्री अपनी 'मति' से परिचालित है -

''भीति क्या यदि मिट चली
नभ से ज्वलित पग की निशानी,
प्राण में भू के हरी है,
पर सजल मेरी कहानी !
प्रश्न जीवन के स्वयं मिट
आज उतर कर चली मैं ।''[200]

6.2.10 स्मृति :

संस्कारजन्य ज्ञान 'स्मृति' है । सदृश वस्तु के दर्शन अथवा अनुभव से हृदयगत भावनाएँ तीव्र हो जाती हैं । स्मृतियों का ज्वार उमड़ पड़ता है । वसंत-प्रिय कोकिल का सुरीला राग सुनते ही विरहिणी का अतीत सिन्धु के समान मचल पड़ता है । सोई हुई सुधियाँ लहरों का ज्वार बन बन जाती है । रोम-रोम में विश्व का दुःख जाग पड़ता है -

''कोकिल गा न ऐसा राग
मधु की चिर प्रिया यह राग ।
उठता मचल सिन्धु अतीत,
लेकर सुष्त सुधि का ज्वार,
मेरे रोम में सुकुमार
उठते विश्व के दुःख जाग ।''[201]

6.2.11 धृति :

''धृति'' वह संकल्पात्मक चित्तवृत्ति है जिसके आविर्भाव से लोभ, शोक, भय आदि के कारण उत्पन्न मानसिक अशांति की शांति हो जाती है । निश्चय पर अडिग होकर, अविचलित भाव से सक्रिय होना 'धृति' का परिचायक है । दृढ़ निश्चयी कवयित्री प्रेम का पाथेय लेकर विकट राह पर चल पड़ी है । उसे विघ्न-बाधाओं का डर नहीं है । घनघोर, अंधकार और घटाओं की रिमझिम में भी वह अपने नयन-दीप को बुझने नहीं देगी -

''पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला
घेर ले छाया अमा बन,
आज कज्जल अश्रुओं से रिमझिमा ले यह घिरा घन,
और होंगे नयन सूखे, तिल बुझे-औ' पलक रूखे,
आर्द्रचित्तवन में यहाँ, शत विद्युतों में दीप खेला ।''[202]

6.2.12 चिंता :

अभीष्ट वस्तु की अप्राप्ति और अनिश्चित की प्राप्ति से उद्‌भूत वृत्ति 'चिंता' है । महादेवी का अभीष्ट उनका प्रिय है । उससे मिलन न होने की स्थिति में प्रिया चिंताकुल है । व्यथित हृदय प्रिय-प्राप्ति का उपाय ढूँढ़ता है; उसे सिद्धि मिलने में संदेह है, क्योंकि न तो प्रिय की पहचान है न ही उसका पता-ठिकाना है -

''अलि कहाँ संदेश भेजूँ ?
मैं किसे संदेश भेजूँ ?
एक सुधि अनजान उनकी
दूसरी पहचान मन की,
पुलक को उपहार दूँ या अश्रुभार अशेष भेजूँ ।''[203]

6.2.13 विषाद :

इष्ट की अप्राप्ति, इष्ट की हानि अथवा अवांच्छित कार्य से उत्पन्न अनुताप 'विषाद' है । प्रिय-प्राप्ति के लिए निरंतर साधनाशील प्रतीक्षारत

और भावना – मुक्त विरहिणी की अभिलाषा उस समय चूर-चूर हो जाती है, जब प्रिय उसकी सुधी नहीं लेता –

''हुए हैं कितने अंतर्धान, छिन्न होकर भावों के हार,
घिरे धन से कितने उच्छ्वास उड़े हैं नभ से होकर क्षार !
शून्य को छू कर आये लौट मूक होकर मेरे निश्वास,
बिखरती है पीड़ा के साथ चूर होकर मेरी अभिलाषा !''[204]

6.2.14 दैन्य :

दुर्गति आदि के कारण मन की ओजस्विता नष्ट हो जाने पर मलिन मन का खेद 'दैन्य' है । प्रिय की राह देखते – देखते प्रियतमा शिथिल हो गयी है । वह निष्ठुर नहीं आया तब दीन प्रिया स्वयं निकल पड़ी उसे ढूँढ़ने –

''नहीं है तरिणी कर्णाधार
अपरिचित है वह तेरा देश,
साथ है मेरे निर्मम देव !
एक बस तेरा ही संदेश ।''[205]

6.2.15 जड़ता :

चिंता, उत्त्कंठा, विरह, भय अनिष्ठा आदि के अवलोकन अथवा श्रवण से चित की किंकर्तव्यविमूढ़ता ही 'जड़ता' है । प्रिय-मिलन की कामना मन में लिये प्रिया चल पड़ी है । अथाह सागर की उत्ताल तरंगें

देखकर वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी है । वातावरण की भयंकरता से क्षुब्ध हृदय की सशक्त व्यंजना दर्शनीय है –

"ग्रास करने तरिणी, स्वच्छंद
घूमते फिरते जलचर-वृंद,
देखकर काला सिंधु अनंत
हो गया हा साहस का अंत ।
तंरगे हैं उताल अपार,
कौन पहुँचा देगा उस पार ?"[206]

6.2.16 व्याधि :

रोग और वियोग से उत्पन्न होने वाला मनस्ताप 'व्याधि' कहलाता है । महादेवी के काव्य में वियोग का मनस्ताप प्रबल है । विरह वेदना-व्यथित अंतर के चित्तस्पर्शी प्रकाशन का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

"पीड़ा मेरे मानस से
भीगे पट सी लिपटी है,
डूबी सी यह निश्वासें
ओठों में आ सिमटी हैं ।"[207]

6.2.17 उन्माद :

वियोग, विपत्ति अथवा आनंद की अतिशयता से चित्त की संभ्रम अवस्था 'उन्माद' हैं । इस स्थिति में वस्तुओं की पहचान न पाकर मन

अत्यंत व्याकुल हो उठता है -

''जीवन है उन्माद् तभी से
निधियाँ प्राणों के छाले,
माँग रहा है विपुल वेदना
के मन प्याले पर प्याले ।''[208]

6.2.18 त्रास :

भयंकर झंझावात, विद्युत्त्पात और उत्कापात आदि के कारण उत्त्पन्न होने वाली व्यग्रता 'त्रास' है । घनघोर घटाओं का अंधकार, प्रभंजन के प्रबल प्रवेग से डांवांडोल भूधर और गर्जन करता सागर-ऐसे प्रलयंकर वातावरण से व्यग्र हो जाने वाले हृदय का प्रभावी एवं जीवंत वर्णन महादेवी के इस काव्यांश में अवेक्षणीय है -

''घोर तम छाया चारों और
घटाओं घिर आई घनघोर,
वेग मारूत का है प्रतिकूल
हिले जाते हैं पर्वतमूल
गरजता सागर बारंबार,
कौन पहुँचा देगा उस पार ?''[209]

6.2.19 मरण :

काव्यगत वियोग-वर्णन में मरण का अभिप्राय प्राण-त्याग न होकर मरणासन्न अवस्था है । अतिशय दु:ख से प्राप्त मूर्च्छावस्था ही मरण

है । महादेवी के काव्य में विरह-वेदना की अतिशयता के परिणामस्वरूप मरण की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है -

''शेष यामा यामिनी मेरा निकट निर्वाण ।
पागल रे शलभ अनजान ।
तिमिर में बुझ खो रहे विद्युत भरे निश्वास मेरे
निःस्व होंगे प्राण, मेरा शून्य उर होगा सवेरे,
राख हो उड़ जायेगी यह
अग्निमय पहचान ।''[210]

7. प्रकृति-प्रेम :

मानव और प्रकृति का संबंध अभिन्न है । इस दृश्यमान जगत् में जन्म और विकास पाकर मानव-स्वभाव गतिशील होता है । उसके भौतिक परिवेश के संघात ही उसकी प्रकृति का निर्माण करते हैं । मानव-जीवन पर प्रकृति के इस व्यापक प्रभाव के कारण ही संभवतः स्वभाव को प्रकृति की संज्ञा दी गयी है ।

''प्रत्येक मनुष्य प्रकृतिके रूप और सौन्दर्य का प्रभाव ग्रहण करता है । उसके स्थायी आकर्षण की व्याख्या वह भिन्न-भिन्न कलाकृतियों और भावों के माध्यम से करता आया है । जहाँ तक भारतीय प्रकृतिवाद का संबंध है, वह दर्शन के सर्ववाद का काव्य में भावगत अनुवाद कहा जा सकता है । यहाँ प्रकृति दिव्य शक्तियों का प्रतीक भी बनी, उसे जीवन की सजीव संगिनी बनने का अधिकार भी मिला, उसने अपने

सौन्दर्य और शक्ति द्वारा अखंड और व्यापक परमतत्त्व का परिचय भी दिया और वह मानव के रूप का प्रतिबिंब और भाव का उद्दीपन बन कर भी रही ।''[211] अपनी विविध वृत्तियों के अनुसार मनुष्य ने प्रकृत्ति को विभिन्न दृष्टियों से स्वीकारा है । कहीं वह विषयपरक हैं, कहीं रहस्यमूलक । कवियों की दृष्टि प्रकृति के प्रति वस्तुपरक न होकर भावपरक होती है । प्रकृति के सौन्दर्य से अभिभूत कवि ऐसे भावलोक में पहुँच जाता है जहाँ वह तन्मय होकर आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता है ।

कवि संवेदनशील कलाकार होता है । संस्कार-रूप में प्राप्त प्रकृति प्रेम उसके काव्य मे अभिनव रूप में उभर कर आता है । ''काव्य में प्रकृति ने नवीन रूपात्मकता के साथ जो चेतना पाई, उसने मानव-जाति में उसे ऐसे सम्मिलित कर लिया कि न वह अकेली रही न मनुष्य । घनिष्ठ संबंध से और मनोरोगों से दोनों समृद्ध हुए ।''[212] महादेवी के इस कथन से यह स्पष्ट है कि प्रकृति के समावेश से जहाँ मनुष्य की कृत्ति कालजयी हुई वही मानव-सम्पर्क प्रकृति भी अमर हो उठी । प्राचीन संस्कृत काव्यों में अंकित प्रकृति के विविध रूप आज भी चेतना को द्रुत करते है ।

छायावाद की संवेदना से संवलित होकर प्रकृति और जीवंत हो गयी है । उस सत्य को स्पष्ट करते हुए महादेवी लिखती हैं : ''छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस संबंध में प्राण डाल दिये जो प्राचीन काल से बिंब - प्रतिबिंब के रूप में चला आ रहा था और

जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दु:ख में उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी । छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गयी; अत: अब मनुष्य के अश्रमेघ के जलकण और पृथ्वी के ओसबिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है । प्रकृति के लघु तृण और महान वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर, शिलाएँ, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अंधकार और उज्जव विद्युत-रेखा, मानव की लघुता-विशालता, कोमलता, कठोरता, चंचलता और मोह-ज्ञान का केवल प्रतिबिंब न होकर एक ही विराट् से उत्पन्न सहोदर है । जब प्रकृति की अनेकरूता में, परिवर्तनशील, विभिन्नता में, कविने ऐसे तारतम्य को खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम ह्रदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक-एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा ।[213] तात्पर्य यह है कि प्रकृति असीम ब्रह्म और ससमी मानव को अभिन्न करने की महत्त्वपूर्ण कड़ी है ।

महादेवी के काव्य में प्रकृति का विशेष स्थान है । वहाँ वह चेतना-सम्पन्न संगिनी है जो जीवन-यात्रा को सुखद बनाती है । अपने रंगमय सौन्दर्य से जीवन को चमत्कृत और उल्लसित करती है । चिरनूतन प्रकृति का साक्षात्कार कवयित्री के हर क्षण को नवीनता का बोध देकर आनंद से भर देता है । पल-पल प्रियतम के अलौकिक सौन्दर्य की प्रतीति करानेवाली प्रकृति कवयित्री की आस्था को सम्बल प्रदान करती है ।

महादेवी का प्रकृति-प्रेम औदात्यपूर्ण है । संवेदनशील कवयित्री ने प्रकृति को भी संवेदनशील माना है ।

महादेवी में प्रकृत्ति-प्रेम बचपन से ही विद्यमान था । उन्होंने अपनी माँ के कहने पर आठ वर्ष तक की आयु में 'बारहमासा' लिखा था, जिसमें आषाढ़ से जेठ तक का वर्णन किया गया है । यथा -

(1)

माँ कहती आषाढ़ आया है
काले काले मेध घिर रहे,
रिमझिम बूँदे बरस रही है
मोर नाचते हुए फिर रहे ।

(2)

फिर यह तो सावन के दिन हैं
राखी भी आई चमकीली,
नन्हे को राखी बाँधी है
माँ ने दी है चुन्नी नीली ।

(3)

भादों ने बिजली चमका कर
गरज गरज कर हमें डराया,
क्या हमने चांई मांई कर
इसीलिए था इसे बुलाया ।

(4)

गन्ने चटका चटका कर माँ
किन देवों को जगा रही है,
ये कुँवार तक सोते रहते
क्या इनको कुछ काम नहीं है ।

(5)

दिये तेल सब रामा लाया
हमने मिल बितियाँ बनाई
कातिक में लक्ष्मी की पूजा
करके दीपावली जलाई ।

(6)

माँ कहती आगहन के दिन हैं
खेलो पर तुम दूर न जाना
हमको तो अपनी चिड़ियों की
खोज खबर है लेकर आना ।

(7)

पूस मास में सिली रजाई
निक्की रोजी बैठे छिप कर
रामा देख इन्हें पाएगा
कर देगा इन सबको बाहर ।

(8)

माघ मास सर्दी के दिन हैं
नहा नहा हम काँपें थर थर,
पर ठाकुर जी कभी न काँपे,
उन्हें नहीं क्या सर्दीका डर ?

(9)

फागुन आया होली खेली
गुझियाँ खाई जन्म मनाया,
क्या मैं पेट चीर कर निकली
या तारों से मुझे बुलाया ।

(10)

चैत आ गया चैती गाओ
माँ कहती बसन्त आया है,
नये नये फूलों पतों से
बाग हमारा लहराया है ।

(11)

अब बैशाख आ गई गर्मी
खेलेंगे हम फव्वारों से,
बादल अब न आएँगे हमको
ठंडा करने बौंछारों से ।

(12)

माँ कहती अब जेठ तपेगा
निकलो मत घर बाहर दिन में,
हम कहते गोरइयाँ प्यासी
पानी तो रख दें आँगन में ।
बाबू जी कहतें हैं इनको
नया बरस है पढने भेजो,
माँ कहतीं ये तो छोटे हैं
इन्हें प्यार से यहीं सहेजो ।
हम गुपचुप गुपचुप कहते हैं
हमने तो सब पढ़ डाला है,
और पढ़ाएगा क्या कोई
पंडित कहाँ कहाँ शाला है ?[214]

महादेवीजी ने 'षड़ऋतु' वर्णन भी किया है, जिसमें वर्षा, शरद् शिशिर, हेमंत वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओं को चित्रित किया गया है ।

वर्षा : वर्षा ऋतु में आकाश, बादल, सागर, गर्जन, मीट्टी की सोंधी सुगंध आदि के द्वारा प्राकृतिक वातावरण की जो सर्जना हुई है उनका वर्णन किया गया है -

''कुमकुम से नभ पंथ सजे सागर गर्जन ध्वनि शंख सुहाई,
किरनन की नीराजन हू पूरब दिशि ने मनु हर्ष सजाई,
सोंधी सुगंध भरी धरती ने मनहु निज साँसन धूप जराई,
वात के हय बल्गा करि बीजुरी मेध के रथ वर्षा चढ़ि आई !''[215]

शरद : चंद्रमाँ की चाँदनी, सरिता, सरोवर, समुद्र आदि को चित्रित किया है । शरद् को स्वर्ग की पुत्री भी कहा है -

''स्वच्छ भरे सरिता सर सागर चाँदनी से सज्वो व्योम को आँगन,
भूमि दुकुल हरो पहिरे और सजायो है इन्दु की बेंदी से आनन,
वात ने मंगल गीत रचें अरू कंज की अंजलि में मधु के कन,
स्वर्ग सुता उतरी चली आवत दिव्यता लै यह शरद् सुहावन !''[216]

शिशिर : शिशिर में सूर्य का न तपना और जल, पवन, धरती का शीतल होना, जैसे जीवन की उष्मा थम गयी है । यथा -

''सूरज पाकि गए तपि कै जब ये करि है विसराम कछू दिन,
सीरौ है जल अरू सीरी पवन बहि देत धरा हू को सीत प्रकंपन,
जीवन की उष्मा न कहूँ श्रम हूँ से नहीं प्रकटे श्रम के कन,
शिशिर ने आज कियो जग में यह कौन, अराजकता को प्रसारन ?''[217]

हेमंत : वृक्ष लता आदि के पतें झर गये है, मानो भीति के कारण फूल रूपी नेत्र मूँद गुए है, हेमंत पतझर आया, जिससे वातावरण एवं जीवन में बदलाव आया -

''झर झर करि तोरे सब पल्लव मारूत है मनु उन्मद वारन,
मूँद रहे सब फूल के लोचन वृक्ष लता गगन भीति के कारन,
धूरि हूँ व्योम को जाति छुवै तृन हूं चले आज बसे उन तारन,
रोकहि को परझार समै यह देत हेमंत न राज सँभारन !''[218]

बसन्त : वसंत में मानो युद्ध के अंत का तूर्य बजा और चारों ओर फूलों की बहारें आयी हैं, दु:ख का सुख में परिवर्तित होना, नयी जीवन दृष्टि, जीने की आश आदि वर्णन वसंत में मिलता है –

''आँधी भई नत बात गयो थमि तूर्य बज्यो जब विग्रह अंत को,
फूलन बंदनवार सजे भयो रंगन से छिड़काव दिगंत को,
बीत गई रजनी दु:ख की अरू अंत भयो है विषाद दुरंत को,
दीटि में जीवन हास में आस सबै दै भयो अभिषेक बसंत को !''[219]

ग्रीष्म : ग्रीष्म में अग्नि निष्ठुर हो गया है । उसके दंड के कारण सरोवर, सरिता आदि सूखें पड़ गए, समुद्र बादल दूत भेज कर, सूर्य की ज्वाला, क्रोध शांत करने का प्रयास करता है । यथा –

''ग्रीष्म में लखि राजदशा भयो कोप से सूर्य को रक्तिम आनन,
दण्ड की घोषणा लै के चले येहि लू के कृशानु से निष्ठुर धावन,
सूखि गए सरिता सर भीति से दोष कियो जिन बाढ़ के कारण,
सागर बादर दूतहिं भेजि करै दिननाथ को रोष निवारण !''[220]

अत: महादेवी को अलौकिक प्रिय की प्रेयसी या छायावादी कवयित्री कहने से पहले प्रकृतिवादी कवयित्री कहना बेहतर होगा । जो हमे उपर्युक्त पंक्तियाँ से ही स्पष्ट होता है ।

प्राचीन काल से लेकर आज तक के साहित्य और अपने काव्य में प्रकृति की स्थिति को स्पष्ट करते हुए महादेवी कहती है : ''मेरे गीतों में प्रकृति मेरी भावानुकृति बनकर ही आ सकती थी, पर उसके संबंध में

कुछ कहना मेरे लिए सहज नहीं । शब्द संकेत लैकिक पृष्ठभूमि में बनते हैं अतः आलौकिक संवेगों की अभिव्यक्ति भी लौकिक शब्द-प्रतीकों में ही संभव है । केवल अलौकिक संवेदन के भवपत्र में प्रकृति के व्यापक रूप का फैलाव अधिक मिलेगा । जिन साधक कवियों ने प्रकृति को माया माना, उन्होंने भी उसकी निंदा के लिए उस पर चेतना का आरोप किया और उसके रूपाकर्षण को स्वीकार किया । जिन्होंने उसे अपने इष्ट के व्यापक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति माना वे भी उसे जड़ नहीं मान सकते थे । इस प्रकार वैदिक काल की अरण्यानी आज भी चेतना सम्पन्न है और बढ़ते विज्ञान के साथ पग मिला कर चल सकेगी ।''[221]

महादेवी के काव्य में प्रकृति का रूढ़िबद्ध चित्रण नहीं मिलता । उन्होंने आलंबन और उद्दीपन के परम्परागत सांचों में उसका वर्णन कम ही किया है । रहस्यवादी कवयित्री ने प्रकृति को कभी अखंड असीम चेतन सत्ता का प्रतिबिंब मानते हुए उससे तादात्म्य स्थापित किया है, कभी उसे अपनी अभिन्न सहचरी के रूप में स्वीकार किया है और कभी उसे भाव-व्यंजन की प्रक्रिया में अलंकार रूप में अंकित किया है ।

महादेवी के स्वानुभूतिव्यंजक काव्य का आलंबन असीम ब्रह्म है । उस निराकार का कोई निश्चित रूप नहीं है । कवयित्री प्रकृति के कण-कण में उसकी सत्ता का अनुभव करती है । इसीलिए प्रकृति का प्रत्येक उपकरण उसके लिए महत्वपूर्ण है । मानव और प्रकृति दोनों ही उस चेतन ब्रह्म से स्पंदन पाते हैं । दोनों एक - दूसरें की अस्तित्व-रक्षा

के लिए प्राणपण से जुटे रहते है ।''छायावाद का कवि न प्रकृति के किसी रूप को लघु या निरपेक्ष मानता है न अपने जीवन को, क्योंकि वे दोनों ही एक विराट रूप समष्टि में स्थिति रखते हैं और एक व्यापक जीवन में स्पंदन पाते हैं । जीवन के रूप दर्शन के लिए प्रकृति अपना अक्षय सौन्दर्य - कोष खोल देती है और प्रकृति के प्राण - परिचय के लिए जीवन अपना रंगमय भावाकाश दे डालता है ।[222]

प्रकृति अपनी सुन्दरता व्यापकता और विचित्र रहस्यमयता के कारण अनादि काल से मानव - मन को प्रभावित और आंदोलित करती रही है । वेदकालीन मनीषी उसे अजर सौन्दर्य और अजस्र शक्ति का ऐसा प्रतीक मानता है, जिसके बिना जीवन की स्वस्थ गति संभव नहीं । वह मेघ को प्राकृतिक परिणाम नहीं, चेतन व्यक्तित्व के साथ देखता है ।''[223] महादेवी प्रकृति के अजर सौन्दर्य में अपने दिव्य प्रियतम का प्रतिबिंब देखती है । उस अलौकिक प्रिय के दीप्त अंग-प्रत्यंग पर विद्युत का अंगराग है । इन्द्रधनुष उसकी भृकुटि है और उसकी चितवन में अंधकार की श्यामलता है । उसका छोर-रहित नवनील चीर सम्पूर्ण नभ में व्याप्त है -

> ''चितवन तम-श्याम रंग,
> इन्द्रधनुष भृकुटि-भंग,
> विद्युत का अंगराग,
> दीपित मृदु अंग-अंग
> उड़ता नभ में अछोर तेरा नव नील-चीर ।''[224]

प्रकृति का यह सुनिश्चित नियम है कि सूर्योदय होते ही रात्रि का अंधकार समाप्त हो जाता है । बाल अरूण की कनक-रश्मियों से प्रकृति का कण-कण प्रकाशित हो उठता है । रात्रि की गहन नीरवता में सुप्त पड़े विहग, भ्रमर, तितली आदि सजग हो अपनी मधुर-रागिनी छेड़ देते हैं । मन्द पवन के झोंकों से हिलती डालों पर पल्लव झूमने लगते हैं । प्रकृति की इस सहज-स्वाभाविक परिवर्तनशील में कवयित्री को उसके अलौकिक प्रिय का आभास होता है । प्रिय की सुधि उसे व्यथित कर देती है । प्रिय-संयोग की सुखद स्मृतियों से उत्पन्न हर्ष और फिर प्रिय-वियोग-जन्य वेदना से उद्भूत आँसू के रंग से जो दृश्यांकन होता है वह विलक्षण है -

''इन कनक-रश्यियों में अथाह,
लेता हिलोर तम-सिन्धु जाग;
बुद्बुद् से बह चलते अपार,
उसमें विहगों के मधुर राग;
बनती प्रवाल का मृदुल कूल,
जो क्षितिज-रेख की कुहर-म्लान !
नव कुन्द-कुसुम से मेघ-पुंज,
बन गये इन्द्रधनुषी विज्ञान,
दे मृदु कलियों की चटक, ताल,
हिम-बिन्दु नचाती तरल प्राण;

धो स्वर्ण-प्रात में तिमिर-गात

दुहराते अलि निशि-मूक तान ।

रंग रहा हृदय ले अश्रु-हास,

यहा चतुर चितेरा सुधि-विहान ।''[225]

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि जिस प्रियतम का सुधि-विहान इतना मनोरम है वह स्वयं कितना दिव्य और आकर्षक होगा ।

निर्झर के जल से सरोवर के भरने और उस पर सूर्य की किरण पड़ने पर जलजात के खिलने की प्रक्रिया को महादेवी का प्रणयी हृदय मुग्ध भाव से देखता है और उन प्राकृतिक उपकरणों में प्रिय की उत्प्रेक्षा करके आत्मीयता का अनुभव करता है -

''जब उसकी चितवन का निर्झर,

भर-देता मधु से मानस-सर,

स्मित से झरतीं किरणें झर-झर

पीते दृग जल-जात ।''[226]

यहाँ निर्झर प्रिय की चितवन है जो प्रिया के मानस सरोवर को मधु-जल से भर देता है; किरणें प्रिय की स्मिति हैं जिसे देख कर प्रिया के दृग-कमल खिल जाते है ।

प्रकृति के विराट और महान् रूपों में महादेवी हिमालय से सर्वाधिक प्रभावित है । वह हमारी उज्जवल सांस्कृतिक परम्परा का प्रतीक है । उसकी महत्ता उदारता और तटस्थता से कवयित्री तादात्म्य स्थापित

करना चाहती है । यथा -

"हे विर महान्...
मेरे जीवन का आज मूक,
तेरी छाया से हो मिलाप;
तन तेरी साधकता छू ले,
मन ले करूणा की थाह नाप !
उर में पावक दृग में विहान !"[227]

प्रकृति का चिरकालिक साहचर्य मानव को नाना प्रकार की प्रेरणा देता है । हिमालय की अचलता, उज्जवलता और विशालता से जहाँ दृढ़ पावन और महान् होने की प्रेरणा मिलती है वहीं मेधों से करूणा-वाहक बनने की । फूल निःस्वार्थ और दानी बनने का संदेश देते हैं । इस विषयवासनायुक्त संसार के मोह और आकर्षण से निर्लिप्त रहकर सात्विक और उदात्त भावनाओं का उन्मेष करने की प्रेरणा कमल से प्राप्त होती है । प्रकृति के ये उपादान महादेवी के आदर्श है । उनके गुणों को आत्मसात् करने का वे हर संभव प्रयत्न करती हैं ।

प्राकृति की स्वाभाविक रमणीयता और सहज गुणों से प्रभावित कवयित्री उसे अपनी सहचरी के रूप में भी देखती है । संगिनी अथवा सखी का संबंध जीवन का मधुर, आत्मीय और परिहार्य संबंध है । इस संबंध में किसी प्रकार का दुराव-छिपाव अथवा औपचारिक नहीं होती । इस भाव में भी एक प्रकार का अभिन्नता-बोध होता है । भारतीय साहित्य में प्रकृति को सहचरी के रूप में चित्रित करने की

प्राचीन परम्परा रही है । इस विषय में महादेवी की अभ्युक्ति दृष्टव्य है "प्रकृति को संगिनी के रूप में ग्रहण करने की प्रवृत्ति इतनी भारतीय है कि उत्कृष्ट काव्यों से लेकर लोकगीतों तक व्याप्त हो चुकी है । ऐसा कोई लोकगीत नहीं, जिसमें मनुष्य अपने सुख-दुःख की कथा कोयल, पपीहा, सूर्य-चन्द्र, गंगा-यमुना, आम-नीम आदि को न सुनाता हो और अपने जीवन के प्रश्न सुलझाने के लिए प्रकृति से सहायता न चाहता हो ।"[228]

कई प्राचीन कवि दार्शनिकों ने प्रकृति को माया का प्रतीक माना है, जो ब्रह्म-मिलन में बाधक है । महादेवी की सहचरी प्रकृति प्रिय-मिलन में बाधक न होकर साधक है । प्रिय से रूठी मानिनी को मनाने के लिए संध्या-सुन्दरी इन्द्रधनुष का चीर, अस्ताचलगामी सूर्य की लालिमा का महावर, निकट आती हुई रात्रि की कालिमा का अंजन और भ्रमर-गुंजित मीलित पंकज का नूपुर लेकर आती है :

"नव इन्द्रधनुष - सा चीर, महावर अंजन ले,
अलि गुंजित मीलित पंकज, नूपुर रूनझुन ले,
फिर आई मनाने सांझ, मैं बेसुध मानी नहीं ।"[229]

कवयित्री कभी चिर-चंचल प्रिय से मलय-पवन बनकर आने की प्रार्थना करती है, कभी मधु बयार स्वयं ही प्रिय की सुधि लेकर आती है :

"जाने किस जीवन की सुधि ले
लहराती आती मधु बयार ।"[230]

प्रकृति-सखी प्रिय की सुधि मात्र ही नहीं लाती, वह तो प्रिय के आगमन का संदेश भी लाती है -

"मुस्काता संकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?....
मोती बिखराती नूपुर के, छिप तारक परियाँ नर्तन कर;
हिमकण पर आता-जाता -- मलयानिल परिमल से अंजलि भर;
भ्रांत पथिक से फिर फिर आते
विस्मित पल क्षण मतवाले हैं ?
अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?"[231]

प्रिय-आगमन की संभावना से उत्फूल्ल प्रिया अलौकिक प्रिय को रिझाने के लिए प्रकृति के रंगमय सुगंधित उपकरणों से साज-श्रृंगार करना चाहती है -

"रंजित कर दे यह शिथिल चरण ले नव अशोक का अरूप राग,
मेरे मंडन को आज मधुर ला रजनीगंधा का पराग,
यूथी की मीलित कलियों से अलि दे मेरी कवरी सँवार ।
पाटल के सुरभित रंगों से रँग दे हिम सा उज्जवल दुकूल;
गुथ दे रशना में अलि-गुंजन से पूरित झरते वकुल-फूल,
रजनी से अंजन माँग सजनि, दे मेरे अलसित नयर सार ।"[232]

उपर्युक्त पंक्तियों में जहाँ नारी-सुलभ सौन्दर्य-प्रसाधन की प्रवृत्ति व्यंजित होती है वहीं कवयित्री की प्रकृति के वर्ण-गंघ-संबंधी सूक्ष्म

और गंभीर ज्ञान की प्रतीति भी होती है । डॉ. अंम्बाशंकर नागर लिखते है – ''उन्होंने प्रकृति में मानवता और आत्मा में परमात्मा की झलक देखी तथा उसे अपने मर्मर मधुर गीतों में अंकित किया है ।''[233] अलौकिक प्रिय को रिझाने के लिए प्रिया ने असाधारण अभिनव श्रृंगार किया था किन्तु शशि के दर्पण में देख-देखकर सुलझाये हुए तिमिर केश, उनमें चुन-चुनकर गूंथे हुए तारक-पारिजात और किरणों का झीना अवगुंठन भी प्रिय को रिझाने में असमर्थ रहे । ''प्रकृति महादेवी के लिए श्रृंगार की वस्तु है, प्रियतम की ओर संकेत करने वाली सहचरी है, उसकी आत्मा की छाया है, ब्रह्म की छाया है, उसके जीवन का अपरिहार्य अंश है ।''[234] प्रिया के श्रृंगार के क्षणों में जो चातक और कोकिल प्रसन्न हो कलरव कर रहे थे, मौलश्री और हरसिंगार पुलकायमान हो रहे थे; वे भी उसे हताश देख कर शांत और स्तब्ध हो जाते है –

''मैं आज चुपा आई चातक,
मैं आज सुला आई कोकिल,
कंटकित मौलश्री हरसिंगार,
रोके हैं अपने श्वास शिथिल !''[233]

प्रियतम की प्रतिबिंबरूपा, प्रिय की संदेश-वाहिका और प्रिय-मिलन हेतु श्रृंगार करने में सहायक होने वाली प्रकृति कभी-कभी कवयित्री का अपना प्रतिबिंब बन जाती है । प्रकृति और कवयित्री में एक ऐसा तादात्म्य स्थापित हो जाता है कि दोनों अभिन्न हो जाती हैं । निम्नोद्‌धृत गीत इसका उत्कृष्ट उदाहरण है । जीवन में अनुराग-विराग, सुहाग-स्वप्न,

आशा-निराशा, हंसी और आँसू घुले-मिले हैं । श्वास के साथ स्मृतियाँ, जीवन के साथ मृत्यु और दिवस के साथ रात्रि जुड़ी है । इस सत्य को कवयित्री ने सांध्यकालीन विविधवर्णी गगन के माध्यम से अत्यंत कुशलता के साथ प्रस्तुत किया है । अस्ताचलगामी सूर्य की प्रभा आकाश में व्याप्त है - कहीं अरूण, कहीं सुनहली, कहीं पीतवर्णी ।साँझका धुँधलका क्षितिज में फैला हुआ है । रात्रि का अंधकार धीरे-धीरे बढ़ता चला आ रहा है । शीतल-सुगंध लिए वायु मंद गति से बह रही है । उत्तर दिशा में ध्रुव नक्षत्र दिखने लगा, फिर क्रमशः अन्य नक्षत्र भी चमकने लगे । विहग-गण अपने अपने नीड़ों की ओर चल पड़े । धीरे-धीरे सम्पूर्ण वातावरण अंधकार में लीन हो गया । इस प्रकृति-चित्र में कवयित्री के जीवन का रंग है -

> ''प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन ।
>   यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
> नव अरूण-अरूण मेरा सुहाग,
> छाया सी काया वीतराग,
>   सुधि भीने स्वप्न रँगीले घन !
> साधों का आज सुनहलापन,
> घिरता विषाद का तिमिर सघन,
> संध्या का नभ से मूक मिलन
>   यह अश्रुमती हँसती चित्तवन ।''[236]

अधोलिखित गीत में भी कवयित्री ने स्वयं को, अपनी भावनाओं को और अपने सुख-दुःख, जागृति-स्वप्न तथा श्वास-पुलक को

प्राकृतिक उपादान मान लिया है । वह स्वयं मधुमास है, उसका मधुर विषाद रात्रि है, प्रिय की सुधि चन्द्रमा और उससे उत्पन्न पुलक चाँदनी है, आँसुओं का प्रवाह कालिंदी है, स्वप्न, देखती नेत्र तारिकाएँ तारावली है, सुख के राग पिक की पंचम तान है और निश्वास मलय-पवन है-

मैं बनी मधुमास आली !
आज मधुर विषाद की घिर करूण आई यामिनी;
बरस सुधि के इंदु से छिटकी पुलक की चाँदनी;
उमड़ आई री दृगों में
सजनि कालिंदी निराली ।
रजत-स्वप्नों में उदित अपलक विरल तारावली;
जाग सुख-पिक ने अचानक मदिर पंचम तान ली;
बह चली निश्वास की मृदु
वात मलय-निकुंज-पाली !"[237]

इसी प्रकार "विरह का जलजात जीवन", "मैं नीर भरी दुःख की बदली", "प्राण रमा पतझार सजनि अब नैन बसी बरसात री ।"[238] रात-सी नीरव व्यथा तप-सी अगम मेरी कहानी"[239] आदि पंक्तियों में कवयित्री ने प्रकृति के जिन उपादानों से तादात्म्य किया है वे बड़े ही सटीक और ध्वन्यात्मक हैं । विरह-युक्त जीवन जलजात की भाँति है । जिसके चारों ओर जल ही जल है । बदली में नीर भरा होता है; कवयित्री का जीवन भी अश्रुपूरित है । पतझर में वृक्ष-पल्लव-विहीन हो जाते हैं, प्रिय-वियोग में व्यथित प्रिय के प्राण भी संवेदन शून्य हो

गये है; बरसात में निरंतर वर्षा की झड़ी लगी रहती है, प्रिया के नयन भी निरंतर अश्रुपात करते रहते हैं । रात्रि में व्याप्त नीरवता - जैसी कवयित्री की व्यथा भी मूक है । अंधकार के दुर्बोध आवरण की भांति ही उसकी कथा भी गहन-गंभीर है । यथा -

''फूलों का गीला सौरभ पी
बेसुध सा हो मन्द समीर,
भेद रहे हों नैश तिमिर को
मेधों के बूँदों के तीर;''[240]

समग्र छायावादी काव्य में प्रकृति की प्रधानता है । इसका प्रमुख कारण यही हो सकता है कि कोमल और कल्पनाशील कवियों के हृदय को मानव-लोक-व्यवहार संतुष्ट नहीं कर सकता । उनकी आंतरिक प्रवृत्ति और मानसिक स्थिति को समझने के लिए जिस सहानुभूति-पूर्ण आचरण की आवश्यकता थी वह उन्हें नहीं मिला । छायावादी कवियों ने अपनी व्यथा-कथा सुनाने के लिए प्रकृति को ही चुना । वैदिक-काल से लेकर संस्कृत - साहित्य के पूर्वार्ध तक जो प्रकृति परम मनोहर व्यक्तित्व की स्वामिनी, चैतन्य और संवेदनशील रही, उसका छायावादियों ने पुनः प्रतिष्ठित किया ।

वैदिक ऋषियोंने 'अरण्यानी' और 'उषा' को चेतन व्यक्ति और सौन्दर्य का परिधान प्रदान कर उनको ममतामयी माँ का गौरव दिया, आदि कविने प्रकृति के लघुतम रूप में संवेदना का अनुभव किया, वही प्रकृति फिर से मानव-सुलभ स्पंदन, संवेदन और सौन्दर्य से विभूषित

हुई । प्रकृति के मानवीकरण की प्राचीन प्रवृत्ति को ही महादेवी ने भी ग्रहण किया । उनके प्रकृतिचित्रण की यह अन्यतम विशेषता है ।

मधुरिमा के अवतार, सुषमा से छविमान किन्तु अत्यंत निच्छल पुष्प के भोलेपन पर प्यार उमड़ता है । वर्षा रानी के लहराते सुरभित केश-पाश में हृदय अटक जाता हैं । विभावरी के अनुपम श्रृंगार और अभिनव संगीत मन को आकर्षित कर जाते हैं, और हठीले मुखर पिक के बोल वातावरण में हलचल मचा देते हैं ।[241] पुष्प, वर्षा, रात्रि और कोयल को कवयित्री ने सहज मानवीय गुणों से सज्जित किया है । उनके शारीरिक सौन्दर्य, वेश-विन्यास कार्य-व्यापार आदि में जो मोहकता, मादकता, ममता और चंचलता है वह कवयित्री के सूक्ष्म निरीक्षण का परिणाम है ।

मधुरिमामयी वसंत रजनी का अभिसारिका रूप में चित्रण महादेवी की असाधारण कल्पना का उत्कृष्ट उदाहरण है । प्रिय-मिलन की कामना से अभिभूत-प्रिया नख से शिख तक अभिनव श्रृंगार कर, पुलकती, विहंसती, सकुचाती और सिहरती हुई चली आती है । मिलनोत्कंठिता का उल्लास उसकी मादक चितवन, मृदु स्मिति और पुलकों से प्रकट हो जाता है । वसंत-रजनी-विषयक सम्पूर्ण गीत में मानवीकृत प्रकृति के आलंबन-रूप-चित्रण का बेजोड़ निदर्शन है -

धीरे - धीरे उत्तर क्षितिज से
आ वसंत - रजनी ।
तारकमय नव वेणीबंधन

शीश-फूल कर शशिका नूतन

रश्मि वलय सित धन अवगुंठन

मुक्ताहल अभिराम बिछा दे

चित्तवन से अपनी

पुलकती आ वसंत-रजनी ।''[242]

वसंतरजनी में जहाँ मिलन की आशा से हर्ष और उल्लास का स्वर है, मधुमय श्रृंगार एवं मोहक आभूषणों की रूनझुन है और अनुराग की रागिनी, मुखर है, वहीं 'पंकज-कली' में विरह का विषाद परिव्याप्त है । कोमल कली की करूण स्थिति का कारण उसका निच्छल प्रेम है । उन्मुक्त उर से अपना अस्तित्व खोकर वह विरह ज्वाला में जलती रही उस अवनतमुखी को उजियाली भी भली नहीं लगती क्योंकि वह अपने प्रिय द्वारा ही छली गयी है । प्रेम की पीड़ा उसके हृदय में और आँसुओं में एक मीठी कसक उत्पन्न कर देती है :

''पंकज-कली !

क्या तिमिर कह जाता करूण ?

क्या मधुर दे जाती किरण ?

किस प्रेममय दुख से हृदय में

अश्रु में मिश्री घुली ?''[243]

महादेवी द्वारा अंकित प्रकृति के रमणीय स्वतंत्र चित्र उनकी चित्रमयी कल्पना के प्रत्यायक हैं । प्रकृति पर मानवीय रूप का आरोप करके

कवयित्री ने प्रतिपाद्य विषय को गत्यात्मक और प्रभावशाली बना दिया है । महादेवी के प्रकृति-प्रेम में विशिष्टता और नवीनता है । प्रकृति के स्थूल सौन्दर्य में सूक्ष्म संवेदनों को स्थापित करके उन्होंने अपने सौन्दर्यमय आंतरिक सत्य का साक्षात्कार कराया है ।

प्रकृति महादेवी के काव्य की संजीवन-शक्ति है । ब्रह्म के विराट् और भव्य अंकन से लेकर मानव-मन के लधुतम भाव प्रकाशन तक सर्वत्र प्रकृति की रमणीय भूमिका दृष्टिगत होती है । संवेदनशील कवयित्री की कुशल लेखनी-तूलिका से चित्रित होकर प्रकृति के विविध रूप-रंग जगमगा उठे हैं ।

7. राष्ट्र-प्रेम :

द्विवेदीयुग एवं छायावाद आज़ादी और आंदोलनों का युग रहा हैं । तत्युगीन साहित्यमें आज़ादी की बौछार दिखाई देती थी । छायावाद कवि भी इस वातावरण से विरक्त कैसे रह सकते थे ? इस युग के कवियोंने समान, मानव एवं राष्ट्र-प्रेम को अपने काव्य का विषय-वस्तु बनाया ।

महादेवी की प्रेम-भावना एक अलौकिक प्रिय के रूप में ही नहीं रही है बल्कि स्वेदशानुरागी प्रेम भी एक रूप रहा है । वे अपने बचपन के प्रारम्भ में ही अपनी कविताओं में भारत माता की आरती उतारा करती थीं । राष्ट्रीय भावनाओं की व्यंजना उन्होंने 'श्रृंगार मयी अनुरागमयी, भारत-जननी माता' कहकर व्यक्त की है । युग भावना से

परिचालित होकर राष्ट्रीय जीवन में नव चेतना और स्फूर्ति भरने के लिए देश को सचेत करती है –

"चिर सजग आँखे उनीदी आज कैसा व्यक्त वाना
जाग तुमको दूर जाना ।"[244]

देश का स्तवन करती हुई राष्ट्रीय-ममता निम्न शब्दों में व्यंजित करती हैं –

"भारत मेरे विशाल
मुझको कह लेने दो उदार
फिर एक बार, बस एक बार ।"[245]

स्वतंत्रता की पुकार करती भारत-माता के भावों को कवयित्री ने अभिव्यक्ति दी है । भारत का वर्णन करते हुए इस वंदनीय जननी को मुक्ति कैसे दिलायी जाए ? इस पर महादेवी कहती है – हे ! जननी तेरे लिए हर ह्रदय में सम्मान और मुक्ति का सिंहासन सजेगा, रक्त एवं अश्रु का अभिषेक करके मुझे मुक्त कर देंगे । यथा –

"वंदिनी जननी ! तुझे हम मुक्त कर देंगे ।
हर ह्रदय में आज सिंहासन सजेगा,
प्राण शतदल मुक्त पद्मासन बनेगा,
स्वेद कण को पोंछने हीं
श्वास का संचार होगा,
अश्रु-अमृत से तुझे

अभिषिक्त कर देंगे !

तुझे हम मुक्त कर देंगे !"[247]

बंदिनी भारत माता की मुक्ति हेतु कारागार में जाना, बेड़ियाँ को गहने और फाँसी के फँदे को जयमाला समजकर पहनेंगे । तेरी मुक्ति के लिए मरण भी प्यारा है । हमने अपनी साँसों में स्वर्ग के स्वप्न सजाये है, जो अब हमे पुरे करने है -

"हमने कारागार बसाया !

बेड़ी हथकड़ियों के गहने,

हमने अब हँस-हँस कर पहने,

काली फाँसी की डोर को

हमने तो जयमाला बनाया !

हमने कारागार बसाया !

मुक्ति मरण से कब हारी है ?

मृत्यु कहाँ इससे भारी है ?

साँसों में हमने अपनी अब

स्वप्न उत्तारे स्वर्ग सजाया !

हमने कारागार बसाया ?"[247]

भारत की आज़ादी के लिए मस्तक देने को भी हम तैयार है । मुक्ति का स्वप्न तब ही साकार हो सकता है जब हमारे रक्त में ज्वाला उत्पन्न हो -

"मस्तक देकर आज खरीदेंगे
हम ज्वाला !
जब ज्वाला से प्राण तपेंगे,
तभी मुक्ति के स्वप्न ढलेंगे,
उसको छू कर मृत साँसें भी
होगी चिनगारी की माला !"[248]

जो वीर अपनी बलि दे कर भी भारत को बचाना जानते है, उसके मस्तिष्क महाकाली का हार बनकर शोभित होते है । उनके रक्त रूपी गंगा से इस देश को स्वतंत्रता नशीब हुई है । यथा –

"कंठ में जहाँ थी मणि–मुक्ता–रूद्राक्ष हार
शोभित उसी में नर मुंडों की माला है !
वरदानी कर में, जो मंगल घट पूर्ण रहा
उसमें अब रक्त भरा खप्पर का प्याला है !
चित्तवन में जहाँ कभी गंगा की धाराथी
आज उन्हीं आँखों में भस्मकरी ज्वाला है !
जन्म दिया जिनको अब उनके हित काल बनी
आदिशक्ति काली ! अब कौन रखवाला है ?[249]

क्रांतिकारियों ने अपना जीवन पुष्प मातृभूमि पर समर्पित किया है । अपने ही जीवन का चंदन लगाया अब शरीर में उठने वाली ज्वाला को विश्राम मिला है । मृत्यु ही तीर्थ–धाम हो गया है, यही जीवन का सर्वश्रेष्ठ पर्व है । सहीदों की आँखें मुंद गयी तब उन आँखों में मातृभूमि

का ही प्रतिबिंब रह गया है और ओठों पर भारत-माता का नाम अंकित है ।

''फूल सा चढ़ाया मातृभूमि चरणों पर
धूप सी जलाई फिर, साँस निष्काम है !
चंदन लगाया फिर अपने ही जीवन का
यातना भी इनको उरब मन का विश्राम है !
मरण ही तीर्थ हुआ प्राणदान पर्व हुआ
जय का संकल्प जप इनका अभिराम है !
बंद हुई आँखों में तेरा प्रतिबिंब रहा
ओठ निष्पंदों में अंकित तव नाम है !''[250]

महादेवी भारत-जननी की विजयी पताका लहराती हुई कहती है - शीर पर हिम मुकुट है जो गगन को छू रहा है, रजत किरणों के विभिन्न रंग उसका छत्र बना है और शीतल चांदनी का स्नेह रस बरस रहा है:

''भारत जननि ! तेरी विजय है !
गगन छू रहा हिम मुकुट शुभ्र सुंदर,
रजत स्वर्ण किरणों रही हो निछावर
विविध रंग नभ के बने छत्र तेरा
अनिल चांदनी का
व्यंजन स्नेहमय है !''[251]

इसके साथ ही नदियों को 'नीलम-मोती' कहती है, जिसकी माला बना कर भारत-माता ने पहनी है -

''अजुराग मयी वरदान मयी
भारत जननी भारत माता !
मस्तक पर शोभित शतदल - सा
यह हिमगिरि है शोभा पाता,
नीलम-मोती की माला सा
गंगा-यमुना जल लहरता''[252]

भारत के विभिन्न गुणों - वात्सल्य, श्रृंगार, तप, सिद्धि, आसक्ति, वैराग्य, शक्ति आदि का भी परिचय दिया गया है -

''वात्सल्यमयी तू स्नेहमयी
x x x
सौंदर्यमयी श्रृंगारमयी
x x x
तू तपोमयी तू सिद्धिमयी
x x x
आसक्तिमयी वैराग्यमयी
x x x
तू शक्तिमयी तू प्राणमयी
भारत जननी भारत माता !''[253]

आज़ादी मिलने के पश्चात महादेवी भारत के तीरंगे को सलाम करती है, इस पर उन्होंने 'ध्वज-गीत' लिखा । वह तीरंगे के रंगों की आभा प्रकट करती है । इसी ध्वज के सामने नतमस्तक होने पर ही हमारा शीर उन्नत रह सकता है । यथा -

फहराता है आज तिरंगा !
व्यक्त सुनहरली आभा में,
अंतः सलिला है,
इसके हरित रंग ही में
यमुना सजला है,
श्वेत रंग में इसके पावन
लहराती है गंगा !
फहराता है आज तिरंगा !
श्वेताभा में सत्य अहिंसा
एक संग है,
हरिताभा में व्यक्त
भावना की उमंग है
पला कर्म योग का इसमें
है सन्यास निसंगा !
फहराता है आज तिरंगा !
इसमें है पहचान हमारी
इसमें ज्ञान हमारा,
इसके वंदन में झुक कर
ही उन्नत भाल हमारा;''[254]

अतः महादेवी में जो राष्ट्र-प्रेम था, वह उनके काव्यों के जरिए भावकों के सामने आया है । आज़ादी पूर्व एवं पश्चात की अनुभूतियाँ के महादेवी ने भलीभाँति चित्रित किया है । भारत माता के प्रति क्रांतिकारियों के भाव एवं उनकी शहिदी को वह भूली नहीं है । उनके बलीदान से, उन वीरों के रक्त से सिंचि हुई आज़ादी को वह बनाये रखने की आशा व्यक्त करती है ।

9. मानवतावादी भावना :

छायावादी कवियों ने राष्ट्र एवं मानव को अपना काव्य-वस्तु बनाया । मानवता में ही इश्वर समाया हुआ है । समाज में रहने वाले मनुष्य के सुख-दुःख, करूणा, पीड़ा आदि को इन कवियों ने उजागर करने का प्रयत्न किया है ।

महादेवी के काव्य ज्यादातया नीजि अनुभूति के ही रहे है । मानवतावादी दृष्टि भी उनके नीजि विचार एवं अनुभूति से ही उभरी है । मानवता के संबंध में काव्य वही मिलते है जहाँ कवयित्री का 'स्व' विकास पाया गया है । यथा –

''मेरे हँसते हुए अधर नहीं
जग की आँसू की लड़ियाँ देखो''[255]

और

''सब आँखों के आँसू उजले सबकी आँखों में सत्य पला ।''[256]

यहाँ संकेत और उसका महत्त्व व्यक्ति और पद का नहीं, उसमें निहित जीव तत्त्व का है जिस पर चोट पड़ने से अंतरात्मा दुःखी होती है ।

महादेवी के अनुसार ''परोपकार की भावना मानवता का प्रथम कर्तव्य है ।''[257] यह सर्वांगीण विकास मनुष्य के जीवन की दुःख –दैन्य रहित गरिमा, शीवता और सौंदर्य बोध ही व्यक्ति के विकास का लक्ष्य है ।''[258] ''मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए महादेवी अमानवीय मूल्यों से सतत संघर्षशील रही है ।''[259]''त्याग, परोपकार, सहनशीलता, शीवता और सौन्दर्य बोध मानवता के अंग है ।''[260]

महादेवी को कवि हृदय के साथ-साथ नारी हृदय भी मिला है । इस नारी हृदय के प्रेम ने अपने तक ही सीमित न रहकर समस्त मानवता को अपने स्नेह-रज्जु में आबद्ध कर लिया है । उनके काव्य में सर्वत्र सहानुभूति, वेदना और संवेदना की भावनाएँ भरी पड़ी हैं । दुःख की भावना ने ही उसके लिए संसार को एकता के सूत्र में बद्ध कर दिया है ।[261] वे प्रिय को किसी एकान्त निभृत स्थान में नहीं खोजती । जन जन की पीड़ा में ही प्रिय को पाना चाहती हैं ।

> ''तुम मानस में बस जाओ छिप दुख के अव गुंठन से
> मैं तुम्हें ढूँढ़ने के मिस परिचित होलू कण-कण से''[262]

उनके हृदय की सहानुभूति तृषित अधरों, जर्जर जीवन, मुरझाई पलकों और दुःख के छीटें पीते हुए मानव जीवन के प्रति व्यक्त हुई है ।

"देखूँ खिलती कलिया या प्यासे सूखे अधरों को
तेरी चिर यौवन सुषमा या जर्जर जीवन देखूँ ।"[263]

वे अपनी चिन्ता न करती हुई संस्कृति की आँसू की लड़ियों की ओर विशेष चिंतित और सजग हैं । अत: महादेवी के काव्यों में मानवतावादी भावना भी दृष्टव्य है ।

महादेवी अपने नीजि दु:ख को मानवता में देखती है । वह व्यक्तिगत सीमाओं में बंधी नही रहना चाहती; वह तो समष्टि के दु:खों को उजागर करके बाँटना चाहती है । अत: महादेवी ने सिर्फ, अलौकिक प्रिय की ही व्यंजना नहीं की है, बल्कि मानवतावादी दृष्टिकोण भी रखा है, जो साहित्यकार की मूलवृत्ति रही है ।

❁ निष्कर्ष :

संक्षेप में कहा जाये तो महादेवी अपने युग की एक वीरल कवयित्री रही है, जिनकी कविताओं में अज्ञात प्रिय से लेकर मानवीय संवेदनाओं को छूने की ताकत विद्यमान है । सुमित्रानंदन पंत भी कहते है - "महादेवीजी ही छायावादियों में एक मात्र वह चिरन्तन भाव यौवना कवयित्री है जिन्होंने नये युग के परिप्रेक्ष्य में राग-तत्त्व के गूढ़ संवेदना तथा रागमूल्य को अधिक मर्मस्पर्शी, गम्भीर, अन्तर्मुखी, तीव्र-संवेदनात्मक अभिव्यक्ति दी है ।"[264]

महादेवी के काव्यगत जीवन के विषय में यह स्पष्ट रूप में कहा जा सकता है कि उन्होंने जिन काव्यों की रचना की, वे सभी उनके अंतर

की सूक्ष्म-अनुभूति के उद्‌गार हैं । इसीलिए उनमें आत्मा की छटपटाहट व जिज्ञासा की बेचैनी है । अभाव की टीस में, सफलता के बोध में, निराशा-कुंठा में मानवीय व्यापारों की कथा है । करूणा के विगलित होने में, सहानुभूति की साझेदारी में, उल्लास और स्पन्दन सभी में पीड़ा व्याप्त है । काव्य कला की उत्कृष्टता से वे बेजोड़ कलाकार हैं । उनमें सच्चे कलाकार की दृष्टि है । उनकी तीव्र संवेदनशीलता, घनीभूत अनुभूति एवं कुशल कलात्मकता, सबल-सशक्त अभिव्यक्ति अद्वितीय है । उनका व्यक्तितत्व और काव्य अपने आप में अप्रतिम है, अनुपम है । उन्होंने काव्य को एक पवित्र आत्मिक अनुष्ठान माना है, जिसका प्रतिपादन सशक्त एवं उदात्त भाषा के माध्यम से किया है । लौकिक, अलौकिक सभी की पूर्ण अनुभूति प्राप्त करने के पश्चात् वे कह उठती हैं -

"अलि, मैं कण-कण को जान चली
सबका क्रन्दन पहचान चली !

x x x

मैं सुख से चंचल दुःख - बोझिल
क्षण-क्षण का जीवन जान चली !
मिटने को कर निर्माण चली !"[265]

🕮 संदर्भ ग्रंथ सूचि :

1. 'संधिनी', महादेवी वर्मा, पृ.7
2. 'हिन्दी काव्य में श्रृंगार परंपरा और महाकवि बिहारी', डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, पृ.55
3. 'नीहार' महादेवी वर्मा, पृ.74
4. वही, पृ.9
5. वही, पृ.16
6. 'छायायाद का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन' डॉ. कुमार विमल, पृ.107
7. 'दीपशिखा' (चिंतन के क्षण), महादेवी वर्मा, पृ.30
8. 'नीरजा वक्तव्य', रामकृष्णदास, पृ.166
9. 'यामा', महादेवी वर्मा, पृ.22
10. वही, पृ.26
11. 'नीरजा', वही, पृ.38
12. 'यामा', वही, पृ.128
13. 'महादेवी की कविता में सौन्दर्य भावना', डॉ. सी. तुलसम्मा, पृ.153
14. 'रश्मि', महादेवी वर्मा, पृ.58
15. 'महादेवी की रचना प्रक्रिया', कृष्णदत्ता पालीवाल, पृ.102-103
16. 'नीरजा', महादेवी वर्मा, पृ.8
17. वही, पृ.101
18. 'यामा', वही, पृ.148
19. 'नीरजा', वही, पृ.27
20. 'यामा' महादेवी वर्मा, पृ.103
21. 'नीरजा', वही, पृ.95
22. वही, पृ.34

23. 'महादेवी की रचना प्रक्रिया', कृष्णदत्त पालीवाल, पृ.99
24. 'यामा', महादेवी वर्मा, पृ.17
25. 'नीहार' वही, पृ.21
26. 'महादेवी अभिनंदन ग्रंथ', सुश्री शांति अग्रवाल, पृ.270
27. 'महादेवी विचार और व्यक्तित्व', शिवचंद्र नागर पृ.95
28. 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध', महादेवी वर्मा, पृ.96
29. 'यामा', वही, पृ.74
30. 'दीपशिखा', वही, पृ.29
31. वही, पृ.29
32. 'यामा', वही, पृ.73
33. वही, पृ.81
34. वही, पृ.76
35. 'नीहार', वही, पृ.9
36. 'यामा', वही, पृ.107
37. वही, पृ.2
38. 'नीहार', वही, पृ.78
39. 'यामा', वही, पृ.166
40. 'नीहार', वही, पृ.77
41. 'यामा', वही, पृ.136
42. वही, पृ.46
43. वही, पृ.44
44. वही, पृ.54
45. वही, पृ.142
46. वही, पृ.183

47. वही, पृ.233

48. वही, पृ.147

49. वही, पृ.227

50. वही, पृ.219

51. 'दीपशिखा', वही, पृ.116-117

52 'महादेवी साहित्य समग्र-1' ('यामा'-भूमिका), सं. निर्मला जैन, पृ.585

53. 'आजकल' पत्रिका, रामदरश मिश्र, मार्च-2007, पृ.10

54. 'नीहार', महादेवी वर्मा, पृ.75

55. वही, पृ.76

56. वही, पृ.76

57. वही, पृ.76

58. वही, पृ.15

59. वही, पृ.40

60. वही, पृ.40

61. वही, पृ.41

62. 'आजकल' पत्रिका, महादेवी से मजीद अहमद की बातचीत के दौरान, मार्च-2007 वही, पृ.55

63. 'नीहार', महादेवी वर्मा पृ.11

64. 'रश्मि', वही, पृ.25

65. 'दीपशिखा', वही, पृ.81

66. 'रश्मि' (अपनी बात) महादेवी वर्मा, पृ.5-6

67. वही, पृ.5

68. 'रश्मि', महादेवी वर्मा, पृ.20

69. वही, पृ.23

70. 'महादेवी साहित्य समग्र-1' ('प्रथम आयाम'), सं. निर्मला जैन, पृ.461

71. 'महादेवी साहित्य समग्र-1' ('सप्तपर्णा'), सं. निर्मला जैन, पृ.533
72. वही, पृ.18
73. वही, पृ.19
74. वही, पृ.19
75. 'नीहार', वही, पृ.22
76. वही, पृ.23
77. 'रश्मि', वही, पृ.49
78. वही, पृ.47
79. 'महादेवी साहित्य समग्र-1 ('नीरजा'), सं. निर्मला जैन, पृ.219
80. वही, पृ.229
81. वही, ('सांध्यगीत'), पृ.256
82. वही, पृ.264
83. 'दीपशिखा', महादेवी वर्मा, पृ.73-74
84. वही, पृ.96
85. 'आजकल' पत्रिका, महादेवी वर्मा से मजीद अहमद की बातचीत, मार्च, 2007. पृ.55
86. 'महादेवी साहित्य-1' ('सांध्यगीत') सं.निर्मला जैन, पृ.269
87. 'नीहार', महादेवी वर्मा, पृ.12
88. 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध', वही, पृ.41
89. वही, पृ.85
90. 'छन्दिोग्योपनिषद्', 3.14.1, पृ.282
91. 'श्वेताश्वतरोपनिषद्', 6.11, पृ.229
92. 'दीपशिखा', महादेवी वर्मा, पृ.104
93. 'यामा', वही, पृ.59
94. वही, पृ.10

95. वही, पृ.76
96. 'दीपशिखा', वही, पृ.113
97. 'यामा', वही, पृ.105
98. वही, पृ.116
99. वही, पृ.243
100. वही, पृ.131
101. वही, पृ.109
102. वही, पृ.196
103. 'ऋग्वेद', 10.55.5, पृ.456
104. 'यामा', महादेवी वर्मा, पृ.76
105. वही, पृ.199
106. 'छान्दोग्योपनिषद्', 3,14,1,6,8,7 पृ.324, 'बृहदारण्यकोपनिषद्', 4.4.5.पृ.1041
107. 'श्वेताश्वतरोपनिषद्', 1,2,4,6,5,7,12 और उन पर शांकर-भाष्य, पृ.338
108. 'यामा' महादेवी वर्मा, पृ.92
109. 'अथर्ववेद', 10, 2, 31, 32, पृ.239
110. 'ऋग्वेद', 10, 128, 8, पृ.740
111. 'यामा', महादेवी वर्मा पृ.92
112. वही, पृ.91
113. वही, पृ.96
114. वही, पृ.195
115. वही, पृ.103
116. वही, पृ.96
117. वही, पृ.103
118. वही, पृ.147

119. वही, पृ.143

120. वही, पृ.163

121. वही, पृ.148

122. वही, पृ.17

123. 'प्रश्नोपनिषद्', 1, 16, पृ.453

124. 'श्वेताश्वतरोपनिषद्', 4,10, पृ.356

125. 'यामा' महादेवी वर्मा, पृ.42

126. वही, पृ.42

127. वही, पृ.46

128. वही, पृ.64

129. वही, पृ.43

130. 'ऋग्वेद', 10, 129, 2, पृ.740

131. 'यामा', महादेवी वर्मा, पृ.108

132. वही, पृ.73

133. 'छान्दोयोपनिषद्', 6, 2, पृ.566

134. 'यामा', महादेवी वर्मा, पृ.109

135. वही, पृ.108

136. वही, पृ.200

137. वही, पृ.108

138. वही, पृ.109

139. वही, पृ.6

140. वही, पृ.6

141. वही, पृ.6

142. वही, पृ.3

143. वही, पृ.99

144. 'दिपशिखा' वही, पृ.94-95

145. वही, पृ.69

146. 'यामा', वही, पृ.157

147. 'मुण्डकोपनिषद्', - 3,1,3, पृ.265

148. 'दिपशिखा', महादेवी वर्मा, पृ.137

149. 'यामा', वही, पृ.131

150. वही, पृ.7

151. 'दीपशिखा', वही, पृ.136

152. 'यामा', वही, पृ.245

153. वही, पृ.185

154. वही, पृ.147

155. वही, पृ.214

156. गीता, 2, 22, पृ.48

157. 'यामा' महादेवी वर्मा, पृ.120

158. वही, पृ.214

159. 'दीपशिखा', वही, पृ.95

160. वही, पृ.77

161. 'यामा', वही, पृ.118-119

162. दशरूपक, 4.4, पृ.104

163. 'संधिनी' महादेवी वर्मा, पृ.7

164. 'दीपशिखा', (चिंतन के कुछ क्षण) वही, पृ.30

165. 'यामा', वही, पृ.94

166. वही, पृ.183

167. वही, पृ.225

168. वही, पृ.217

169. वही, पृ.72

170. वही, पृ.10

171. 'नीहार', वही, पृ.9

172. 'यामा', वही, पृ.40

173. 'दीपशिखा', वही, पृ.138

174. 'निहार', वही, पृ.17

175. 'यामा', वही, पृ.36

176. वही, पृ.24

177. वही, पृ.65

178. वही, पृ.136

179. वही, पृ.111-112

180. वही, पृ.94

181. वही, पृ.1

182. वही, पृ.238

183. वही, पृ.167

184. वही, पृ.3

185. वही, पृ.26

186. 'दीपशिखा', वही, पृ.107

187. 'यामा' वही, पृ.53

188. वही, पृ.73

189. वही, पृ.18

190. 'रश्मि', वही, पृ.52

191. 'यामा' वही, पृ.196

192. वही, पृ.98

193. वही, पृ.135

194. वही, पृ.197
195. वही, पृ.71
196. वही, पृ.128
197. 'दीपशिखा' वही, पृ.112
198. 'नीहार', पृ.50
199. 'यामा', वही, पृ.137
200. 'दीपशिखा', वही, पृ.111
201. 'यामा', वही, पृ.261
202. 'दीपशिखा', वही, पृ.70
203. वही, पृ.106
204. 'यामा', वही, पृ.44
205. वही, पृ.49
206. 'नीहार', वही, पृ.29
207. वही, पृ.37
208. वही, पृ.12
209. वही, पृ.29
210. 'दीपशिखा', वही, पृ.129
211. 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध', महादेवी वर्मा पृ.76
212. 'निलाम्बरा', वही, पृ.6
213. 'यामा', वही, पृ.7
214. 'महादेवी साहित्य - 1' (प्रथम आयाम), सं. निर्मला जैन, पृ.428, 429, 430
215. वही, पृ.441
216. वही, पृ.441
217. वही, पृ.442
218. वही, पृ.44

219. वही, पृ.443

220. वही, पृ.443

221. 'नीलाम्बरा', महादेवी वर्मा, पृ.8

222. 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध', वही, पृ.82

223. वही, पृ.76

224. 'दीपशिखा' महादेवी वर्मा, पृ.104

225. 'यामा', वही, पृ.71

226. वही, पृ.94

227. वही, पृ.259

228. 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध', महादेवी वर्मा, पृ.81

229. 'यामा', वही, पृ.153

230. वही, पृ.216

231. वही, पृ.183

232. वही, पृ.217

233. 'भाषा-सेतु' अप्रैल-जून 2006(55) संपादक : डॉ. अंबाशंकर नागर, पृ.4

234. 'महादेवी' सं. इन्द्रनाथ मदान (लं. 'महादेवी और प्रकृति', पदमसिंह शर्मा 'कमलेश', पृ.183

235. 'यामा', महादेवी वर्मा, पृ.216

236. वही, पृ.209

237. वही, पृ.162

238. वही, पृ.142, 233, 235

239. 'दीपशिखा', वही, पृ.129

240. 'रश्मि', वही, पृ.31

241. 'यामा', वही, पृ.62, 144, 173, 151

242. वही, पृ.134

243. वही, पृ.225

244. वही, पृ.234

245. वही, पृ.33

246. 'महादेवी साहित्य समग्र-1', (प्रथम अध्याय), सं.निर्मला जैन, पृ.451

247. वही, पृ.452

248. वही, पृ.453

249. वही, पृ.456

250. वही, पृ.457

251. वही, पृ.450

252. वही, पृ.454

253. वही, पृ.454,455

254. वही, पृ.468

255. 'यामा' महादेवी वर्मा, पृ.50

256. 'दीपशिखा', वही, पृ.27

257. 'स्मृति की रेखाएँ', वही, पृ.30

258. वही, पृ.59

259. 'छायावादी कवियों का सांस्कृतिक दृष्टिकोण', प्रमोद सिन्हा, पृ.21

260. वही, पृ.22

261. 'यामा', महादेवी वर्मा, पृ.11

262. वही, पृ.77

263. वही, पृ.77

264. 'छायावाद पुनर्मूल्यांकन' श्री सुमित्रानंदन पंत, पृ.85

265. 'यामा' महादेवी वर्मा, पृ.153

षष्ठम अध्याय

षष्ठम अध्याय
''महादेवी के काव्य में शिल्प-विधान''

❁ **प्रस्तावना :**

1. **भाषा :**

1.1 शब्द चयन

1.2 तत्सम् शब्द

1.3 तद्भव शब्द

1.4 देशज शब्द

1.5 विदेशी शब्द

1.6 मुहावरें - लोकोक्ति

1.7 शब्द-शक्ति

1.7.1 अभिधा

1.7.2 लक्षणा :

(1.7.2.1) रूढ़ा लक्षणा, (1.7.2.2) प्रयोजनवती लक्षणा

1.7.3 व्यंजना :

(1.7.3.1) शाब्दी व्यंजना, (1.7.3.1) आर्थी व्यंजना

2. **शैली :**

2.1 गीतात्मकता

2.2 प्रतीक-योजना : (2.2.1) दीपक (2.2.2) यात्री (2.2.3) झंझा, (2.2.4) दर्पण

2.3 बिम्ब - विधान

2.4 आलंकारिकता :

2.4.1 शब्दालंकार :

(2.4.1.1) अनुप्रास, (2.4.1.2) यमक,

(2.4.1.3) पुनरूक्ति प्रकाश, (2.4.1.4) नवीन प्रयोग

2.4.2 अर्थालंकार :

(2.4.2.1) उपमा (2.4.2.2) रूपक (2.4.2.3) उत्प्रेक्ष

(2.4.2.4) सांगरूपक अलंकार (2.4.2.5) समासोक्ति

(2.4.2.6) विरोधाभास, (2.4.2.7) व्यतिरेक

(2.4.2.8) मानवीकरण (2.4.2.9) वीप्सा

(2.4.2.10) विशेषण विपर्यय (2.4.2.11) दीपक

(2.4.2.12) निदर्शना

2.5 छंद-विधान :

2.5.1 मात्रिक छंद :

(2.5.1.1) सखी, (2.4.1.2) रूपमाला (2.4.1.3) पीयूषवर्ष

(2.4.1.4) श्रृंगार (2.4.1.5) चौपाई (2.4.1.6) पद्धरि

(2.4.1.7) राधिका

2.5.2 वर्णिक छंद :

2.6 वक्रोक्ति :

☸ **निष्कर्ष :**

षष्ठम अध्याय
''महादेवी के काव्य में शिल्प-विधान''

❁ प्रस्तावना :

अनुभूति की अभिव्यक्ति भी एक कला है । अभिव्यंजन कौशल से अनुभूति की रमणीयता तथा संप्रेषणीयता समृद्ध होती है । काव्य तथा अन्य कलाओं में इनकी अनिवार्य स्थिति से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों अभिन्न हैं । प्रातिभ कवि अपने वर्ण्य अथवा कथ्य को इस कुशलता से व्यक्त करता है कि सहन बाोधगम्य हो जाता है । कवि अपनी मानसी-सृष्टि को किसी न किसी रूपाकार के माध्यम से व्यक्त जगत् में प्रस्तुत करता है । वह बाह्य रूपाकार ही 'शिल्प' कहलाता है । भावसंपन्न कवि अपनी अमूर्त भावनाओं का मूर्त-विधान करने के लिए कुछ उपकरणों का आश्रय लेता है । जो उसकी अभिव्यंजना को सौन्दर्य प्रदान कहते हैं । वे ही काव्य-शिल्प के स्वरूप विधायक तत्त्व हैं ।

ऐसी ही सामर्थ्यवान 'कवियित्रि' है महादेवी । उनका भावलोक जितना जागरूक है भाषा उतनी ही जगमगाती है । अनुभूतियाँ जितनी गम्भीर और मधुर है 'प्रतीक' उतने ही रसात्मक हैं । कल्पनाएँ जितनी रंगीन और उदात है, अप्रस्तुत विधान (अलंकार प्रयोग) उतना ही प्रौढ प्राणवान है । चिंतन जितना रागात्मक है 'छन्द' उतने ही संगीतात्मक है । जैसे 'रजत-श्याम तारों की जाती' जैसे कमनीय झिलमिलाते, राग रंजित उपादानों से महादेवी के काव्य का भावपक्ष अस्तित्व में आया है,

उसी प्रकार की रेशमी भाषा, जगमग अलंकार, चमचमाते प्रतीक और झनझनाते छन्द उसके कलापक्ष की शोभा हैं ।

1. भाषा :

मानवीय भावों - विचारों की अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम सशक्त साधन है भाषा । उसकी महत्ता का प्रतिपादन करते हुए महादेवी कहती है : "वाणी मनुष्य का सबसे मौलिक और चमत्कारी आविष्कार है ।"[1] मनुष्य की सृजनात्मक प्रवृतियों के विकास से उसकी भाषा भी अविच्छिन्न संबंध में जुड़ी है । मानव को मनोविकार और मूलवृतियाँ तो प्रकृति से प्राप्त हुई हैं, परंतु उन्हें व्यक्त करने का साधन भाषा स्वयं उसका सृजन है । आदिम जीवन से आज तक उसकी जो सृजनात्मक उपलब्धियाँ हैं, उनकी दीर्घ सूची में भाषा महत्वपूर्ण आविष्कार और सबसे स्थायी सामाजिक कर्म है ।"[2]

महादेवी की भाषा उनके भावों की अभिव्यंजक है । छायावादी भाषा का सम्पूर्ण सौन्दर्य महादेवी के काव्य में दृष्टिगत होता है । महादेवी की काव्य-भाषा का विवेचन निम्नांकितच केन्द्रबिन्दुओं से करना उपादेय होगा : शब्द चयन, तत्सम् शब्द, तद्भव शब्द, देशज शब्द, विदेशी शब्द, मुहावरें - लोकोक्ति, शब्द - शक्ति ।

1.1 शब्द - चयन :

काव्य-भाषा में 'शब्द-चयन' अत्यंत महत्वपूर्ण है । प्रातिभ कवि अपने व्यापक शब्द-भंडार से, अपनी युगीन प्रवृतियों और साहित्यिक धारा के अनुरूप प्रचलित शब्दों को चुनकर उनका प्रयोग करता है ।

छंद का आग्रह, ध्वनि के प्रभाव एवं लयात्मकता के लिए वह विशिष्ट शब्दों का चयन करता है । सटीक एवं भावानुकूल शब्दों के प्रयोग से अभिव्यक्ति की प्रांजलता बढ़ जाती है । उनकी अर्थ-झंकृति से प्रमाता का अंतर तरंगायमान होता चला जाता है ।

भाव-वैभव के सरल प्रकाशन के लिए औचित्यपूर्ण, अर्थ-व्यंजक एवं सटीक शब्दों का प्रयोग करके महादेवी ने अपने गीतों के चारूत्वमय अर्थाभिव्यक्ति दी है ।

''धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ वसंत - रजनी !''[3]

'रजनी' रात्रि का पर्याय है उसका शाब्दिक अर्थ है शोभाशालिनी । वासंती विशेषण एवं धीरे-धीरे उतरने की क्रिया से युक्त रात के लिए 'रजनी' का प्रयोग सटीक है । 'रजनी' शब्द से ऐसी कोमलांगी प्रिया का बोध होता है जो प्रिय मिलन हेतु सजसँवर कर चली जा रही है ।

''चीर गिरि का कठिन मानस
बह गया जो स्नेह-निर्झर
ले लिया उसको अतिथि कह
जलधि ने जब अंक में भर ।''[4]

'जलधि' एवं 'निर्झर' के संदर्भ में 'मानस' शब्द का प्रयोग अर्थपूर्ण है । कठोर पर्वतों के बीच 'मानसरोवर' है । मानव के अस्थिपंजर के बीच मानस (हृदय) स्थित है । स्नेह का निर्झर मानस से प्रस्फूटित होता है । 'जलधि' शब्द प्रियतम और समुद्र दोनों का द्योतक है । मानस से निकल कर

निर्झर समुद्र में मिल जाता है, हृदय में सरस भावों का प्रादुर्भाव होते ही प्रिय-मिलन की आकांक्षा बलवती हो जाती है और प्रिया का मानस प्रिय में एकचित हो जाता है ।

''मुखर पिक हौले बोल !
हठीले हौले-हौले बोल !''[5]

''हौले' देशज शब्द है और 'धीरे' का पर्यायवाची है । इसका व्यवहार तात्पर्यपरक है । लोकगीत की धुन पर निर्मित इस गीत में देशज शब्द 'हौले' से एक मधुर लय की सृष्टि हुई है । 'हठीले' के साथ प्रयुक्त होने से अनुप्रास की सौन्दर्य वृद्धि हुई है ।

''मैं बनी मधुमास आली ।....
उम़ड आई री दृगों में
संजनि कालिंदी निराली !''[6]

बरसात में नदियों में बाढ़ आ जाना स्वाभाविक है । मधुमास के संदर्भ में 'कालिंदी' का सटीक प्रयोग उत्कर्षविधायक है । काली आँखों में उमड़ते आँसुओं के लिए प्रयुक्त 'कालिंदी' शब्द गीत को गरिमामयी अर्थवता प्रदान करता है ।

''तरल मोती से नयन भरे !
मानस से ले उठे स्नेह-धन,
कसक-विद्यु पुलकों के हिमकण
सुधि स्वामी की छाँट पलक की सीपी में उत्तरे ।''[7]

मानस धन, विद्युत, हिमकण और सीपी के संदर्भ में आँसुओं के लिए 'तरल मोती' का चयन विशेष अर्थ व्यंजक एवं लालित्यपूर्ण है । मानस-जल से निर्मित धन हिमकण के रूप में बिखरता है । स्वाति नक्षत्र का जलबिन्दु सीपियों में प्रवेश पाकर मोती बनकर निकलता है । मानस (हृदय) से उठनेवाले प्रेम-भाव तन-मन को पुलक और कसक से भर देते हैं । प्रियतम की सुधि आते ही अभावजनित वेदना से आँखें भर आती है । अश्रु की तरलता में प्रिय की स्मृति आभासी चमक उठती है, जो मोती का आभास देती है ।

1.2 तत्सम् शब्द :

भाषा की दृष्टि से महादेवी के गीत तत्सम् बहुल है । उन्होंने संस्कृत के अधिकांश शब्दों का अविकल प्रयोग किया है, किन्तु उनकी भाषा की प्रांजलता एवं धारावाहिकता अवरूद्ध नहीं हुई है । नवीन छंद-योजना में भी तत्सम् शब्दों का पूर्ण सहयोग है । सस्मित, व्रीड़ा, ललाम, विक्षिप्त, मंजुल, अवगुंठन, नीरव, क्षीरनिधि, अलक्षित, उन्मीलन, उदभ्रांत, प्रवाल, ज्योत्सना, अकिंचन, अनुरंजित, किसलय, स्वर्णलूता, वलय, वानीर, इन्दीवर, सद्य:स्नात, विहाग, निशीथ, दशन, संसृति, समीरण, कवरी, कुंतल, अवतंस, यामिनी, उन्मन, किंशुक, उन्मद, वर्तिका, तुरंगम्, दुर्मिल, तमिस्रा, वात्याचक्र आदि तत्सम शब्दों का सौन्दर्य महादेवी के भाव सानिध्य से द्विगुणित हो गया है ।

1.3 तद्भव शब्द :

संस्कृत के वे शब्द जो जन सामान्य के प्रयत्नलाधव से सहज और सरल हो गये है, तद्भव कहलाते है । इनके प्रयोग से भाषा में

स्वाभाविक प्रवाह आ जाता है । महादेवी ने तद्‌भव शब्दों का स्वच्छंद प्रयोग करके अर्थ को एक विशेष भंगिमा प्रदान की है । चांदनी, रैन, सुहाग, अलसाई, घूंघट, झाई, पखार, बयार, दुराव, चिन्गारियाँ, दुकेला, सुनहले, रंगीले आदि शब्दों के प्रयोग से काव्य की लयात्मकता की श्री वृद्धि हुई है ।

1.4 देशज शब्द :

जन सामान्य में प्रचलित और उन्हीं द्वारा निर्मित ऐसे शब्द जिनकी व्युत्त्पति अनिश्चित है, वे देशज शब्द कहलाते हैं । लोकगीतों की लय पर आद्युत महादेवी के कुछ गीतों में देशज शब्दों का सटीक प्रयोग हुआ है । बौर, हौले, जोह, अनखाती, पांवडे, रीझूँ, चूनर, पाहुन, ढह आदि शब्दों के प्रयोग से अभिव्यक्ति में चारूत्व आ गया है ।

1.5 विदेशी शब्द :

भारतीयेतर भाषाओं के शब्द विदेशी कहलाते हैं - जैसे अंग्रेजी, अरबी, फरसी आदि । महादेवी के काव्य में अरबी और फारसी के शब्दों का विरल प्रयोग हुआ है । साकी, तूफान, दाग, प्याला, बेहोशी, तस्वीर, नशीली, खुमार, नादान, जंजीर, दीवानी, ताज, अरमान आदि शब्दों को ग्रहण करके महादेवी ने अपने गीतों को स्वाभाविक गति दी है ।

1.6 मुहावरें - लोकोक्ति :

लोक-जीवन की धरती से अंकुरित और पल्लवित पुष्पित होनेवाले उक्ति-वैचित्र्य को मुहावरा और लोकोक्ति कहते है । गागर में सागर

भरने और लक्षणा शक्ति से संपन्न होने के कारण ये काव्य - भाषा को शक्तिशाली बनाते है । भाषा की जीवंतता, प्रभविष्णुता और मार्मिकता के लिए मुहावरों का प्रयोग परंपरा-प्रचलित है । अर्थ-लालित्य की सृष्टि इसका मूल-प्रयोजन हैं ।

छायावादी कवि स्वच्छंद-मार्ग के अनुयायी थे । प्रेम और सौन्दर्यमयी भावानुभूतियों के अनुरूप उन्होंने नूतन अभिव्यंजना पद्धति अपनायी । उसके लिए उन्होंने लाक्षणिक एवं ध्वन्यात्मक भाषा का व्यवहार किया । कल्पना की अतिशयता के बावजूद उनकी काव्य-धारा लोक-जीवन से असंपृक्त नहीं है । उनकी सुसंस्कृत और परिमार्जित भाषा में मुहावरें - लोकोक्तियों की भी सामंजस्यपूर्ण योजना है । महादेवी ने मुहावरों का प्रसंगानुकूल सटीक प्रयोग करके अपनी काव्य-भाषा को शक्तिमती और समृद्ध बनाया है उनके गीतों में मुहावरों का लोक - प्रचलित रूप सुरक्षित है । कुछ उदाहरण अवेक्षणीय है :

(१) ''जिनके पथ में बिछे वही
क्यों भरता इन आँखों में धूल ?''[8]

(२) ''मिल जावें उस पार क्षितिज के सीमा सीमाहीन,
गर्वीले नक्षत्र धरा पर लोटें होकर दीन ।''[9]

(३) ''लोट रहा है आज धूल में
उन मतवालों का अभिमान !''[10]

(४) ''जब तारे फैला फैला कर
सूने में गिनता आकाश;''[11]

(५) "दु:ख की घूँटें पीती या
ठँढी साँसों को देखूँ ।"[12]

(६) "तरल आँसू की लडियाँ गूँथ
इन्हीं ने काटी कालीरात ।"[13]

(७) "तेरे मिलन-पथ में गिन-गिन पग रखती है रात,"[14]

(८) "नित जलता रहने दो तिल-तिल
अपनी ज्वाला में उर मेरा ।"[15]

'राह में बिछाना', 'आँखों में धूल झोंकना', 'धराशायी होना', 'धूल में मिलना', 'धूल में लोटना', 'तारे गिनना', 'खून के घूँट पीना', 'आँखों में रात काटना', 'गिन गिन कर पाँव रखना', 'तिल-तिल करके जलना' आदि लोक-व्यवहृत मुहावरों के रूढ़ रूप हैं । छंदों की लयात्मकता, भावाभिव्यंजना की गत्यात्मकता और उक्ति की धारावाहिकता को दृष्टि में रखते हुए महादेवी ने कहीं तो उनका अविकल प्रयोग किया है, कहीं अपेक्षानुसार काट-छाँट की है, कहीं शब्दों का क्रम-परिवर्तन किया है और कहीं शब्दविशेष के स्थान पर उसके पर्याय की योजना की है । इस प्रकार उन्होंने कलात्मक अभिव्यक्ति को मार्मिकतर बनाया है ।

1.7 शब्द शक्ति :

शब्द की शक्ति उसके अन्तर्निहित अर्थ को व्यक्त करने का व्यापार है । अर्थ का बोध कराने में 'शब्द' कारण है और अर्थ का बोध करानेवाले व्यापार अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना है । एक शब्द अनेकार्थी

होता है । शब्द के निश्चित एवं अभिप्रेत अर्थ की प्रतिति के लिए काव्याचार्यों ने 'शब्द-शक्ति' का निरूपण किया । शब्द-शक्तियों के द्वारा शब्द और अर्थ का संबंध निर्धारित, नियंत्रित एवं परिचालित होता है ।

1.7.1 अभिधा :

साक्षात मुख्य अर्थ का बोध करानेवाली शब्द-शक्ति है अभिधा । यह प्रधान शब्द-शक्ति है । इसी का आश्रय लेकर लक्षणा और व्यंजना का अर्थ-आयाम विस्तुत और वैविध्यपूर्ण होता है ।

अभिधा में शब्द और अर्थ के मध्य कोई बाधा नहीं होती । फलतः इसमें शब्दों का अर्थ रूढ़ हो जाता है । लोक-व्यवहार, व्याकरण, कोश आदि में अभिधा शक्ति की ही मान्यता है, किन्तु काव्य की स्थिति भिन्न है । सूक्ष्म भावों-विचारों की प्रभावशाली अभिव्यक्ति एवं रमणीय अर्थ-भंगिमा से युक्त होने के कारण छायावादी - काव्य में अभिधा का व्यवहार अपेक्षाकृत कम हुआ है । महादेवी के काव्य में अभिधा शक्ति की गौणता का एक और कारण है : उनका नारी सुलभ संकोच । प्रच्छन्न और सूक्ष्म भावों का प्रकाशन प्रायः लक्षणा और व्यंजना के द्वारा ही हुआ है, कहीं-कहीं अभिधा का नियोजन भी मनोहर बिंब-विधान में समर्थ है, जैसे -

''घोर तम छाया चारों ओर
घटायें घिर आई घन घोर;
वेग मारूत का है प्रतिकूल
हिले जाते हैं पर्वतमूल

गरजता सागर बारंबार,

कौन पहुँचा देगा उसपार !''[16]

1.7.2 लक्षणा :

मुख्यार्थ की बाधा होने पर रूढ़ि अथवा प्रयोजन द्वारा जिस शक्ति से मुख्यार्थ-संबंधित अन्य अर्थ प्रतीति हो उसे 'लक्षणा' कहते है । अभिधेयार्थ से भिन्न अर्थ का बोध कराते हुए भी लक्ष्यार्थ उससे असंपृक्त नहीं होगा । रूढ़ि और प्रयोजन पर आधृत अर्थ व्यंजना के कारण लक्षणा के दो भेद हो जाते है : रूढ़ा लक्षणा और प्रयोजनवती लक्षणा ।

1.7.2.1 रूढ़ा लक्षणा :

'रूढ़ि' के कारण मुख्यार्थ को छोड़कर अन्य अर्थ का बोध करानेवाली शब्द-शक्ति रूढ़ा लक्षणा कहलाती है । इसका चमत्कारिक प्रयोग मुहावरों में अधिक होता है । महादेवी ने भावाभिव्यक्ति को विशिष्ट अर्थच्छवि से मंडित करने के लिए रूढ़ा लक्षणा का अनेकशः प्रयोग किया है ।

''पानी करते रहते जिसके

मोती के उपहार;''[17]

पानी कर देना : लक्ष्यार्थ है निष्फल या व्यर्थ कर देना । यह लाक्षणिक उक्ति बहुमूल्य प्रयत्नों के कुंठित हो जाने पर हताश हृदय की करूण स्थिति की मार्मिक व्यंजना करती है ।

1.7.2.2 प्रयोजनवती लक्षणा :

प्रयोजनवती लक्षणा वह है जिसमें किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिए लक्षणा की जाए । उसमें व्यंजना का भी विनियोग नियमतः होता है क्योंकि प्रयोजन की प्रतीति व्यंग्य रूप में ही होती है । महादेवी के काव्य में प्रयोजनवती लक्षणा के सार्थक प्रयोग हुए हैं । जैसे -

''मैंने दुर्बल प्राणों की
वह आज सुलादी कंपन ।''[18]

कंपन सुलायी नहीं जाती, अतएव मुख्यार्थ बाधित है । वस्तुतः वेदनाओं से उद्वेलित हृदय निराशा की स्थिति में आवेग- विहीन हो गया है । प्राणों के कंपन को सुला देने का तात्पर्य है अत्यंत हताश होकर स्तब्ध रह जाना ।

1.7.3 व्यंजना :

व्यंजना शक्ति शब्द के मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ को पीछे छोड़ती हुई उसके मूल में छिपे हुए अकथित अर्थ को द्योतित करती है । जब अभिधा और लक्षणा कवि के अभीष्ट अर्थ की प्रतीति कराने में असमर्थ रहती है । तब, जिस शब्द शक्ति द्वारा व्यंग्यार्थ ज्ञात होता है उसे व्यंजना शक्ति कहते है । व्यंजना के दो प्रधान भेद किये गये है - शाब्दी व्यंजना और आर्थी व्यंजना ।

1.7.3.1 **शाब्दी व्यंजना :**

जहाँ व्यंग्यार्थ का बोध मुख्य रूप से शब्द पर आश्रित होता है वहाॅ शाब्दी व्यंजना होती है । जैसे –

''तारक में छवि प्राणों में स्मृति,
पलकों में नीरव पद की गति, ''[19]

अनेकार्थक 'तारक' शब्द 'तारा' और 'पुतली' दोनों का वाचक है, अतः प्रस्तुत संदर्भ में 'पलको' के सानिध्य से व्यंजना द्वारा उसका दूसरा अर्थ ही गृहित है । पुतली मे प्रिय की छवि है, प्राणों में उसकी स्मृति है ओर पलकों में उसकी नीरव पद की गति है जिससे पलकें निरंतर गिरती–उठती जागती रहती हैं । व्यंग्यार्थ है विरह वेदना में नींद भी समीप नहीं आती ।

1.7.3.2 **आर्थी व्यंजना :**

आर्थी व्यंजना में व्यंग्यार्थ किसी शब्द पर आश्रित न होकर उसके अर्थ द्वारा ध्वनित होता है । महादेवी की भाषा अर्थ–लालित्य से पूर्ण हैं । आर्थी व्यंजना के विभिन्न रूपों की निबंधता उसके काव्य में हुई है ।

''काले रजनी अंचल में
लिपटी लहरें सोती थीं,
मधु मानस की बरसाती
वारिदमाला रोती थीं;''[20]

रात्रि के सघन अंधकार में लहरें एकदम शांत थीं, किन्तु बरसात निरंतर हो रही थी । यहाँ प्रकृति के एक सामान्य दृश्य का वर्णन हुआ है : किन्तु वक्तव्य की विशेषता के कारण, वाच्यवैशिष्ट- योत्पन्न व्यंजना के द्वारा जिस अर्थ की प्रतीति होती है वह है; निराशा-युक्त हृदय में भावलहरियाँ तो शांत हो गयी है परन्तु अभाव एवं अतृप्ति के कारण अश्रु निरंतर प्रवाहमान है ।

अतः महादेवी की काव्य-भाषा सशक्त एवं समृद्ध रही है । जिससे वे अपने भावों को योग्य रूप में पाठकों के सामने प्रस्तुत कर सकी है ।

2. शैली :

अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए संवेदनशील कलाकार किसी विशिष्ट पद्धति को अपनाता है । उसकी वह विशिष्ट पद्धति ही कलात्मक शैली कहलाती है । गीत की प्रभविष्णुता एवं स्थापित्य के लिए विषयानुकूल शैली भी अपेक्षित होती है । कोमल, मधुर भावनाओं की विवृत्ति के लिए सुकुमारता और ओजस्वी भावों की व्यंजना में दीप्तिमता अपेक्षित है । गीतकार की शैली जितनी कलात्मक होगी उसका गीत उतना ही उत्कृष्ट होगा ।

महादेवी के गीतों में भावों की गहराई है, किन्तु उसकी शैली में कलात्मक प्रवाह है । भाषा की तरलता, मंजुलता और कोमलता से अभिव्यक्ति में लालित्य का उत्कर्ष है । प्रस्तुत उदाहरणों में प्रयुक्त शब्द नृत्य की झंकृति से युक्त है -

''लय गीत मदिर गति ताल अमर
अप्सरि तेरा नर्तन सुंदर ।''[21]

x x x

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ वसंत - रजनी ।
मर्मर की सुमधुर नूपुर ध्वनि
अलि-गुंजित पद्मों की किंकिणि ।
भर पद - गति में अलस - तरंगिणि
तरल रजत की धार बहा दे
मृदुस्मिति से सजनी,
बिहँसती आ वसंत-रजनी !''[22]

महादेवी ने अपने सीमित भावों को विभिन्न कलात्मक शैलियों में अभिव्यंजना दी है । शैली के सौन्दर्य-विधायक तत्वों - गीतात्मकता, प्रतीकयोजना, बिम्ब-विधान, आलंकारिकता, छंद-विधान, वक्रोक्ति आदि का उनके काव्य में विस्तृत निरूपण हुआ है । यह कथन अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा कि महादेवी की कलात्मक और सुष्ठु शैली में वर्ण, शब्द, पद और छंद उनके भावों के अनुवर्ती बन गये हैं ।

2.1 गीतात्मकता :

प्रगीत में तरंगायित अंतर का प्रकाशन होने से उसमें स्वभावतः संगीतात्मकता होती है । भावानुकूल एवं नाद-गुण संपन्न शब्द - संयोजन के कारण प्रगति का आंतरिक संगीत सहृदय के राग-तंतुओं

को झंकृत कर देता है । गीति-काव्य प्रधान गुण गेयता अथवा संगीतात्मकता के लिए राग-रागनियों की अनिवार्यता नहीं है । उसके लिए तो छंद और लय की आवश्यकता है । अनुभूति की तीव्रता उपयुक्त शब्द-योजना में ढ़ल कर प्राकृतिक संगीत की सृष्टि करती है । महादेवी के गीतों में शब्द-संगीत के साथ जो लय और प्रवाह है वह उनके कोमल-मधुर भावों के अभिव्यंजक हैं :

''कहाँ से आये बादल काले ?
..... कजरारे मतवाले ?''[23]

x x x

मुखर पिक हौले बोल !
हठीले हौले-हौले बोल ।''[24]

उपर्युक्त गीतों में वर्णो की कलात्मक योजना से शब्द संगीत का और लोग-गीतों की लयात्मक शैली से स्वर-संगीत का मधुर समन्वय हुआ है । अपने गीतों में महादेवी कहती हैं: ''मेरे गीत अध्यात्म के अमूर्त आकाश के नीचे लोक-गीतों की धरती पर पले हैं ।''[25] ब्रज की सुप्रसिद्ध लोकधुन 'रसिया' का प्रभाव उनके निम्नलिखित गीत में परिलक्ष्य है :

''मैं क्यों पूछूँ यह विरह - निशा
कितनी बीती क्या शेष रही ?''[26]

स्वर के आरोह-अवरोह जहाँ भावाभिव्यंजन में सहायक होते हैं । वहीं वे गीत को लय और प्रवाह प्रदान करते हैं । लय-विधान

के लिए महादेवी ने शास्त्रीय रागों का आश्रय नहीं लिया । भावानुरूप छंदों का प्रयोग करके ही उन्होंने अपने गीतों की गुरूता को बढ़ाया है -

''एक बार आओ इस पथ से
मलय अनिल बन हे चिर चंचल ।''[27]

गीत को प्रभावशाली बनाने में उसकी 'टेक' का बहुत अधिक योगदान होता है । संपूर्ण गीत में संचरित होनेवाली मूल भाव-धारा को द्योतित करने के कारण उसका महत्व और बढ़ जाता है । 'टेक' की आवृति बार-बार होती है; अतः मूल भाव को व्यंजित करने और श्रोता या पाठक को आकर्षिक करने योग्य, उपयुक्त और सटीक 'टेक' का चुनाव आवश्यक हो जाता है ।

महादेवी के गीतों की 'टेक' जितनी श्रुति-मधुर है उतनी ही भावाभिव्यक्ति में समर्थ । इसकी पुष्टि के लिए कतिपय उदाहरण पर्याप्त है :

(1) ''पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन
आज नयन आते क्यों भर-भर ?''[28]

(2) ''कौन तुम मेरे हृदय में ?''[29]

(3) ''मुस्काता संकेत भरा नभ
अलि क्या प्रिय आने वाले है ?''[30]

(4) विरह का जलजात जीवन विरह का जलजाता ।''[31]

(5) ''यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो ।''[32]

उपर्युक्त पहले उद्धरण में, शब्दों की आवृति और लघु मात्रा वाले वर्णों के प्रचुर प्रयोग से हृदय की विह्वलता एवं आकुलता व्यंजित होती है । दूसरे में, प्रियतम की रहस्यमयता से हृदय की स्वाभाविक जिज्ञासा का बोध होता है । तीसरे में, प्रिय के आगमन-सूचक संस्मित आकाश से प्रियतम की भव्यता और प्रभावशालिता की प्रतीति होती है । संभवित प्रिय-मिलन के हर्षोल्लास से समस्त आकाश मंडल प्रसन्न हो उठा है । इस में प्रिय के भावावेग का रमणीय प्रकाशन हुआ है । चौर्थ में विरह-वेदना की प्रबलता से वियोगिनी का जीवन ही विरहमय हो गया है । 'टेक' की आवृति से घनीभूत वेदना व्यक्त होती है । पाँचवे में, नीरव जलने वाला दीप निरंतर साधना, निष्ठा और कर्तव्य परायणता को द्योतित करता है ।

आंतरिक आवेग के अनुकूल शब्द-गुंफन और अक्षरमैत्रि से महादेवी के गीतों में स्वाभाविक लय और प्रवाह है । गीतों की 'टेक' केन्द्रीय भावों को प्रशस्त करने में पूर्णतः सक्षम हैं, भावों का अनुकरण कर सकने योग्य नाद-गुण सम्पन्न वर्णों का कुशल प्रयोग करके उन्होंने अपने गीतों को विलक्षण सौन्दर्य प्रदान किया है ।

2.2 प्रतीक - योजना :

आधुनिक आलोचना में व्यवहृत 'प्रतीक' अंग्रेजी के 'सिंबल' शब्द का हिन्दी रूपांतर है । काव्य-संदर्भ में प्रयुक्त 'प्रतीक' में व्यापकता और सूक्ष्म अर्थवता होती है । वह मात्र सामान्य संकेत अथवा स्थूल अर्थ द्योतित नहीं करता, अपितु अनेकानेक अर्थों को संप्रेषित करने में समर्थ होता है ।

महादेवी वर्मा का प्रतीक दर्शन 'नीहार' के मोहक युग से लेकर 'दीपशिखा' के स्वप्नों से पुलकित युग का स्थिर चित्त से हुआ है । कोई भी प्राकृतिक उपकरण उनकी पैनी दृष्टि से नहीं बच पाया है । परिणामतः प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण उनके काव्यों में प्राप्त होता है । महादेवी के प्रतीक अधिकांशतः रूढ़ है । उनके प्रतीकों का परिचय दृष्टव्य है :

2.2.1 दीपक :

महादेवीजी ने अपने काव्यों में दीपक का प्रतीक रूप में अत्यधिक प्रयोग किया है । यह उनका प्रिय प्रतीक है । यह काव्य में शाश्वत चेतना, मानवात्मा, जीवन एवं प्रेम का प्रतीक बनकर आता है । दीपक के सतत प्रकाश में आध्यात्मिक चेतना का स्वर्ण पिघल-पिघलकर उनकी भावना का उदातीकरण करता है, जिस दीपक के जलने के माध्यम से वे जीवन की वेदना व्यंजित करती है उसी के सहारे वे निरंतर जलकर प्रियतम की प्रतीक्षा भी करना चाहती है । जीवन-दीपक को जलाकर वे आलोक फैलाना चाहती है । इस प्रतीक के माध्यम से उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व दृष्टि-गोचर होता है । मंदिर में रात के एकान्त में निरंतर जलनेवाले दीप से आत्मा की उज्ज्वलता, एकनिष्टता, आकुंठित साधनों, पवित्र निर्मलता तथा दिव्यता का बोध होता है । यही कारण है कि उनके काव्य में गहन अवसाद, निराशा, कुण्ठा, मृत्यु, शोक, भयंकर चिंता का राज्य नहीं है । उनके अज्ञानजन्य सांसारिक प्रलोभनों तथा आकर्षणों का मोह नहीं है । दीपक महादेवीजी की जीवन रूपी कविता में शाश्वत् चेतना का प्रतीक बनकर अभिव्यक्त हुआ है ।

कवयित्री ने विभिन्न अर्थों में इसका प्रयोग किया है जो देखने योग्य है -

''झंझा है दिग्भ्रान्त रात की मूर्च्छा गहरी,
आज पुजारी बने, ज्योति का यह लघु प्रहरी,
जब तक लौटे दिन की हलचल,
तब तक यह जागेगा प्रतिपल,
रेखाओं में भर आभा-जल,
दूत साँझ का इसे प्रभाती तक चलने दो !
यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो ।''[33]

x x x

''मधुर-मधुर मेरे दीपक जल,
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर ।''[34]

''तू जल-जलकर जितना होता क्षय
वह समीप आता छलना मय,
मधुर मिलन में मिट जाता तू,
उसकी उज्जवल स्मित में घुल-मिल ।''[35]

x x x

''मोम-सा तन घुल चुका,
अब दीप-सा मन जल चुका है ।''[36]

x x x

''दीप मेरे जल अकंपित घुल अचंचल !
सिंधु का उच्छ्वास घन है

तड़ित, तम का विकल मन है
भीति क्या नभ है व्यथा का
आँसुओं से सिक्त अंचल ।''[37]

2.2.2 **यात्री :**

महादेवी की संपूर्ण कविता एक विचित्र स्वप्नलोक की यात्रा है । इसी के परिणाम रूप यात्रा-संबंधी प्रतीकों के प्रति रूचि होना स्वाभाविक है । साधना पथ के पथिक को विघ्न एवं एकाकीपन विचलित करने में असमर्थ साबित होते हैं । उनके इस प्रतीक से साधना की दृढ़ता एवं संकल्प की स्थिरता का बोध होता है । निम्नलिखित उदाहरण दर्शनीय है -

''पंथ होने दो अपरिचित
प्राण रहने दो अकेला ।''[38]

x x x

''मैं न यह पथ जानती री !
धूप हों विद्युत रेखाएँ,
अश्रु हो गल तारिकाएँ
छा भले लें आज अगजग, वेदना घन-घटाएँ !

x x x

''अलि विरह के पंथ में मैं
तो न इति-अथ मानती री !''[39]

x x x

'कर मुझे इंगित बता किसने तुझे यह पथ दिखाया,
तिमिर में अज्ञात देशी क्यों मुझे तू खोज पाया !
अग्नि-पंथी मैं तुझे दूँ, कौन-सा प्रतिदान ।''[40]

x x x

''मैं चिर-पथिक, वेदना का लिए न्यास !
कुछ अश्रु कण पास !
चिर बंधु पथ आप
पग चाय संलाप
दूर क्षितिज की परिधि ही रही नाप
हर पल मुझे छाँह हर साँस आवास !''[41]

2.2.3 **झंझा :**

आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए झंझा का प्रतीक मुख्य रूप में ग्रहण किया गया है, जिसके माध्यम से वे साधना पथ की बाधाओं का बोध कराती है । जैसी कि -

''चाहो तो दृग स्नेह तरल दो,
वर्ती से निश्वास विकल दो,
झंझा, पर हँसने वाले
उर में भर दीपक की झिल मिल दो ।''[42]

x x x

''गर्जन के शंखों से हो के,
आने दो झंझा के झोंके,

खोलो रूद्ध झरोझे,

मंदिर के न रहो द्वार को रोके ?''[43]

x x x

उर का दीपक चिर स्नेह अतल

शुचि-लौ शत झंझा में निश्चल,

शुधि से भीनी दु:ख से गीली

वर्ती सी साँस अशेष रही !''[44]

2.2.4 **दर्पण :**

महादेवीजी ने दर्पण के माध्यम से जीव-माया तथा परम प्रिय की प्रतीकात्मक व्यंजना की है । आध्यात्मिक प्रणयानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने आध्यात्मिक प्रतीक दर्पण का अवलंबन लिया है । इसके लिए उदाहरण दृष्टव्य हैं -

''रहे खेलते आँख-मिचौनी

प्रिय ! जिसके परदे में 'मैं' 'तुम' !

टूट गया वह दर्पण निर्मम ।''[45]

x x x

''तौड़ देता खीझकर जब तक न प्रिय यह मृदुल-दर्पण

देख ले उसके अधर सस्मित, सजल दृग,अलख आनन

आरसी-प्रतिबिंब का कब चिर हुआ जग स्नेह-नाता ।''[46]

इस प्रकार महादेवी वर्मा रहस्यमय प्रतीक, साधनात्मक प्रतीक, प्राकृतिक प्रतीक, ऐतिहासिक प्रतीक, पौराणिक प्रतीक, विरह-व्यथा -

सिक्त प्रतीकों तथा रूप-सौन्दर्य आदि के विभिन्न प्रतीकों को अभिव्यंजित करती हैं । उनके सभी प्रतीकों में उनका अपनापन अभिव्यक्त हुआ है । उनके प्रतीकों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

फूल	-	सुख का प्रतीक
कली	-	सुन्दरी का प्रतीक
पवन	-	प्रेमी का प्रतीक
भ्रमर	-	मुक्त विलास का प्रतीक
सागर	-	संसार चक्र का प्रतीक
बुद् बुद्	-	क्षण का प्रतीक
तरलमोती	-	आँसु का प्रतीक
गोधूली	-	मिलन पर्व का प्रतीक
बिजली	-	तड़प का प्रतीक
लहर	-	भावावेग का प्रतीक
पर्वत	-	विराट् ब्रह्म का प्रतीक
सरिता	-	आत्मा का प्रतीक
पिंजर	-	शरीर का प्रतीक
कीर	-	प्राण का प्रतीक
कण	-	तुच्छता का प्रतीक
धुल	-	निस्सारता का प्रतीक
प्यास	-	आकांक्षा, तीव्र इच्छा का प्रतीक
बदली	-	सजल करूणा, तरल भावना का प्रतीक
धूम	-	अस्पष्टता, उलेझन, अन्यमनस्कता का प्रतीक

शूल या कंटक - दुःख, वेदना, विघ्न-बाधाओं का प्रतीक

तिमिर - यातना, निराशा, कुंठा का प्रतीक

विधुत - कसक, पीड़ा, तीव्रता का प्रतीक आदि ।

इनके अलावा कहीं-कहीं पर वंशी, वीणा को भी प्रतीक रूप में ग्रहण किया है । यहॉ पर वीणा जीव तथा हृदय के रूप में एवं वीणा के तार भावनाओं के रूप में व्यक्त हुए है ।

यथा -

''तुम्हारी बीन ही में बज रहे हैं दूसरे सब तार !
मेरी सॉस में आरोह, उर अवरोह का संचार
प्राणों में रही चिर घूमती चिर मूर्च्छना सुकुमार !''[47]

x x x

''हाथ से लेकर जर्जर बीन
इन्हीं बिखरे तारों का जोड़
लिए कैसे पीड़ा का भार,
देव ! आऊँ अनन्त की ओर ?''[48]

कहीं पर वीणा ब्रह्मांड के प्रतीक रूप में भी आई है -

''तंद्रित निशीथ में ले आये
गायक तुम अपनी बीन,
प्राणों मे भरने स्वर नवीन ।''[49]

महादेवीजी की कविता में अभिलषित आनन्दवादी सौन्दर्यानुभाव का बोध प्रतीकों के माध्यम से हुआ है । सशक्त एवं प्रभावशाली प्रतीकों के चयन से विषय-वस्तु की सटीक व्यंजना हुई है और काव्यों को सौन्दर्य रूप प्राप्त हुआ है । जिसके प्रभाव में पाठक तन्मय हो जाता है । उन्होंने अपने आत्मोन्नयन के लिए प्रतीकों को अपने ढंग से सँजोया है । उनके सभी प्रतीकों का गहन संबंध उनकी आत्मा से है वे अंतर्मन से पूर्ण रूपेण जुड़े हुए हैं ।

2.3 **बिम्ब-विधान :**

'बिंब' काव्य-शिल्प का अनिवार्य अंग है । आधुनिक आलोचना-शास्त्र में बिंब-विधान को कवित्व का महत्वपूर्ण मानदंड स्वीकार किया गया है । 'बिंब' का सामान्य अर्थ है : प्रतिमा, प्रतिच्छाया, प्रतिकृति अथवा प्रतिरूप । 'प्रतिमा' आदि शब्दों से जो अर्थ ध्वनित होते हैं वे वस्तु - विशेष की दृश्यात्मक सत्ता की प्रतीति कराते हैं । 'बिंब' शब्द से व्यापक अर्थ का बोध होता है । उसमें तीव्र इंद्रिय-संवेदन निहित होता है, जिसके कारण काव्य-चेतना तीव्रता के मूल-विषय के साथ तादात्म्य स्थाप्ति कर लेती है ।

संवेदनशील कवयित्री महादेवी के काव्य में जीवन-जगत् के कुछ विशेष पक्षों की व्याख्या न होकर सीमित हैं । उनकी कल्पना उनके आध्यात्मिक आदर्श की सीमा-रेखा में बद्ध होने के कारण विस्तृत उड़ान नहीं भर पाती, फलस्वरूप उनके बिंबों में प्रबल आवेग का अभाव है । नारीसुलभ संकोचवृत्ति, छायावादी सांकेतिक शैली आदि के कारण एक रहस्यमयता व्याप्त है । तथापि संप्रेक्ष्य अर्थ को सम्पूर्णतः

संवेदना-साकार करने के लिए उन्होंने बड़े ही कलात्मक ढंग से बिंब विधान किया है । कवियत्री बाह्य प्रकृति का चित्रण वर्ण, ध्वनि, गंध, स्पर्श और रस आदि के ऐसे सूक्ष्म ऐन्द्रीय बोध जाग्रत करती हैं कि पाठक का संवेदनापूर्ण हृदय कहीं भी शिथिल नहीं होता । जैसे कि -

''कनक के दिन मोती - सी रात
सुनहली साँझ गुलाबी प्रात ।
मिटाता रंगता बारम्बार,
कौन जग का यह चित्राधार ?''[50]

x x x

''गुलाबों से रवि का पथ लीप,
जला पश्चिम में पहला दीप ।
बिहंसती संध्या भरी सुहाग
दृगों से झरता स्वर्ण पराग ।'[51]

x x x

''विधु की चाँदनी की पाली
मादक मकरंद भरी-सी,
जिसमें उजियारी रातें,
लुटतीं-धुलतीं मिसरी - सी ।''[52]

महादेवीजी ने विराट् की सत्ता को स्वीकारा है, उनकी मान्यता रही है कि उस विराट् आभा से ही आकाश में तारे चमकते हैं, दिन को सूर्य-रश्मियाँ प्रकाशमान करती हैं, चाँदनी फैलती है । प्रकृति का कोना-कोना विराट् के सौन्दर्य से आलोकित होता है, इसके साथ

ही रूप बिंब का वर्णन करते हुए वे रमणीय नारी के चित्र भी अत्यंत सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करती हैं । रंग-रूप का मनोहारी-चित्रण सौन्दर्य-चेतना की कलात्मकता में वृद्धि करता है । यथा -

''रूपसि तेरा धन-कोश-पाश !
श्यामल-श्यामल, कोमल-कोमल,
लहराता सुरक्षित केश-पाश ।''[53]

महादेवी ने प्रकृत्ति के चेतन प्राणी, कोकिल, मोर, विहग और भ्रमर की ध्वनि संवेदनाओं को भी बिंब रूप में ग्रहण किया है -

''पिक की मधु-वंशी बोली,
नाव उठी अलिनी-भोली ।''[54]

x x x

केकरी रव की नूपुर ध्वनि सुन
जगती जगती की मूक प्यास ।''[55]

महादेवीजीने रंगों पर आश्रित बिंबों के लिए अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं । इनसे उनकी रंग संवेदना स्फुरित होती है । उषा, संध्या, पलाश, कुंकुम, मदिरा, किसलय आदि लाल रंग के परिचायक हैं । उसी तरह पीत, हरित, श्याम, सुनहला, श्वेत और स्वर्ण के प्रति भी विशेष रूचि दिखाई देती है । प्रत्येक रंग अपने निकट के रंगों को प्रभावित करता है । वे अनुकूल वर्णों को मिलाकर बिंब को चित्रात्मक बनाने की कला में निपुण हैं । इसी प्रकार वे स्पर्श-सौन्दर्य का भी मनोरम चित्रण प्रस्तुत करती हैं । शीतोष्ण की तापपरक अनुभूति स्पर्श के माध्यम से होती है, जिसका सुन्दर अंकन इस प्रकार किया गया है ।

'शीतल-मन',[56] 'हिम-शीतल-अधर'[57] 'अंगार-शप्या'[58] 'ज्वाला – चन्दन'[59] 'शीतल-चुम्बन'[60] 'ज्वाला का मोती'[61] 'ज्वाला का चुम्बन''[62] इत्यादि ।

कवि की कल्पना से प्रसूत बिंब कविता के सौन्दर्य में श्रीवृद्धि करते हैं । कलाकार की सौन्दर्य साधना के फलस्वरूप बिंबों का आविर्भाव जीवन के अंतराल से स्वमेव ही उदित होता है । तत्पश्चात् कवि कौशल के आधार पर उन्हें मूर्त रूप प्राप्त होता है और वह मूर्त वस्तु सुन्दर एवं आकर्षक होती है । महादेवीजी बिंब योजना की सफल कवयित्री हैं, उन्होंने भावनाओं, सौन्दर्य, माधर्यु, संवेदना, करूणा, सरलता, जटिलता इत्यादि को सहज रूप में अभिव्यक्ति दी हैं उनकी भाषा बिंबों में मोती के समान चमकती है । महादेवीजी की भाषा चित्र भाषा होने के कारण उनमें शब्द-चित्रों के माध्यम से शब्द बिंबों की भरमार है । बिंबों की रेखाएँ कहीं सूक्ष्म, कही तरल, कहीं विराट, कहीं कोमल, कहीं मधुर हैं । कवयित्री की बिंबशाला एक आधुनिक पैटर्न की रंगमयी चित्रशाला है, जिसमें मूर्त-अमूर्त कला के चित्र सहज़ परिवर्तन की प्रक्रिया में व्यस्त हैं । इस प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप पाठक उबता नहीं बल्कि आनंद की अनुभूति करता है ।

2.4 **आलंकारिकता :**

'अलम्' और 'कार' शब्दों के योग से 'अलंकार' बना है । 'अलम्' का अर्थ है भूषण – जो अलंकृत या भूषित करे वह अंकार है । अलंकार काव्य के बाह्य शोभाकारक धर्म हैं । अलंकार द्वारा वाणी को

विभूषित करके जीव अपनी अभिव्यक्ति को प्रांजल भावों को प्रभविष्णु और सम्प्रेषणीय तथा भाषा के लालित्यमयी बनाता है । काव्य की रमणीयता, प्रेषणीयता, स्पष्टता और चमत्कार - उद्रेक के लिए अलंकार आवश्यक है । उनका औचित्य साधन बनने में है, साध्य बनने में नहीं । शब्द और अर्थ दोनों के माध्यम से उत्कर्ष-वर्धन करने के कारण अलंकार के दो प्रकार हैं: शब्दालंकार और अर्थालंकार । जहाँ शब्द और अर्थ दोनों में चमत्कृति होती है वहाँ उभयालंकार होता है ।

महादेवी के काव्य में अलंकारों का सुचारू-प्रयोग मिलता है । शब्दालंकार और अर्थालंकार के सहज विन्यास से उनके काव्य की श्रीवृद्धि हुई है । उनका संक्षिप्त विवेचन अपेक्षित है ।

2.4.1 **शब्दालंकार :**

शब्दालंकार की सृष्टि ध्वनि के आधार पर होती है । ये वर्ण पर निर्भर करते हैं । काव्य में नाद का महत्व निर्विवाद है । रससिद्ध कवियों ने नाद-सौन्दर्य के लिए शब्दालंकार की योजना की है । अनुप्रास, यमक, श्लेष, विप्सा और पुनरूक्ति प्रकाश अलंकारों का सुन्दर नियोजन महादेवी के काव्य में भी हुआ है ।

2.4.1.1 **अनुप्रास :**

व्यंजन के साम्य अथवा वर्णो की आवृत्ति को अनुप्रास कहते हैं । महादेवी के काव्य में विभिन्न स्थलों पर अकृत्रिम अनुप्रास की छटा दृष्टिगत होती है । भाव के अनुकूल वर्ण-योजना करके कवयित्री ने

वर्ण्य-विषय को हृदय, संवादी बनाया है :

"चल चितवन के दूत सुना
उनके, पल में रहस्य की बात ।"[63]

x x x

"घोर घन की अवगुंठन डाल
करूण-सा क्या गाती है रात ?"[64]

'चल-चितवन' और 'घोर घन' में 'च' एवं 'घ' की आवृत्ति से एक निश्चित नाद-सौन्दर्य के साथ छेकानुप्रास की छटा उभरती है । 'चल चितवन' से जहाँ चंचलता का आभास होता है वहीं 'घोर घन' से अतिशय गंभीरता का ।

2.4.1.2 यमक :

वर्णसमूह की आवृत्ति जहाँ नाद-सौन्दर्य के साथ भिन्न अर्थ बोध से युक्त होती है, वहाँ यमक अलंकार होता है । वर्ण समूह के आधार पर यमक की तीन कोटियाँ है - उत्तर, मध्यम और अवर ।

महादेवी की काव्य रचनाओं में उतर-यमक की प्रस्तुति नहीं है । मध्यम यमक में एक इकाई सार्थक और दूसरी निरर्थक होती है, यथा -

"चल अंचल से झर-झर झरते
पथ में जुगन् के स्वर्ण-फूल;"[65]

'चल' और 'अंचल' का 'चल' एक रूप है इस उद्धरण में सभंग यमक का चमत्कार है; क्योंकि 'अंचल' को भंग करके 'चल' की आवृत्ति मानी गयी है । एक वर्ण-समूह सार्थक और दूसरा निरर्थक होने से मध्यम कोटि के यमक का सौन्दर्य लक्षित होता है ।

अभंग और सार्थक वर्गसमूहवाला कोटि का यमक निम्नलिखित पंक्तियों में द्दष्टव्य है :

''केकी रव की नूपुर - ध्वनि सुन
जगती जगती की मूक प्यास ।''[66]

जगती की आवृत्ति अभंग है । प्रथम का अर्थ है । 'जागती है' और द्वितीय का अर्थ है 'धरती' । इसके प्रयोग से नाद सौन्दर्य के साथ अर्थ-लालित्य का भी उत्कर्ष हुआ है ।

2.4.1.3 **पुनरूक्ति प्रकाश :**

भाव-व्यंजना को प्रभावशाली एवं प्रेषणीय बनाने के लिए एक ही शब्द की पुनरूक्ति जब उसी अर्थ में होती है तब पुनरूक्ति प्रकाश होता है ।

महादेवी के कोमल-मधुर भाव इस अलंकार प्रयोग से प्राजंल हो गये है :

''पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन,
आज नयन आते क्यों भर भर ।''[67]

'पुलक', 'सिहर' एवं 'भर' की समानार्थक आवृत्ति से कवयित्री के कोमल प्रणय-भाव मुखर हो गये है । प्रिय की मादक स्मृति से तन-मन रोमांचित हो उठा है । सात्त्विक अनुभवों के प्रकाशन से अभिव्यकित में चारूत्व आ गया है ।

2.4.1.4 **नवीन प्रयोग :**

ध्वन्यर्थ व्यंजना, मानवीकरण तथा विशेषण महादेवीजी के प्रिय अलंकार है । नदी, झरनों आदि के प्रवाह की, पतों के हिलने की तथा पक्षियों की ध्वनि के अनुकरणमूलक शब्दों का प्रयोग करके ध्वन्यर्थ व्यंजना अलंकार की सुन्दर सृष्टि की है -

''अस्फुट मर्मर में, अपनी गति की कलकल उलझाकर
मेरे अनंत पथ में नित संगीत बिछाते निर्झर ।''[68]

उपर्युक्त उद्धरण में मर्मर, कलकल जैसे शब्दों की ध्वनि मात्र से सहृदय के समक्ष पत्ते, निर्झर-नदी का स्वरूप साकार हो जाता है । ध्वनि और अर्थ को एक साथ व्यंजित करनेवाले इस अलंकार का शब्द-संगीत हृदय को आह्लादित कर देता है ।

इसी प्रकार विशेषण-विपर्यय अलंकार से अभिव्यक्ति में चमत्कार के साथ एक विशेष अर्थवता आ जाती है :

''साथ लेकर मुरझाई साध
बिखर जाएँगे प्यासे प्राण ।''[69]

यहाँ 'मुरझाई' साध का और 'प्यासे' प्राण का विशेषण है । वस्तुतः ये विशेषता व्यक्ति में होती है । न साध मुरझाती है, न प्राण

प्यासे रहते हैं । यहाँ पर विशेषण का विपर्यय अर्थात् स्थान परिवर्तन करके अभिव्यकित में चमत्कार उत्पन्न किया गया है ।

महादेवी ने विशेषण-विपर्यय का साभिप्राय प्रयोग किया है । उनकी करूण स्थिति एवं निराशाच्छन्न भावों का उद्‌घाटन करने में इस अलंकार का पर्याप्त योगदान है ।

2.4.2 **अर्थालंकार :**

अर्थ को चमत्कृत अथवा अलंकृत करनेवाले अलंकार अर्थालंकार कहलाते हैं । अर्थालंकार में अभिव्यक्ति के लिए अनंत विस्तार रहता है । भावावेग के समय कवि-कल्पना चैतन्य हो जाती है और उसकी भाव-व्यंजना स्वतः अलंकृत होने लगती है ।

महादेवी के काव्य में अर्थालंकारों की समस्त विशेषताएँ विद्यमान हैं । उनकी प्रस्तुत-योजना का प्रमुख आधार प्रभाव- साम्य है किन्तु सादृश्य और साधर्म्य पर आधारित अप्रस्तुतों की विरलता नहीं है । कुछ महत्वपूर्ण अर्थालंकारों का विवेचन महादेवी के गीतों की लालित्य-योजना के संदर्भ में अपेक्षित हैं ।

2.4.2.1 **उपमा :**

दो भिन्न पदार्थों में साधर्म्य का निरूपण उपमा है । महादेवी ने भी सादृश्य के आधार पर ललित उपमानों का विधान करके भावाभिव्यंजना को उत्कृष्ट अर्थ-विस्तार दिया है -

''सित दृग हुए क्षीर लहरी से
तारे मरकत नील तरी से
सूखे पुलिनों सी वरूणी से फेनिल फूल झरे ।''[70]

भावातिशयता की स्थिति को, मूर्त प्रस्तुत-अप्रस्तुत के द्वारा व्यक्त किया गया हैं । निरंतर अश्रु-प्लावन से वियोगिनी के नेत्र 'सित' हो गये हैं । उसमें नीली पुतलियाँ डूबती-उतराती रहती हैं । सूनी बरौनियों से आँसु टपकते रहते हैं । इस मार्मिक दशा का उद्‌घाटन करने के लिए महादेवी के क्षीर-लहरी, मरकत-नीलतरी, सूखे पुलिन और 'फनिल फूल' का उपमान सादृश्य के आधार पर प्रस्तुत किया है ।

2.4.2.2 **रूपक :**

प्रस्तुत पर अप्रस्तुत का अभेद आरोपण 'रूपक' है । महादेवी ने नवीन, सुबोध एवं प्रांजल उपमेय उपमानों का अभेद स्थापित करके अपने अभिव्यंजना-कौशल का सुन्दर निदर्शन किया है :

''किस सुधि - वसंत का सुमन - तीर
कर गया मुग्ध मानस अधीर !
वेदना-गगन से रजत ओस,

चू-चू भरती मन-कंज-कोष,
अलि-सी मँडराती विरह - पीर ।''[71]

सुधि पर वसंत का आरोप जहाँ प्रिय के सानिध्य की मधुर मादक स्मृतियों का बोध कराता है वहीं तीर और सुमन के अभेद से प्रिय स्मृतियों से झरते ओसकणों से कमल-कोष भर जाता है; वेदना जनित अश्रु से विरहिणी का हृदयकोष भरता रहता है । वेदना पर गगन का,

आँसुओं पर रजत ओस का एवं मन पर कंज का आरोप विरह-व्यथा की अतिशयता को द्योतित करता है । वेदना गगन-सी अथाह है । मन कंज-सा कोमल और लघु है । इस रूपक से अभिव्यक्ति की प्रभावशालिता बढ़ गयी है ।

2.4.2.3 **उत्प्रेक्षा :**

प्रस्तुत में अप्रस्तुत की संभावना अत्प्रेक्षा कहलाती है । इसमें स्वच्छंद कल्पना के लिए अनंत अवकाश होने के कारण कवियों का यह प्रिय अलंकार है । महादेवी ने व्यंग्य-रूप में इसकी सुन्दर निबंधनी की है । प्राकृतिक उपकरणों को मानवीय क्रियाओं से युक्त दर्शा कर उन्होंने चित्ताकर्षक उत्प्रेक्षाएँ की हैं ।

''हिम-स्नात कलियों पर जलाये
जुगनुओं ने दीप से,
ले मधु-पराग समीर ने
वन-पथ दिये हैं लीप से,
गाती कमल के कक्ष में
मधु - गीत मतवाली अलिनि ।''[72]

रात्रि में ओस-भीगी कलियों पर चमकते जुगनू, वायु संचरण से बिखरें पराग-कण और कमल-संपुट में बैठी वातावरण को गुंजरित करती अलिनी पर दीप जलाने, पथ लीपने और फिर कक्ष में बैठकर स्वागत-गान करने जैसे मानवीय धर्मो की संभावना करके अभिव्यक्ति को विशेष चारूत्वमय बना दिया है ।

2.4.2.4 **सांगरूपक अलंकार :**

सांध्य वर्णन करते हुए कवयित्री कल्पनागत सौन्दर्य के साथ प्रकृति का लयात्मक चित्रण करती है -

''गोधूलि अब दीप जला ले !
नीलम की निस्सीम पटी पर
तारों के बिखरे सित अक्षर,
तम आता है पाती में,
प्रिय का आमंत्रण स्नेह लगा ले !''[73]

x x x

''इनके हीरक से तारों को
कर चूर बनाया प्याला
पीड़ा का सार मिलाकर
प्राणों का आसव ढाला ।''[74]

2.4.2.5 **समासोक्ति :**

सांकेतिक काव्य वस्तु की अभिव्यंजना में समासोक्ति अधिक उपयोगी अलंकार है । यहाँ प्रस्तुत के वर्णन में अप्रस्तुत को आभासित किया जाता है । कवयित्री के प्रकृति-चित्रों में समासोक्ति का विशेष सौन्दर्य है -

''निशा की धो देता राकेश,
चाँदनी में जब अलकें खोल,

कली से कहता था मधुमास,
बता दो मधु-मदिरा का मोल ।''[75]

2.4.2.6 **विरोधाभास :**

प्रेम वैचित्र्य के निरूपण में सहायक अलंकार होने के कारण इसका प्रयोग महादेवीजी ने बड़ी चातुरी से किया है । इसके प्रभाव से कविता में चमत्कार पूर्ण सौन्दर्य की वृद्धि होती है तथा कवयित्री की तीक्ष्ण अंतरभेदी दृष्टि का एवं प्रखर कल्पना का पता चलता है । यथा -

''व्यथा-प्राण हूँ नित्य सुख का पता मैं,
धुला ज्वाल से मोम का देवता मैं,
सृजन श्वास को क्यों गिनूँ नाश के क्षण !''[76]

इसमें साधिका की अचंचल आस्था तथा अटूट विश्वास की ओर इशारा करने के लिए कवयित्री विरोधाभास की योजना करती है । सामान्यतः व्यथा और सुख दोनों परस्पर विरोधी तत्त्व है । 'व्यथा प्राण' और 'नित्य सुख का पता है'' कह कर आभास की सृष्टि की गई है । साधिका के प्राण व्यथित है, पर वह अमर सुख को पहचानती है । यहाँ साधक की स्थिति की सशक्त व्यंजना विरोधी तत्वों के निर्माण से सुन्दर बन पड़ी है ।

2.4.2.7 **व्यतिरेक :**

प्रस्तुत के उत्कर्ष-वर्णन के लिए व्यतिरेक अलंकार का प्रयोग होता है । महादेवीजी अपने प्रियतम को महान् मानती हैं । इन काव्य

पंक्तियों में स्पष्ट होता है कि उनके प्रियतम की चरणनख-ज्योति हीरकों की द्युति को लज्जित करने लगती है । उन चरणों पर प्रणय की आराधिका अपने अश्रु चढ़ाती है । यहाँ अप्रस्तुत की न्यूनता और प्रस्तुत की उत्कर्षता का परिचय मिलता है, यथा -

जिन चरणों की नख-आभा -
ने हरक-जाल लजाये,
उन पर मैंने धुँधले से
आँसु दो चार चढ़ाये ।''[77]

2.4.2.8 **मानवीकरण :**

मानवीकरण अलंकार छायावाद के कवियोँ का प्रिय अलंकार रहा । महादेवी की कविताओं में मानवीकरण अलंकार का मनोहारी वर्णन प्राप्त होता है । बसंत की मधुरिमामय रात्रि के मानवीकरण का चित्र अवलोकनीय है । इन्होंने रात्रि का चित्र रमणी के रूप में अंकित किया है, यथा -

''धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ वसंत - रजनी !
    तारकमय नव वेणी बन्धन,
    शीश-फूल कर राशि का नूतन
    रश्मि-वलय सित धन-धनअवगुण्ठन

मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी !
पुलकित आ बसंत-रजनी ।"[78]

सुन्दर वस्त्रालंकारों से सुसज्जित सुन्दरी का चित्र कल्पना में अपने आप उभर जाता है, जो मंथर गति से क्षितिज से उतर कर आती हुई प्रतीत होती है ।

इसी प्रकार वर्षाकालीन संध्या का सद्यःस्नाता के रूप में चिताकर्षक मानवीकरण भी दृष्टव्य है, यथा -

"रूपसि तेरा धन-केश-पाश !
श्यामल कोमल कोमल,
लहराता सुरभित केश-पाश !
नभ गंगा की रजत धार में,
जधो आई क्या इन्हें रात ?
कंपित हैं तेरे सजल-अंग,
सिहरा सा तन है सद्यःस्नात !
भीगी अलकों के छोरों से चूती
बूंदे कर विविध लास !
रूपसि तेरा धन-कोश-पाश !"[79]

2.4.2.9 **वीप्सा :**

मन में आकस्मिक रूप से उत्पन्न होनेवाले आश्चर्य, धृणा, आदर आदि भावों की अभिव्यक्ति के लिए सार्थक शब्दों की आवृति जहाँ होती है, वहाँ वीप्सा अलंकार होता है । इसमें अलंकार तीव्रता का प्रकाशन होता है, जैसे कि -

''पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन,
आज नयन आते क्यों भर - भर ?''[80]
''शिथिल-शिथिल तन, पंकित हुए कद,
स्पन्दन भी भूला जाता उर !''[81]

महादेवीजी भावावेग की तीव्रता व्यंजित करने के हेतु अलंकार का प्रयोग करती हैं । उपर्युक्त काव्य पंक्तियों में वह आकस्मिक भाव है, जिसकी अनजाने में अनुभूति होती है । वह असीम प्रियतम है, जिसकी रूप आकृति अविस्मृत है । इन पंक्तियों में तीव्र भावावेग की सशक्त अभिव्यक्ति की गई है तथा पुलक और रोमांच की प्रभावशाली व्यंजना हुई है ।

2.4.2.10 **विशेषण-विपर्यय :**

महादेवी इस अलंकार के माध्यम से उक्ति वक्रता को बढ़ाती है । परिणामतः काव्य में रमणीयता की लहर दौड़ जाती है, काव्य पंक्तियाँ आकर्षण का केन्द्र बन जाती हैं । जैसे -

''हो गया विस्मृत मानव-लोक
हुए जाते है बेसुध-प्राण,
किन्तु तेरा नीरव-संगीत
निरन्तर करता है आह्वान ।''[82]

2.4.2.11 **दीपक :**

एकाधिन क्रियाओं में एक ही कारक के प्रयोग से उत्पन्न चमत्कार दीपक है । अग्रलिखित पंक्तियों में कारक दीपक की चित्रात्मक योजना की गयी है :

''जो नव लज्जा जाती भर
नभ में कलियों में लाली
वह मृदु पुलकों से मेरी
छलकाती जीवन प्याली ।''[83]

जिस लज्जा के आगमन पर कपोल कर्णमूल तक आरक्त हो जाते है, वही लज्जा की लालिमा कलियों और आकाश में व्याप्त हो गयी है : फिर प्रिय के स्मरण होते ही वही लज्जा मृदुल भावों से युक्त हृदय को पुलकित कर देती है ।

2.4.2.12 **निदर्शना :**

दो भिन्न वस्तुओं के परस्पर असंभव संबंध में, सादृश्य के आधार पर, बिंब-प्रतिबिंब भाव की प्रतीति 'निदर्शना' में होती है । महादेवी की संकेतात्मक अभिव्यक्ति में निदर्शना का विलक्षण योगदान है :

"मेरी आँखों में ढलकर
छवि उसकी मोती बन आई,
उसके घन-प्यालों में है
विद्युत-सी मेरी परछाई ।"[84]

प्रिय की छवि प्रिया की आँखों में मोती (आँसु) के रूप में है, और प्रिय के घन-प्यालों (श्याम-आँखों) में प्रिया की परछाई विद्युत-रूप में है । इस प्रकार असंभव अर्थ को साधर्म्य की कल्पना से संभवता प्रदान की गयी है । प्रिय-वियोग में आँखों में सदा आँसु छलकते रहते हैं । प्रिय के स्मरण से छलछलाती आँखों में एक चमक सी आ जाती है । उसी प्रकार बादल भी सदा नीर-भरे होते है । रिमझिमाती बूँदों में रह-रहकर चमक जानेवाली बिजली प्रिया की परछाई का बोध कराती है । इस सुन्दर कल्पना से अभिव्यक्ति मनोहारी हो गयी है ।

महादेवी के काव्य में अधिकांश परंपरागत काव्यालंकारों का प्रयोग हुआ है । संदेह, अपह्नुति, अतिशयोक्ति, विरोधाभास, विशेषोक्ति, असंगति, समासोक्ति आदि अनेकानेक अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग कवयित्री की काव्य-प्रतिभा का द्योतन करते है । कुशल कवयित्री ने पाश्चात्य अलंकारों के नूतन प्रयोगों से भी अभिव्यंजना-शैली को निखारा है । छायावादी प्रवृति के अनुसार प्रकृति से प्रभावित कवयित्री ने प्रकृति को मानवीय संवेदनाओं से युक्त मान कर, उसके आंतरिक और बाह्य सौन्दर्य से प्रेरित होकर, उसका मानवीकरण किया है । संध्या रात्रि आदि के कलात्मक चित्र कवयित्री ने जिस कौशल से अंकित किया है, वह अद्वितीय है । कली और मधुमास, विधु और रजनी, अनिल और

तारिकाओं आदि की आँख-मिचौनी को शब्दबद्ध करके महादेवी ने अपनी अभिव्यंजना को अर्थगौरव से मंडित किया है ।

2.5 **छंद - विधान :**

गद्य से पद्य को पृथक करनेवाला मूल तत्त्व है छंद : इसीलिए काव्य में छंद का महत्वपूर्ण स्थान है । छंद की प्राचीनता और उसके महत्व को प्रतिपादित करती हुई महादेवी कहती है : "हमारे वाङ्मय की छन्द सी सृष्टि की सहस्त्रों वर्षो से कंठ मे संचरण करती हुई भी प्रत्येक ध्वनि और प्रत्येक शब्द को अक्षय रख सकी है ।"[85]

छंद की तीन विशेषाताएँ मानी गयी है - लय, यति और अन्यानुप्रास । भावों को प्रवाहात्मक और संगीतात्मक बनाने के लिये लय और यति की स्थिति अनिवार्य है । छंद-शास्त्र में स्वर तथा व्यंजन के आधार पर दो प्रकार के छंद निर्धारित किये गये हैं - मात्रिक और वर्णिक । महादेवी के काव्य में मात्रिक छंदों का अधिक प्रयोग हुआ है । भावानुकूल शब्द - संयोजन, अंत्यानुप्रास एवं लयगति की स्वाभाविकता से उनेक द्वारा प्रयुक्त छंदों का प्रभाव द्विगुणित हो गया है । गीत की क्षिप्रता एवं संगीतात्मकता के लिए महादेवी ने जिन छंदों का प्रयोग किया है उनकी संक्षिप्त समीक्षा वांछनीय है ।

2.5.1 **मात्रिक छंद :**

मात्रिक - छंद में मात्राओं की गणना होती हैं । इनके विभिन्न प्रकार निम्नानुसार है ।

2.5.1.1 **सखी :**

इसका दूसरा नाम है 'मानव' । चौदह मात्राओं वाले इस छंद के अंत में तीन गुरू या लघु और दो गुरू का प्रचलन है । महादेवी ने इस छंद का प्रचुर प्रयोग तो किया, किन्तु उन्होंने चरणांत के शास्त्रीय नियम को पूर्णरूप से स्वीकार नहीं किया है । महादेवी के करूण भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति करने में यह छंद विशेष सहायक हुआ है :

''रजनी ओढ़े जाती थी
झिलमिल तारों की जाली
उसके बिखरे वैभव पर
जब रोती थी जलियाली, ''[86]

x x x

मेरी आहें सोती हैं
इन होठों की ओटों में
मेरा सर्वस्व छिपा है
ईन दीवानी चोटों में, ''[87]

2.5.1.2 **रूपमाला :**

चौदह-दश के यति-क्रम वाले इस छंद में चोबीस मात्राएँ होती हैं । अंत में दीर्घ लघु की योजना का विधान हैं । बोझिल और उदासभावों को समर्थ अभिव्यंजना में सहायक इस छंद की तीसरी, दसवीं और सत्रहवीं मात्राएँ अनिवार्यतः लघु होती है :

''तोड़ कर वह मुकुट जिसमें रूप करता लास
पूछता आधार क्या प्रतिबिंब का आवास ?''[88]

2.5.1.3 **पीयूषवर्ष :**

उन्नीस मात्राओं के इस छंद की तीसरी, दसवीं और सत्रहवीं मात्रा लघु होती है । चरणांत में रगण (SIS) का विधान है । इस छंद का मंद लय-गति से भावों में निहित करूणा और उदासीनता सहज ही स्पष्ट हो जाती है :

''कुमुद दल से वेदना के दाग को
पोंछती जब आँसुओं के रश्मियाँ,
चौंक-उठतीं अनिल के विश्वास छू
तारिकायें चक्ति-सी अनजान-सी; ''[89]

2.5.1.4 **श्रृंगार :**

आनन्दोल्लासमयी भावनाओं के प्रकाशन के लिए यह छंद सर्वथा उपयुक्त है । द्रुतलय-गति एवं झंकृति से युक्त इस छंद में सोलह मात्राएँ होती हैं । अंत में गुरू लघु आवश्यक है । महादेवी के सहज भावों की व्यंजनापूर्ण अभिव्यक्ति इस छंद में हुई है :

''राख में सोने का साम्राज्य
शून्य में रखते हो संगीत,
धूल से लिखते हो इतिहास
बिन्दु में भरते हो वारीश;

तुम्हीं में रहता मूक वसंत
अरे सूखे फूलों के हास !''[90]

2.5.1.5 **चौपाई :**

सोलह मात्राओं और तीव्र लय-गतिवाले इस प्रसिद्ध छंद में भावावेग को क्षिप्रता से संप्रेषित करने की अपूर्व क्षमता है । इसके चरणांत में लघु-गुरू (IS) वर्जित माना गया था । महादेवी ने चरणांत में प्रायः लघु (II) का प्रयोग किया है :

''घर आज चले सुख-दुःख विहग,
तक पोंछ रहा मेरा अग जग,
छिप आज चला वह चित्रित मग,
उत्तरो अब पलकों में पाहुन !''[91]

2.5.1.6 **पद्धरि :**

सोलह मात्राओं के इस सममात्रिक छंद के अंत में जगण (ISI) आवश्यक है । सामान्यतः इस छंद का प्रयोग वीर रस के प्रसंगों में होता है क्योंकि इसकी लय ओजस्वी एवं प्रवाहमयी होती है । महादेवी की यह विशेषता है कि ऐसे छंद को भी उन्होंने अपने मधुर, कोमल, प्रणय-भावों की अभिव्यक्ति का सरस माध्यम बनाया :

''दिन रात पथिक थक गए लौट,
फिर गए मना कर निमिष हार,
पाथेय मुझे सुधि मधुर एक,
है विरह पंथ सूना अपार !''[92]

2.5.1.7 **राधिका :**

बाइस मात्रओं के इस छंद में तेरह अथवा सोलह मात्रा के पश्चात् यति का विधान है । इस छंद की लय और गति में एक ऐसा प्रवाह होता है कि शब्द नृत्य करते - से जान पड़ते हैं । यद्यपि महादेवी के काव्य में इसका प्रयोग वेदनाप्रधान भावों की अभिव्यक्ति के लिए हुआ है तथापि शब्द - संयोजन में मोहक ध्वनि और गति है ।

''सिकता से तुलसी साध क्षर से उर-धन,
पारस-साँसे बेमोल ले चला हर क्षण,
प्राणों के विनिमय से इनको ले कोई,
दिव का किरीट भू का श्रृंगार बनाता ।''[93]

2.5.2 **वर्णिक छंद :**

वर्णिक छंद खड़ीबोली हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल नहीं है; इसीलिए छायावादी काव्य में वर्णिक छंद की विरलता है । छायावादी काव्य-भाषा में जो संगीतात्मकता है, उसमें लय और गति अपेक्षित है । कवित्त, सवैया आदि वर्णिक छंदों में ह्दय को तरंगायित करनेवाली तीव्र गतिमयता नहीं होती । फिर भी महादेवी के दो गीत सवैया छंद में निबद्ध हैं :

''इन आँखों ने देखी न राह कहीं ....''[94]

x x x

''जिसको अनुराग-सा दान दिया ....''[95]

महादेवी ने छंद-शास्त्र के परम्परागत नियम-बंधन को स्वीकार नहीं किया । गीत के लय-प्रवाह की रक्षा के लिए मात्राओं के न्यूनाधिक्य की चिंता नहीं की । उनके गीतों की सहज गति में भावधारा का प्रवाह अप्रतिहत रहा ।

छायावादी परम्परानुसार महादेवी ने भी दो या अधिक छंदों के योग से नवीन छंद - रचना की है :

''यह जग है विस्मय से निर्मित,
मूक पथिक आते जाते नित,
नहीं प्राण प्राणों से परिचित,
यह उनका संकेत नहीं जिसके बिन विनिमय हो पाता ।''[96]

x x x

दूर घर मैं पथ से अनजान ।
दुख में जाग उठा अपनेपन का सोता संसार;
सुख में सोई री प्रिय-सुधि की अस्फुट सी झंकार;
हो गये सुख-दुःख एक समान ।''[97]

प्रथम उद्धरण में तीन चरण सोलह मात्रा वाले चौपाई के तथा एक चरण तीस मात्राओं वाले ताटंक का है । गीत का स्थायी टेक ताटंक छंद में बद्ध है । द्वितीय उद्धरण में सोलह मात्राओं वाले चौपाई छंद में गीत की टेक है । द्वितीय और तृतीय चरण सरसी या हरिपद के हैं जिसमें सत्ताईस मात्राएँ, ग्यारह पर यति और चरणांत में गुरू-लघु का विधान है । इस प्रकार एकाधिक छंद के समन्वय से जहाँ अभिव्यंजना

रमणीय हो गयी है वहीं रागात्मक बोध भी सशक्त हो गया है ।

2.6 **वक्रोक्ति :**

साधारण,स्वाभाविक अथवा अभिधारक कथन से भिन्न, असाधारण, विलक्षण अथवा वैदग्ध्यपूर्ण उक्ति को वक्रोक्ति कहा गया है । कवि-कौशल के चमत्कार एवं शब्दार्थ के विचित्र प्रयोग से प्रतिपाद्य विषय में अपूर्व रमणीयता आ जाती है जिसके भावन से सहृदय चमत्कृत हो उठता है । हृदय को आह्लादित करनेवाली लोकोत्तर चमत्कारिणी उक्ति काव्य को उत्कर्ष प्रदान करती है । वक्रोक्ति काव्य का आवश्यक धर्म है । वक्रोक्ति सिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य कुंतक ने वक्रोक्ति को काव्य-सौन्दर्य के पर्याय के रूप में स्थापित किया है । विषय की सुक्ष्मता एवं गंभीरता के अनुरूप ही अभिव्यंजना-शैली में वक्रता अथवा वाग्वैदग्ध्य की अपेक्षा रहती है ।

छायावाद की काव्य-शैली में वक्रोक्ति का विशेष महत्त्व है । कवि सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों का प्रकाशन करनेवाले महादेवी के प्रणय-विधान काव्य में भाव-प्रेरित वक्रोक्ति का अनंत ऐश्वर्य है । वक्रोक्ति के अनेक भेद है : जैसे वर्ण-विन्यास- वक्रता, पद-पूर्वार्ध-वक्रता, पद-परार्घ-वक्रता आदि । महादेवी के गीतों में इन वक्रताओं का सुन्दर निरूपण हुआ है । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

''नीरव नभ के नयनों पर
हिलती है रजनी की अलकें,''[98]

x x x

''मैं पलकों में पाल रही हूँ यह सपना सुकुमार किसी का ।''[99]

प्रस्तुत गीतांशों में 'न', 'प', 'स' और 'क', वर्ण की आवृत्ति से उक्ति की चारूता बढ़ गयी है । विषयानुकूल वर्णों के चारू-चयन से वर्ण-विन्यास वक्रता के साथ नाद और अर्थ का सौन्दर्य भी निखर उठा है ।

शब्द की प्रकृति अथवा मूल शब्दों पर आश्रित उक्ति चमत्कार पदपूर्वार्धवक्रता कहलाता है । महादेवी के काव्य में इस वक्रता के सभी भेदों का निदर्शन हुआ है । रूढ़ि और उपचार वक्रता का एक उदाहरण प्रस्तुत है :

''वंशी में क्या अब पांचजन्य गाता है !''[100]

'वंशी' आनंद और उल्लास के समय तथा 'पांचजन्य' शंख युद्ध के समय बजाये जानेवाले वाद्ययंत्र हैं । दोनों ही कृष्ण से संबंधित हैं । प्रस्तुत प्रकरण में वंशी और पांचजन्य के रूढ़ अर्थ पर एक अन्य अर्थ का अध्यारोप किया गया है । वंशी के स्वर में शंखनाद है । आनंद-उल्लास को त्यागकर उत्साह और कर्तव्य भाव से युक्त होकर संकट टालने का उद्बोधन कवयित्री का अभिष्ट है ।

किंचित् संबंध मात्र से, अप्रस्तुत और प्रस्तुत विषय के सामान्य धर्म पर अभेद आरोप करके उक्ति में चमत्कार लाना ही उपचार-वक्रता है । समता के आधार पर अभेद स्थापित करने के कारण इसमें लक्षणा एवं रूपक का सौन्दर्य लक्षित होता है :

''गुलालों से रवि का पथ लीप
जला पश्चिम में पहला दीप,

विहँसती संध्या भरी सुहाग
दृगों से झरता स्वर्ण-पराग ।"[101]

पथ लीपना, दीप जलाना, विहंसना और सुहागिन होना मानव की क्रिया है । इन धर्मो का आरोप संध्या पर करके उसका मानवीकरण किया गया है । 'दीप' का लक्ष्यार्थ है तारा टिममिटाना दोनों का समान धर्म है । संध्या समय आकाश में अरूणिमा छा जाती है, सूर्यास्त होते ही पश्चिम में तारा निकल आता है । इन समस्त प्राकृतिक कार्य-व्यापारों का समानता के आधार पर मानवीकरण किया गया है, जिससे उक्ति से सौन्दर्य वृद्धि हुई है ।

पदपरार्धवक्रता को प्रत्यय-वक्रता भी कहा जाता है, क्योंकि वह परसर्ग पर आश्रित होती है । इसके भी अनेक भेद है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत है :

"आज थके चरणों ने सूने तम में विद्युत् लोक बसाया,"[102]

कर्ता चरण का विशेषण है 'थके', 'तम' का विशेषण है 'सूना' थके चरण सूने तम में विद्युत-लोक बसाते हैं । व्यंग्यार्थ है : निराशाच्छन्न स्थिति में आशा का संचार होते ही हृदय एक अपूर्व उत्साह से भर उठता है । गतिशील होते ही जीवन की शून्यता और नीरसता समाप्त हो जाती है । थके चरण भी विद्युत् की-सी गति प्राप्त कर लेते हैं । यहाॅं चेतन कर्ता 'चरण' पर कर्तव्य का आरोप करके वक्रता का चमत्कार उत्पन्न किया गया है ।

पद में प्रत्यय लगाकर उक्ति में चमत्कार लाना छायावादी कवियों की अन्यतम विशेषता है । अभिव्यक्ति में नाद-सौन्दर्य एवं अर्थ की रमणीयता के लिए प्रत्यय का बहुल प्रयोग महादेवी ने भी किया है । अधोलिखित उदाहरण में उन्होंने 'इल' प्रत्यय लगाकर 'पंक' और 'फेन' पदों को जहाँ श्रुति - मधुर बनाया है वही उक्ति को अर्थ-गौरव भी प्रदान किया है :

"दु:ख से आविल, सुख से पंकिल
बुदबुद् से स्वप्नों से फेनिल
बहता है युग-युग से अधीर ।"[103]

महादेवी ने उपसर्ग के उचित प्रयोग से भी अपनी अभिव्यक्ति को विशेष अर्थ-सौन्दर्य प्रदान किया है :

"अभिमंत्रित कर जिसे सुलाती
आ तुषार की रात,"[104]

यहाँ 'अभि' उपसर्ग लग जाने से 'मंत्रित' शब्द विशेष अर्थपूर्ण हो गया है, मानों मोहक मंत्र के प्रयोग से किसी को सम्मोहित करके सुलाया जा रहा हो ।

☸ निष्कर्ष :

महादेवीजी की कला का जन्म अक्षय सौन्दर्य के मूल से, दिव्य प्रेम के भीतर से, अलौकिक प्रकाश की गुहा और पावन उज्जवल आँसुओं के अंतर से हुआ है । भाषा, गीतिकाव्य, अलंकारों, प्रतीकों,

बिंबों तथा छंदों की दृष्टि से इन्हें पूर्ण सफलता मिली है । प्रतीक, रूपक तथा मानवीकरण इनकी रचनाओं में सर्वत्र व्याप्त हैं । इनकी काव्य-रचनाओं में दिये गये चित्रों का भी विशेष महत्त्व है । महादेवीजी के गीतों में महान् आत्मा की प्रतिध्वनि है तथा दर्शन और हृदय का सामंजस्य है । उनकी काव्य कला हिन्दी साहित्य के लिए वरदान है । उसमें श्रेष्ठता और सक्षमता का स्वर गुंजित है ।

महादेवीजी की भाषा शिल्प के निर्माण तथा भाव संयोजन का सार श्रेय उनकी सृजनात्मक कल्पना को है । वे खगों की भाँति पंखों को साध कल्पना की उड़ान भरती है । उनकी अभिव्यक्ति की कुशलता और अनूठी पकड़ के कारण काव्यों में ऐसी आकर्षण शक्ति रही है जिन्हें पुनः पुनः दोहराने पर भी पाठक नवीन आनंद की अनुभूति करता है । उनका भावपक्ष जितना मधुर और करूणा सिक्त है, कलापक्ष उतना ही सुदृढ़ और प्रभावशाली है । उनकी सुन्दर अभिव्यंजना के कारण ही कवयित्री की प्रत्येक रचना अमरत्व का श्रेष्ठ पद प्राप्त करती है । उनकी कोमल भावनाएँ ताजगी पूर्ण और सरस प्रतीत होती है । संक्षेप में, कहा जा सकता है कि महादेवी, प्रसाद, पंत और निराला वर्तमान युग के सर्वश्रेष्ठ सहस्यात्मक छायावादी कवि हैं । सभी का अपने-अपने क्षेत्र में महत्वपूर्ण उच्च स्थान है । परंतु आधुनिक वर्तमानयुग में तो कला पक्ष के दृष्टिकोण से कवयित्री महादेवी वर्मा ही सर्वोच्च पद की अधिकारिणी हैं । उनका काव्य-शिल्प समृद्ध, सक्षम और अद्वितीय है ।

संदर्भ ग्रंथ सूचि :

1. 'महादेवी साहित्य भाग-1' (भारतीय वाङ्मय पर एक दृष्टि–1) महादेवी वर्मा, पृ.95 (सं.निर्माला जैन)
2. 'महादेवी साहित्य भाग–1'(साहित्यकार : व्यक्तितत्व और अभिव्यक्ति), महादेवी वर्मा, सं. निर्मला जैन पृ.341
3. 'यामा', महादेवी वर्मा, पृ.134
4. वही, पृ.180
5. वही, पृ.151
6. वही, पृ.162
7. 'दीपशिखा', महादेवी वर्मा, पृ.87
8. 'यामा' महादेवी वर्मा, पृ.6
9. वही, पृ.11
10. वही, पृ.15
11. वही, पृ.12
12. वही, पृ.101
13. वही, पृ.54
14. वही, पृ.118
15. वही, पृ.192
16. वही, पृ.18
17. वही, पृ.106
18. वही, पृ.24
19. वही, पृ.146
20. वही, पृ.22

21. वही, पृ.199
22. वही, पृ.134
23. 'दीपशिखा', वही, पृ.83
24. 'यामा' पृ.151
25. 'दीपशिखा', (चिंतन के कुछ क्षण), महादेवी वर्मा, पृ.56
26. वही, पृ.116
27. 'यामा', वही, पृ.166
28. वही, पृ.135
29. वही, पृ.139
30. वही, पृ.183
31. वही, पृ.182
32. वही, पृ.91
33. 'दीपशिखा', महादेवी वर्मा, पृ.91
34. 'यामा' वही, पृ.149
35. वही, पृ.150
36. 'दीपशिखा' वही, पृ.107
37. वही, पृ.69
38. वही, पृ.71
39. वही, पृ.101
40. वही, पृ.130
41. वही, पृ.150
42. वही, पृ.134
43. वही, पृ.144

44. वही, पृ.116
45. 'यामा', वही, पृ.171
46. वही, पृ.229
47. 'दीपशिखा' महादेवी वर्मा, पृ.140
48. 'यामा' वही, पृ.49
49. 'महादेवी का काव्य वैभव', प्रो. रमेशचन्द्र गुप्त, पृ.162
50. 'यामा', महादेवी वर्मा, पृ.73
51. वही, पृ.74
52. वही, पृ.16
53. वही, पृ.144
54. वही, पृ.135
55. वही, पृ.145
56. वही, पृ.112
57. वही, पृ.103
58. वही, पृ.24
59. वही, पृ.257
60. 'दीपशिखा', महादेवी वर्मा, पृ.95
61. वही, पृ.80
62. वही, पृ.90
63. 'यामा' वही, पृ.3
64. वही, पृ.31
65. वही, पृ.144
66. वही, पृ.145

67. वही, पृ.135

68. वही, पृ.88

69. वही, पृ.28

71. वही, पृ.87

72. 'यामा', वही, पृ.138

73. वही, पृ.99

74. वही, पृ.22

75. वही, पृ.1

76. वही, पृ.80

77. वही, पृ.10

78. वही, पृ.134

79. वही, पृ.144

80. वही, पृ.135

81. वही, पृ.137

82. वही, पृ.31

83. वही, पृ.86

84. वही, पृ.163

85. 'संधिनी' (चिंतन के क्षण) महादेवी वर्मा, पृ.21

86. 'यामा', वही, पृ.9

87. वही, पृ.10

88. वही, पृ.93

89. वही, पृ.81

90. वही, पृ.51

91. वही, पृ.209

92. वही, पृ.216

93. 'दीपशिखा' वही, पृ.109

94. 'यामा', वही, पृ.97

95. वही, पृ.117

96. वही, पृ.76

97. वही, पृ.195

98. 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध', महादेवी वर्मा, पृ.123

99. 'यामा', महादेवी वर्मा, पृ.4

100. 'गीतपर्व', वही, पृ.174

101. 'यामा', वही, पृ.74

102. वही, पृ.135

103. 'यामा', वही, पृ.133

104. वही, पृ.104

उपसंहार

उपसंहार

आधुनिक हिन्दी काव्य की जड़ें भारतेन्दुयुग में दृश्यमान होती हैं । विभिन्न परिस्थितियों का सामना करते - करते काव्य के विषय भी उसी के आधार पर बनने लगे । जिस में मूल प्रवृत्ति देश-प्रेम की रही । द्विवेदीयुग ने इन्हीं भावों को उजागर किया और लक्ष्य तक पहुँचाने का प्रचार किया । यहाँ हिन्दी काव्य को विस्तृत फलक भी प्राप्त हुआ । इस फलक में नयी प्रवृत्तियों का प्रवेश छायावादी कवियों के काव्यों से हुआ । शुरू में छायावाद का भी स्वर देश-प्रेम व सामाजिक उत्थान का रहा । छायावाद की मूलतः प्रवृत्ति यही बनी कि इन कवियों ने प्रकृति में अलौकिक ईश्वर (प्रियतम) के दर्शन किये । महादेवीने अपनी इसी संवेदनाओं को काव्याभिव्यक्ति दी । जिनसे छायावाद में ही नहीं किन्तु हिन्दी साहित्य में महादेवी ने अपना अलायदा स्थान प्राप्त किया ।

हिम-सी उज्ज्वल, जल-सी निर्मल, कुसुम-सी कोमल, सात्त्विक गुणों से परिपूर्ण महादेवी के व्यक्तित्व में अनोखापन है । उन्होंने समाज की सामाजिक व्यवस्था को गहेर रूप में टटोला है, राजनीति के दाँव-प्रचों को प्रखरता से भेदा है, समाज को बुराइयों की और घसीटनेवाली उसे खोखला बनानेवाली दुर्दान्त शक्तियों को खींचकर सामने लाने का प्रयत्न किया है । महादेवीजी अपने क्षण-भंगुर जीवन को समाज की सेवा में समर्पित कर देना चाहती है । माता-पिता और परिवेश से संस्कार ग्रहण करके, अपने उदात संवेदन को करूणा से

सिक्त करके अपनी रचनाओं को सहृदय-संवेद्य बनाया है । हिन्दी साहित्य में महादेवी का विशेष स्थान है । उनके साहित्यिक योगदान से गद्य और पद्य दोनों समृद्ध हुए हैं । पद्य साहित्य में व्यक्त वैयक्तिक अनुभूति में नारी सुलभ संकोच, संवेदन और करूणा में उदातता तथा आध्यात्मिक चिंतन में रहस्यात्मकता है । वे काव्य में नितांत व्यक्तिनिष्ठ हैं । अनुभूति किन्तु उनका गद्य-साहित्य पूर्णतः निवैयक्तिक, संवेदन युक्त, निर्भय और ओजपूर्ण हैं । गद्य में सामान्यजन के पीड़ित जीवन का आर्तस्वर अधिकारों के प्रति सचेत करनेवाला ओजस्वी स्वर, गंभीर दार्शनिक चिंतन, प्रौढ़ साहित्यिक विवेचन ओर सौंदर्यमय सरलभाव मुखरित हुआ है ।

महादेवी का सम्पूर्ण काव्य गीति काव्य है । कोमलभाव, मधुर कल्पना और गहन वेदना की अविरल अभिव्यक्ति के लिए गीत-काव्य ही उपयुक्त है । उनकी पाँचों मूल कृतियों 'निहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत' और 'दीपशिखा' में उनकी काव्य - प्रतिभा ओर काव्य - चेतना का उतरोत्तर विकास लक्षित होता हैं । किशोरावस्था में प्रणीत 'नीहार' में किशोर कवयित्री की उत्सुकता, अभिलाषा, अकुलाहट और वेदना व्यंजित है । प्रणयी हृदय की व्याकुलता 'रश्मि' तक आते आते प्रियतम के चिंतन में परिवर्तित हो गयी और रहस्यमय प्रियतम के स्वरूप को जानने की जिज्ञासा बलवती हो गयी । जिज्ञासा का शमन होते ही गंभीर वेदना मुखर हो उटती है । 'नीरजा' के गीतों में अनुभूति की तीव्रता अधिक है, अंतर्मुखी भावनाओं का प्रवृत्ति पर आरोप सुख और दुःख में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न है । 'सांध्यगीत' में

अनुभूति ही चिंतन का विषय बनने लगी । सांध्यगगन के रंगों में जीवन का रंग ढूँढनेवाली कवयित्री विरह को ही साधना और साध्य स्वीकार कर लेती है । सुख-दुःख की यह तादात्ममयी अनुभूति उदातता की भाव-भूमि पर पहुँच कर 'दीपशिखा' बन जाती है, जो निरंतर जलती हुई जग के कण-कण को आलोकित करने की कामना से युक्त है । जग के आर्तक्रन्दन में कवयित्री को अपना सुख-दुःख स्मरण नहीं रह जाता । दुःख के अंधकार में घिरे प्राणियों के कष्ट-निवारण हेतु वह अपना हृदय-दीपक जलाए रखती है । प्रियतम से विरह की पराकाष्ठा मिलन की अनुभूति में परिवर्तित हो जाती है; साधना निर्वाण बन जाती है, शूल वरदान बन जाते है । अभाव में भाव की प्रतीति कर, कण-कण के स्पर्श से ही मिलन-उत्सव मनाया जाता है । 'प्रथम आयाम' के शैशव-प्रयास से लेकर 'सप्तपर्णा' के परिपक्व प्रयास में, मौलिकता और अनुवाद में सर्वत्र ही महादेवी के गरिमामय व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं ।

महादेवी के साहित्यिक क्षेत्र में पदार्पण के समय तक छायावाद का पूर्ण विकास हो चुका था । पृष्ठभूमि के रूप में छायावाद को द्विवेदी युग प्राप्त हुआ था । समाज-सुधार, नारी उद्धार, शोषित-पीड़ित के प्रति सहानुभूति की भावना प्रबल हो चुकी थी । देश-प्रेम और भाषा-प्रेम का स्वर मुखरित था । छायावाद की सामाजिक चेतना अधिक व्यापक सिद्ध हुई । अतीत के गौरव-गान के माध्यम से राष्ट्रीयता का स्वर भी गूँजने लगा था । काव्य के क्षेत्र में द्विवेदी-युगीन मान्यताओं का खंडन करके काव्य की कमनीयता और रमणीयता को पुनःस्थापित किया

गया । भाव में नवीनता और भाषा में कल्पना विशिष्टतः लाक्षणिकता का प्रयास हुआ । स्वानुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए छटपटाता कवि हृदय, काव्य-रूढ़ियों को तोड़ता एवं कल्पना की उड़ान भरता हुआ प्रकृति और मानव-सौन्दर्य की ओर उन्मुख हुआ । वह समाज के सबसे उपेक्षित वर्ग-नारी की तरफ़ उन्मुख हुआ । छायावाद युग के प्रमुख चार आधार स्तंभ माने गये हैं - जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी, 'निराला' सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा । इन सभी महान विभूतियों का हिन्दी साहित्य में विशेष योगदान रहा हैं । ऐसी ही पृष्ठभूमि में प्रवेश कर महादेवी की नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा ने युग की मूल संवेदना को परखा और अपनी सौन्दर्यमयी प्रेमानुभूति को लाक्षणिक तथा प्रतिकात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की । छायावादी युगीन कवयित्री महादेवी वर्मा एक योगी की भाँति स्थिर हो, अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से समग्र जन-मन और प्रकृति का सुक्ष्म अवलोकन करती रही हैं ।

महादेवी कोमल भावों की कवयित्री हैं । अनेक गीतों का मूल स्वर प्रणय, वेदना और करूणा हैं । सहानुभूति और संवेदना से संवलित होकर वह व्यक्तिनिष्ठ होते हुए भी समष्टिगत चेतना से युक्त है । स्वानुभूति परक गीति-काव्य में कोमल और मधुर भावों की विवृति ही उपयुक्त होती है, इसलिए उनेक काव्य का विषय व्यापक न होकर सीमित हैं ।

महादेवी ने सत्य को काव्य का साध्य और सौन्दर्य को उसका साधन स्वीकार किया है, इसीलिए उनकी दृष्टि में काव्य कला अन्य

ललित कलाओं से श्रेष्ठ है । काव्य में बुद्धि हृदय से अनुशासित का सामंजस्य अवश्य होता है । कविता क्योंकि हृदय का स्पर्श करती है इसलिए उसमें भाव की प्रधानता हो जाती है । महादेवी की काव्यगत विषय वस्तु में विचार और अनुभूति का सुंदर समन्वय है किन्तु न तो उनके विचारों में ही वैविध्य है न भावों में । वस्तुतः काव्य में धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक आदि विचारों के विस्तारपूर्वक प्रकाशन का विशेष अवकाश भी नहीं रहता । महादेवी के काव्य में भावनाओं की कोमलता और चिंतन की सुक्ष्मता हैं । जीवन के जटिल और गूढ़ रहस्यों के चिंतन में दार्शनिकता स्वतः आ जाती है । दर्शन का संतुलित समावेश काव्य को गंभीरता एवं स्थिरता प्रदान करती है और साहित्य में प्रवेश पाकर दर्शन की नीरसता और बोझिलता दूर हो जाती है । यद्यपि महादेवी के दार्शनिक विचार प्रतीकों और संकेतों के माध्यम से व्यक्त हुए हैं, तथापि कल्पना के रंग और भावना के सौंदर्य से वे प्रांजल और सरस हो उठे हैं ।

महादेवी की संवेदनशीलता कवि-हृदय जीवन के घातों-प्रतिघातों से निस्संग नहीं रह पाया । गीतों में जहाँ प्रिय के प्रति आत्मनिवेदन है, प्रणयानुभूति है, वहीं उनके उज्जवल जीवन दर्शन, अनुपम प्रकृति-सौंदर्य और जीवन-जगत् के मार्मिक सत्यों का उद्घाटन भी है । आत्मपरक गीतों में प्रणय निवेदन, प्रणयाभिव्यक्ति, मिलनाकांक्षा और विहर-वेदना व्यंजित है । मानव के सुख-दुःख, आशा-निराशा, संवेदना, करूणा, मानवता, कर्म-सौन्दर्य आदि को उन्होंने अपनी चेतना का प्रकाश दीया है । आत्मा-परमात्मा, जीवन-मृत्यु और संसार के प्रति भी उनकी

विशिष्ट धारणा रही है । सहस्यमय परमसत्ता, जीवात्मा से उसका संबंध, जन्म-मरण का चक्र, संसार की अनित्यता आदि की चर्चा करते हुए उन्होंने जीवन की पीड़ामयी अथवा उल्लासित घड़ियों का मार्मिक प्रकाशन किया है । उन्होंने दुःखदग्ध वसुधा के प्रति संवेदनशील होकर प्रेम और करूणा का मंगलमय संदेश दिया है । प्रकृति के विराट् और सूक्ष्म रूपों से प्रेरणा ग्रहण करके भावाभिव्यक्ति करने के अतिरिक्त प्रकृति को चेतन संगिनी मानकर उसके विभिन्न सौन्दर्य रूपों का प्रकाशन करने में महादेवी को अपूर्व सफलता मिली हैं । आलोक के प्रति आकर्षण ने ही उनको दीपक के प्रति आस्थावान् बनाया । परिवेशजन्य संस्कार के कारण दीपक से उनका राग अन्यतम है । दीपक उनके जीवन और साहित्य दोनों के लिए आवश्यक हैं । छोटे-से दीप-से प्रेरणा ग्रहण कर वे भी स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश देने में विश्वास रखती हैं ।

वेदांत दर्शन से प्रभावित कवयित्री ने दर्शन के प्रतिपाद्य ब्रह्म, जीव, जगत्, माया और मुक्ति पर प्रसंगवश अपने विचार व्यक्त किये हैं । सर्वातिशायी ब्रह्म ही इस सृष्टि की उत्त्पति और स्थिति का कारण हैं । उस अनंत, शक्ति संपन्न, अलौक्कि और दिव्य ब्रह्म का तेजस्वी सौन्दर्य प्रकृति के विभिन्न उपकरणों में प्रतिभासित हैं । नियमित गतिविधियों से युक्त परिवर्तन के आधार, आदि-अंत-हीन, अपार ज्योति, स्वरूप परम ब्रह्म की आराधना के लिए ब्रह्म उपकरण को महादेवी ने व्यर्थ माना हैं । जीवन ईश्वर की सर्वोत्तम सृष्टि हैं । पंच तत्त्वों से निर्मित स्थूल शरीर में जीव वैसे ही निवास करता हैं जैसे

समुद्र में लहरें और दीपक में प्रकाश । आत्मा परमात्मा से अभिन्न है । नश्वर शरीर के कारण भिन्नता का बोध होता है किन्तु देह के नष्ट होते ही प्राणतत्त्व परमात्मा में लीन हो जाता है । आत्मा-परमात्मा की भिन्नता का बोध माया के कारण होता है । माया अविद्या और अज्ञान का पर्याय है । नश्वर जगत् के प्रति मोह का कारण माया ही है । अपने प्रबल आकर्षण में बाँध कर वह जीव को नचाती रहती है । ब्रह्म की इच्छा का परिणाम यह जगत् त्रिगुणात्मिका वृत्ति से युक्त और परिवर्तशील है । यह सृष्टि एक दर्पण के समान है, जिसमें असंख्य जीव प्रतिबिंब होते हैं । कवयित्री इस नश्वर जगत् के ताप को दूर करने और प्राणियों को सुख देने की कामना करती है । उसे मुक्ति की कामना नहीं है । जीवन को सक्रिय बनाये रखने के लिए वह इच्छाओं की आतृप्ति ही चाहती है । उसे मृत्यु से भय नहीं । मृत्यु वात्सल्यभाव से जीवन का श्रृंगार करके उसे पुनः जगत में भेजने का उपक्रम करती है । वह विश्वजीवन का उपसंहार है ।

काव्य सुख दु:खात्मक संवेदनों की कथा है । संवेदन ही भाव है । भावानुभूतियों की सरस अभिव्यंजना के लिए महादेवी ने काव्य को ही माध्यम बनाया है । उनके गीति-काव्य में स्थायी भाव काम रति के द्वितीय पक्ष विप्रलंभ श्रृंगार की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है । प्रणय-वेदना की कवयित्री को पहले, मिलन की तीव्र आकांक्षा थी, किन्तु वियोग-व्यथा झेलते-झेलते उसे अभाव जन्य पीड़ा ही मधुर लगने लगी । वह प्रियतम की रूप-माधुरी पर मुग्ध होकर भी उसमें लीन न होकर अपना पृथक् अस्तित्व ही बनाये रखना चाहती है । प्रिय-पथ के शूलों से प्यार

करनेवाली, वेदना में ही तृप्ति का अनुभव करनेवाली कवयित्री प्राणों के दीप जलाकर अपने सूनेपन को आलोकित करती रहती हैं । कवयित्री ने पीड़ा को संयमित रूप में अभिव्यक्ति दी है । उन्होंने न तो गोपियों की तरह नेत्रों से मेघों को हराया हैं, न जमुना में बाढ़ ही उमड़ाई हैं । नागमती की तरह रक्त के आँसु उनकी आँखों से नहीं बहे और न उनसे वीर बहुटियाँ ही बनती हैं । परंतु उनकी पीड़ा का संसार निराला हैं - मन संतप्त है, प्राण जल रहे हैं, कसक उठती है, निश्वासें दीर्घ होती है, शरीर क्षार हो रहा है, फिर भी न कोई शिकायत, न शिकवा, न मिन्नत है, न आरजू, न फरियाद है, न चाह और न रिहा होने की राह । केवल घुट-घुटकर मर जाने की ही साध है । इस दिव्य प्रेम पर स्वार्थ से पूर्ण अलौकिक प्रेम के छींटे भी नहीं दिखाई देते इसलिए तो यह प्रेम महान है, अद्वितीय है महादेवीजी के काव्य में प्रेम के उदात्तीकरण की प्रवृत्ति सर्वत्र विद्यमान हैं । इनका प्रेम स्थूल शारीरिक आकर्षण मात्र तक सीमित नहीं । उसमें आत्मा के अहम् का विसर्जन एवं समर्पण का उत्कर्ष है । कवयित्री ने प्रेम को अपने काव्यों में अत्यंत मोहक और सुचारू रूप में व्यंजित किया हैं ।

महादेवी के प्रेम का अपना वैशिष्ट्य है । प्रणयी ह्दयों की एक ही कामना, एक ही इच्छा प्रबल होती हैं - प्रिय से मिलन; किन्तु महादेवी को प्रियतम द्वारा प्राप्त विरह-वेदना भी उस के समान ही प्रिय हैं । उनके प्राणों ने जिस पीड़ा को पाल रखा है वह भी प्रिय के समान ही अनंत हैं । असीम पीड़ा से युक्त उनका जीवन दिव्य प्रियतम से किसी प्रकार भी छोटा नहीं है और इस बात का उन्हें वर्ग भी हैं ।

वेदनातिशयता में भी व्यर्थ का उन्माद प्रलय, उद्वेग और भ्रांति न होकर एक गंभीरता, स्थिरता और दृढता ही लक्षित होती हैं । प्रिय के प्रसंग में ही विभिन्न संचारियों की मर्म-स्पर्शी व्यंजना हुई हैं । औत्सुक्य, चपलता और व्रीड़ा के साथ साथ जड़ता, व्याधि, विषाद, दैन्य और चिंता की भी सफल निबंधना हुई हैं ।

महादेवी केवल अपने प्रेम और विरह का गान ही नहीं करतीं, अपितु मानवता, करूणा और संवेदना से युक्त होकर परोपकार के लिए भी तत्पर रहती है । मानव-कल्याण और प्राणि जगत् की रक्षा के लिए प्रयत्नशील होकर स्वार्थ-त्याग के लिए प्रेरित करती हैं । कवयित्री के जीवन में करूणा और दुःख का विशेष महत्त्व हैं । इस करूणा जग के ताप को दूर करने के लिए मेघ बनकर छा जाने की कामना के मूल में उसकी करूणा ही हैं । अनंत इच्छाएँ और तृष्णाएँ ही दुःख का प्रमुख कारण हैं । अपनी इच्छाओं से उबर कर, परमार्थ के लिए सर्वस्व त्याग करने में ही उसने जीवन की सार्थकता स्वीकार की है । विश्व मंगल की कामना में वह अपने जीवन का अणु-अणु गला कर प्रकाश का प्रसार करने की कामना करती हैं ।

प्रणय का आधार रहस्यमय, दिव्य और अलौकिक ब्रह्म होने के कारण महादेवी की अभिव्यंजना में रहस्यात्मकता आ गयी है । अविनाशी और अज्ञेय ब्रह्म को समझने के लिए ज्ञान के साथ-साथ प्रेम का भी आश्रय लेकर कवयित्री ने उसे भी सरस अनुभूतियों से रागरंजित कर दिया हैं । विचारशील बुद्धि और भावात्मक हृदय के संतुलित समन्वय से रहस्य-भावना का रमणीय उपस्थापन हुआ है । अलौकिक प्रेम को

लौकिक रूपकों में बाँध कर महादेवी ने अपनी अभिव्यक्ति को सारगर्भित और लालित्यपूर्ण बनाया हैं ।

प्रकृति महादेवी की चेतना-संपन्न संगिनी रही है । नित्यनूतन लावण्य से युक्त होकर वह कवयित्री के हृदय को नवीनता का बोध देकर आनंद से भर देती है । प्रियतम के अलौकिक सौंदर्य की प्रतीति करने वाली प्रकृति उसकी आस्था को संबल प्रदान करती हैं । महादेवी के काव्य में ब्रह्म के विराट् और भव्य रूपांकन से लेकर मानव-मन के लघुत्तम भाव-प्रकाशन तक सर्वत्र प्रकृति की मनोहारी भूमिका द्रष्टिगत होती हैं । उनकी कुशल लेखनी का स्पर्श पाकर प्रकृति के विविध रंग जगमगा उठे हैं ।

काव्य लालित्यमयी शब्द रचना है । शब्द का व्यापक अर्थ है भाषा । महादेवी की भाषा अत्यंत समृद्ध है । छायावादी भाषा का सम्पूर्ण सौन्दर्य उनके काव्य में दृष्टिगत होता हैं । भाषा का सौन्दर्य सम्प्रेषण-सामर्थ्य, उसकी समृद्धि और विस्तृति उसके शब्द-भंडार में निहित हैं । कवयित्री के व्यापक शब्द-भंडार में तत्सम्, तद्भव, देशज, विदेशी एवं अनुकरण मूलक शब्दों की नियोजना है; किन्तु प्रमुखता तत्सम् शब्दों की हैं । काव्य-भाषा में शब्द का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण है । कुशल कवयित्रीने भावाभिव्यंजक, प्रभाववर्द्धक, सशक्त शब्दों का चयन करके अभिव्यक्ति को प्रांजल बनाया हैं । उसने छंदानुकूल ध्वनि, लय और प्रवाह के उपयुक्त सटीक शब्दों का प्रयोग करके अर्थ-झंकृति उत्पन्न की है । पाश्चात्य शैली-विज्ञान में प्रयुक्त विचलन, समानांतरता आदि का सौन्दर्य द्विगुणित हो गया है । वक्रतापूर्ण शैली से अभिव्यक्ति

में संकेतमयता आ गयी है । लोक–जीवन की धरती से अंकुरित और द्विगुणित हो गया है । वक्रतापूर्ण शैली से अभिव्यक्ति में संकेतमयता आ गयी है । लोक–जीवन की धरती से अंकुरित और पल्लवित–पुष्पित अभिव्यक्ति शैली मुहावरें और लोकोक्तियों के संतुलित प्रयोग से समृद्ध हुई है । भाषा को जीवंत और मार्मिक बनाने में मुहावरों का समुचित योगदान है । महादेवी ने परंपरा–प्रचलित मुहावरों–लोकोक्तियों का प्रसंगानुकूल प्रयोग करके अर्थ–लालित्य की सृष्टि की है ।

हृदयगत कोमल मधुर भावों को सौन्दर्यमयी अभिव्यंजना प्रविधि से सँवार कर काव्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है । ध्वनि, वक्रोक्ति, अलंकार, बिंब, प्रतीक आदि से सुसज्जित होकर गीत सरस एवं चितस्पर्शी हो जाते हैं । महादेवी के काव्य शिल्प में विविधता नहीं है । कोमल, मधुर प्रणय भावों के अनुरूप उन्होंने गीत को ही अभिव्यंजन का माध्यम बनाया । गीत में कवि के अंतःस्फूर्त आवेग का सहज उच्छलन होता है, इसलिए उसमें गत्यात्मकता और संगीतमयता होती है । संगीत की सृष्टि के लिए श्रुतिमधुर एवं लघु आकार वाले लयात्मक छंद का प्रयोग होता है । महादेवी के गीतों में आत्माभिव्यक्ति की तीव्रता, भावप्रवणता, रागात्मक अनुभूति की ईकाई, संगीतात्मक लय और प्रवाह, संक्षिप्तता, कलात्मक शैली, छंदों की भावानुकूल योजना आदि गीत–काव्य के अनिवार्य तत्त्वों का प्रभावपूर्ण संयोजन हुआ है । छायावादी प्रकृति के अनुसार उनके गीतों में आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता है । भावप्रवण गीतों में तीव्र आवेग नहीं अपितु गंभीरता है । अनुभूति की अन्विति लावण्यमयी है । संगीतात्मक लय और प्रवाह से युक्त गीतों का

साकार संक्षिप्त किन्तु प्रभावपूर्ण है । कलात्मक शैली और भावानुकूल छंदों की योजना करके कवयित्री ने गीतों की वृद्धि की हैं ।

अप्रस्तुत कथन की सांकेतिक पद्धति होने के कारण प्रतीक व्यंजना पर आश्रित होते हैं । सूक्ष्म सौन्दर्य और विविध भावानुभूतियों की मार्मिक व्यंजना के लिए अर्थगौरवपूर्ण प्रतीक विधान महादेवी के काव्य की अन्यतम विशेषता है । सीमित किन्तु सशक्त प्रतीकों की योजना से उनकी अभिव्यंजना सरस और सार्थक हो गयी हैं । प्रसंगानुकूल नवीन प्रतीकात्मक शब्दों की सन्निधि के कारण एकरसता का समन्वय हुआ हैं ।

काव्य-शिल्प के अनिवार्य अंग बिंब के विधान में महादेवी की सौन्दर्य-चेतना अपनी चरम सीमा पर दिखायी देती है । उन्होंने ऐसी कुशलता और कलात्मकता के साथ बिंबों का विधान किया है कि प्रसंग और परिवेश जीवंत हो मानस में उभर आते हैं । मानव, प्रकृति एवं संस्कृति से आयातित बिंब सशक्त एवं प्रभावपूर्ण हैं । प्राकृतिक उपकरणों को मानवीय - संवेदना से युक्त दिखाने में वे सिद्ध हैं । कवयित्री की विशेषता यह है कि उसने परंपरागत बिंबों को अभिनव आयाम देकर उन्हें सौष्ठवपूर्ण बनाया हैं । प्रबल आवेग के अभाव और कल्पना की सीमित उड़ान के कारण उनके बिंबों में वैविध्य नहीं हैं ।

महादेवीने काव्य के शोभाकारक धर्म अलंकारों से विभूषित करके अपने भाव-संप्रेषण को ललित बनाया है । वर्णो पर आधृत शब्दालंकार नाद-सौन्दर्य से युक्त होकर सहृदय के रागतंतुओं को

झंकृत कर देते है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दीपक, निदर्शना, मानवीकरण आदि अर्थालंकारों के सुचारू सन्निवेश से उनके गीतों की सुषमा बढ़ गयी हैं।

कवि की रागात्मक चेतना को अधिकाधिक सम्प्रेषणीय बनाने में छंद का महत्त्वपूर्ण योगदान है। छायावाद ने रूढ़िबद्ध छंदों का अंध प्रयोग न करके उनमें नवीनता का समावेश किया। महादेवी ने गीति-काव्य के अनुरूप मात्रिक छंदों का प्रयोग किया है। भावानुकूल शब्द-संयोजन, अंत्यानुप्रास लय और प्रवाह की सहजता से छंदों की प्रभावशालिता बढ़ गयी है। सखी, रूपमाला, पीयूषवर्ष, श्रृंगार, चौपाई, पद्धरि, राधिका आदि छंदों से गीति की प्रियता संगीतमयता द्विगुणित हो गयी है।

वक्रोक्ति भी काव्य का आवश्यक धर्म है। हृदय को चमत्कृत एवं आह्लादित करनेवाली उक्ति से काव्य का उत्कर्ष होता है। विषय की सूक्ष्मता एवं गंभीरता के अनुरूप महादेवी के अनुरूप महादेवी के गीतों में वक्रोक्ति-वैचित्र्य हैं।

महादेवी का संपूर्ण साहित्य सराहनीय है। अनुभूति जीवन सत्य को भावना और कल्पना के रंग में रँगकर, विचारों की श्रृंखला में पिरो कर, कलात्मक शैली से निखार कर उन्होंने हिन्दी साहित्य को अमूल्य निधि समर्पित की हैं।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

☼ **महादेवीजी की संदर्भ–हेतु उपलब्ध कृतियाँ :**

1. 'नीहार', महादेवी वर्मा, साहित्य भवन प्रा. लि., जीरो रोड, इलाहाबाद, सप्तम् आवृति, सन् 1971
2. 'रश्मि', महादेवी वर्मा, साहित्य भवन प्रा. लि.,जीरो रोड, इलाहाबाद, सप्तम् आवृति, सन् 1961
3. 'नीरजा', महादेवी वर्मा, भारती – भंडार, प्रयाग, प्रथम संस्करण, संवत्, 1013 वि.
4. 'दीपशिखा', महादेवी वर्मा, भारती–भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, छठ्ठा संस्करण, संवत 2019 वि.
5. 'यामा', महादेवी वर्मा, भारती–भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम आवृति, सन् 1936
6. 'सन्धिनी', महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन 15–ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद–1, संस्करण–1998
7. 'महादेवी साहित्य समग्र भाग–1, 2, 3,', सं. निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संशोधित संस्करण 2000

☼ **अन्य प्रमुख सहायक संदर्भ ग्रंथ सूचि :**

1. 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास', डॉ.श्री कृष्णलाल, प्रयाग, चतुर्थ संस्करण, सन् 1965
2. 'हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास', डॉ. कृष्णलाल हंस, कानपुर, प्रथम संस्करण : 1974
3. 'हिन्दी साहित्यका इतिहास', आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, सोलहवाँ संस्करण, संवत 2025 वि.

4. 'हिन्दी साहित्यका विकास', डॉ. वासुदेव शर्मा, सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, सप्तम् संस्करण 1978
5. 'हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास', डॉ. अमरप्रसाद जायसवाल, चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण–1993
6. 'आधुनिक साहित्य', नन्ददुलारे वाजपेयी, भारती–भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण, सं.2022 वि.
7. 'आधुनिक हिंदी–काव्य उद्भव और विकास', डॉ. स्नेहलता पाठक, विद्याविहार प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्कर, 1992
8. 'हिन्दी कविता और आधुनिकता', डॉ. सुरेशचंद्र पाण्डेय, अनुभव प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्कार, मार्च–1981
9. 'हिन्दी काव्य संग्रह', बालकृष्ण राव, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, आवृति.1968
10. 'हिन्दी के आधुनिक कवि', प्रो. रामप्रयारे तिवारी, रामकृष्ण शर्मा, हिन्दी साहित्य संसार प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1965
11. 'आधुनिक साहित्य और साहित्यकार', डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ, प्रथम संस्करण–1966
12. 'आधुनिक हिन्दी कविताकी मुख्य प्रवृत्तियाँ', डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली, चतुर्थ संस्कार 1974.
13. 'आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ', मोहनवल्लभ पंत, वल्लभ विद्यापीठ, वल्लभविद्यानगर, प्रथम संस्करण, संवत 2017 वि.
14. 'भारतेन्दु समग्र', सं. हेमन्त शर्मा, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, तृतीय संस्करण, जनवरी, 1989.
15. 'भारतेन्दु–युगीन हिन्दी–कविता', डॉ. एस. क्रिस्तुदास, चद्रन्, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, आवृति : 1994

16. 'द्विवेदीयुगीन काव्य', पूनमचन्द्र तिवारी, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, प्रथम संस्करण, 1972
17. 'आधुनिक हिन्दी कविता और विचार', डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर, भारतीय ग्रंथ निकेतन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1987.
18. 'विचार दृष्टिकोण एवं संकेत', पद्मचन्द्र अग्रवाल, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा प्रथम संस्करण, 1965
19. 'छायावाद', नामवरसिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–6, द्वितीय संस्करण–1968
20. 'छायावाद पूनर्मूल्यांकन', श्री सुमित्रानंदन पंत, लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद–1 प्रथम संस्करण–1965
21. 'छायावाद की काव्य प्रवृतियाँ एवं महादेवी वर्मा', प्रा. हरजीभाई वाघेला, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1982
22. 'महादेवी : नया मूल्यांकन', डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, भारतेन्दु भवन, शिमला–1, प्रथम संस्करण, 1969
23. 'महादेवी–व्यक्ति और कृतित्त्व', गोपीनाथ 'व्यथित', सूर्यप्रकाशन, दिल्ली, आवृति 1982
24. 'महादेवी साहित्य एक नया दृष्टिकोण', पद्मसिंह चौधरी, अपोलो प्रकाशन, जयपुर–3, संस्करण, 1974
25. 'महादेवी चिन्तन व कला', सं. इन्द्रनाथ मदान, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली–6, द्वितीय संस्करण
26. 'महादेवी वर्मा व्यक्तित्व और कृत्तित्व', डॉ. विमलेश तेवतिया, अमर प्रकाशन, मथुरा, प्रथम संस्करण–2008
27. प्रश्नों के घेरे, राजेन्द्र अवस्थी, सरस्वती विहार, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1981

28. 'महादेवी काव्य के विविध आयाम', असमी मधुपुरी, चन्द्रलोक प्रकाशन, प्रथम संस्करण–1978
29. 'हिन्दी काव्य में प्रेम–भावना', डॉ. रामकुमार खण्डेलवाल, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा,संस्करण 1976
30. 'छायावादी काव्य में मिथक', डॉ. चन्द्रलाल शर्मा, आधुनिक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण – 1994.
31. 'आधुनिक विरह–काव्य', डॉ. रामप्रसाद मिश्र, भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली
32. 'आधुनिक हिन्दी कविता में चित्र विधान', डॉ. रामयतनसिंह 'भ्रमर', नेशनल पब्लीकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, मई–1965
33. 'छायावादी कवियों पर अंग्रेजों के रोमांटिक कवियों का प्रभाव', डॉ. फूल बिहारी शर्मा, राजेश प्रकाशन, दिल्ली–51 प्रथम संस्करण : 26 जनवरी, 1977
34. 'महादेवी की कविता में सौंदर्य भावना', डॉ. सी. तुलसम्मा, दिल्ली–6, प्रथम संस्करण–1984
35. 'छायावदी कवियों का सांस्कृतिक दृष्टिकोण', प्रमोद सिन्हा, लोक–भारती प्रकाशन, इलाहाबाद–1 प्रथम संस्करण सन् 1973
36. 'विचार और अनुभूति', डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।, चतुर्थ संस्करण, नवम्बर, 1965
37. 'छान्दोग्योपनिषद्', सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली
38. 'श्वेताश्वतरोपनिषद्', गीता प्रेस, गोरखपुर
39. 'बृहदारण्यकोपिनिषद्' गीता प्रेस, गोरखपुर
40. 'प्रश्नोपनिषद्', गीता प्रेस, गोरखपुर

41. 'मुण्डकोपनिषद्', गीता प्रेस, गोरखपुर
42. 'दशरूपकम्', धनंजय, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली
43. 'अथर्ववेद', गीता प्रेस, गोरररखपुर
44. 'ऋग्वेद', गीता प्रेस, गोरखपुर

☼ संदर्भ हेतु पत्र-पत्रिकाएँ

1. 'आजकल', सं.प्रवीण उपाध्याय, मार्च-2007, नई दिल्ली
2. 'रंग-प्रसंग' सं/ले.कृष्णदत्त पालीवाल, वर्ष-9, अंक-5, जनवरी-मार्च 2007, नई दिल्ली -110001
3. 'भाषा-सेतु', सं.डॉ.अम्बाशंकर नागर, अप्रैल-जून-2006, वर्ष-14, अंक-55, हिन्दी साहित्य परिषद, अहमदाबाद
4. 'साहित्य प्रभा', सं.चन्द्रसिंह तोमर' 'मयंक', अप्रैल-जून 2007, वर्ष-6, अंक-2, देहरादून-248008

☼ संदर्भ शब्द कोश :

1. बड़ा कोश, सं.प्रा. रतिलाल सां.नायक, परामर्शक : डॉ. भोलाभाई पटेल, अक्षर प्रकाशन, अहमदावाद
2. नन्हा कोश, सं. रतिलाल सां. नायक, अनडा बुक डीपो, अहमदाबाद

- Website :

1. www.mahadevivarma.com